CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नासदीयसूक्तम्

(श्रीहरिहरप्रकाशिकाटीका)

ऋग्वेदान्तर्गतदशममण्डलस्थनासदीयसूक्तम्की
रस-रहस्यमयी व्याख्या

ऋग्वेदः

ऋग्वेदः श्वेतवर्णःस्याद् द्विभुजो रासभाननः ।
अक्षमालाधरःसौम्यः प्रीतो व्याख्यापनोद्यतः ॥

रचयिता

पूर्वाम्नायगोवर्द्धनमठपुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य
श्रीस्वामी निश्चलानन्दसरस्वती जी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

★ 'पीठपरिषद् – स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान' पुरीका चतुर्थ पुष्प ★

नासदीयसूक्तम्

(श्रीहरिहरप्रकाशिकाटीका)

ऋग्वेदान्तर्गतदशममण्डलस्थनासदीयसूक्तम्की रस-रहस्यमयी व्याख्या

रचयिता

पूर्वाम्नायगोवर्द्धनमठपुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य

श्रीस्वामी निश्चलानन्दसरस्वती जी

प्राप्तिस्थान

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य, पीठपरिषद्, गोवर्द्धनमठ, पुरी

(ओडिशा)

७५२००१

दूरभाष (०६७५२) २४०९४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक – पीठपरिषद् गोवर्द्धनमठ, पुरी, उड़ीसा
७५२००१

विक्रमसंवत् २०५३, सन् १९९६

१००० (एक हजार) प्रति

सहयोगराशि ६० (साठ) रुपये

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्तिस्थान
श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य, पीठपरिषद्, गोवर्द्धनमठ, पुरी
(ओडिसा)
७५२००१
दूरभाष (०६७५२) २४०९४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नासदीयसूक्तम्
(श्रीहरिहरप्रकाशिकाटीका)

ऋग्वेदान्तर्गतदशममण्डलस्थनासदीयसूक्तम्की रस-रहस्यमयी व्याख्या

पूर्वाम्नायगोवर्द्धनमठपुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य
श्रीस्वामी निश्चलानन्दसरस्वती जी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

नासदीयसूक्तम्

अवतरणिका
(भूमिका)

श्रीमज्जगद्गुरु-शंकराचार्य निश्चलानन्दसरस्वती

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे॥ १॥
श्रुत्याचार्योपदेशेन मुनयो यत्पदं ययुः।
तत्स्वानुभूतिसंसिद्धं स्वमात्रं ब्रह्म भावये॥ २॥

'ऋक्' पूर्वाम्नायसे सम्बन्धित वेद है। **'यजुः'** दक्षिणाम्नायसे सम्बन्धित वेद है। **'साम'** पश्चिमाम्नायसे सम्बन्धित वेद है। **'अथर्व'** उत्तराम्नायसे सम्बन्धित वेद है। ऋग्वेदपर श्रीसायणाचार्यमहाभागका विश्वविश्रुत भाष्य है। श्रीमुद्गल स्वामी तथा श्रीस्कन्दस्वामिमहाभागका भी प्रथम मण्डलपर आंशिकभाष्य है। श्रीस्कन्दस्वामिमहाभागविरचित भाष्यके व्याख्याता श्रीवेङ्कटमाधवमहाभागका भी शेष ऋग्वेदपर भाष्य है। दशममण्डलपर श्रीउद्गीथ स्वामीका भाष्य है। श्रीलोकमान्य बालगङ्गाधर, श्रीशङ्करबालकृष्ण दीक्षित तथा श्रीशङ्करपाण्डुरंग पण्डितमहोदयने भी ऋग्वेदके विशेष स्थलोंपर विवेचना की है। पं० श्रीबलदेव उपाध्याय, डॉ० सम्पूर्णानन्द तथा डॉ० पद्माकरण विष्णुवर्तक (पुणे) आदि महानुभावोंने ऋग्वेदान्तर्गत 'नासदीयसूक्तम्' पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। पाश्चात्य विद्वान् एच० एच० विल्सनने ऋग्वेदका अंग्रेजी अनुवाद किया है जो छह भागोंमें प्रकाशित है। विश्वेश्वरानन्दवैदिकशोधसंस्थानम् (होशियारपुरम्)की ओरसे भी आर्यसमाजके अनुरूप ऋग्वेदकी टीका प्रकाशित है।

'नासदीय' ऋग्वेदान्तर्गत दशममण्डलका एक सौ उन्तीसवाँ **'सूक्तम्'** है। इसपर वेदार्थमर्मज्ञ श्रीहरिहरानन्द सरस्वती 'करपात्र स्वामी'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(सद्गुरुदेव करपात्री जी) का विशद और मनोरम भाष्य है, जो वेदार्थपारिजातमें संलग्न है। पूज्यपाद सद्गुरुदेव सर्वभूतहृदय महर्षि श्रीकरपात्रस्वामिमहाभागने वेदभूमिका-वेदार्थपारिजात (प्रकाशित), यजुर्वेदभाष्य (प्रकाशित) तथा ऋग्वेदभाष्य (चतुर्थमण्डलपर्यन्त, सम्प्रति अप्रकाशित) की रचना कर सनातनजगत्का परम उपकार किया है।

लगभग चौदहवर्षपूर्व **'सृष्टिसन्दर्भ'** नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्नकी रचना कर रहा था। डॉ० श्रीभीष्मदत्त शर्मा (मेरठ; उ० प्र०) ने **'नासदीयसूक्तम्'** पर ध्यान आकृष्ट किया। श्रीवृन्दावनमें 'श्रीसायणभाष्यम्'के सहित इस सूक्तके अनुशीलनका संयोग सधा। 'सायणभाष्यम्'की बृहन्मीमांसा हिन्दीमें लिखनेका भाव उदित हुआ। श्रीवृन्दावनमें ही यह कार्य सम्पन्न भी हुआ।

'पीठपरिषद्-स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान' (पुरी) की ओरसे **'शुकसुधा'** और **'श्वेताश्वतरोपनिषत्-टीका'** के प्रकाशनके पश्चात् **'नासदीयसूक्तम्'** के प्रकाशनका भाव उदित हुआ। **'शुकसुधा'** और **'श्वेताश्वतरोपनिषत्'** की शैलीमें **'सङ्गतिः'** और **'मन्त्रार्थः'** तथा **'परिशिष्टम्'** को संलग्नकर **'नासदीयसूक्तम्'** की बृहन्मीमांसा प्रकाशित की जा रही है। इसके परिशिष्टमें **'नासदीयसूक्तम्'** पर श्रीसर्वभूतहृदय सद्गुरुदेवकी टीका हिन्दी-अनुवादसहित प्रस्तुत की गयी है। परिशिष्टमें मूलसायणभाष्यम्को संलग्न किया गया है तथा श्रीवेङ्कटमाधवविरचित भाष्यको सारांशसहित गुम्फित किया गया है।

पाठक महानुभाव परिशिष्टसहित सम्पूर्ण ग्रन्थका आद्योपान्त अनुशीलनकर प्रमुदित हों, ऐसी भावना है।

'श्वेताश्वतरोपनिषत्' जहाँ यजुर्वेदीय है; वहाँ **'नासदीयसूक्तम्'** ऋग्वेदीय है। 'सरस्वती' संन्यासी होनेसे हम दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी (श्रृङ्गगिरि)से सम्बन्धित यजुर्वेदी हैं। पूर्वाम्नाय गोवर्द्धनपीठके आचार्यपदपर प्रतिष्ठित होनेसे ऋग्वेदी हैं। 'श्वेताश्वतरोपनिषत्' तथा **'नासदीयसूक्तम्'** की बृहन्मीमांसा प्रस्तुत कर दोनों पीठोंके प्रति निज दायित्वका निर्वाह श्रीहरिगुरुकरुणाके अमोघ प्रभावसे सध पाया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यान रहे, आगे जो भूमिका प्रस्तुत है, उसे ध्यानपूर्वक पढ़नेकी आवश्यकता है; क्योंकि इसके माध्यमसे प्रस्तुत भाष्यका जहाँ दिग्दर्शन प्रस्तुत है; वहाँ भाष्यमें अविनियुक्त तथा अप्रयुक्त कतिपय तथ्योंका प्रकाश भी प्रस्तुत है। भाष्य पढ़नेकी आवश्यकता इसलिये है; क्योंकि भूमिका तो भाष्यका दिग्दर्शन अर्थात् संक्षिप्त चित्रणमात्र है। परिशिष्टको रुचि (चाव) पूर्वक पढ़नेकी आवश्यकता इसलिये है; क्योंकि श्रीसद्गुरुदेव करपात्रस्वामिमहाभागद्वाराविरचितभाष्यके अनुवादके व्याजसे कुछ ऐसे तथ्योंका प्रकाश किया गया है जो श्रीसायणभाष्यकी व्याख्याके सन्दर्भमें नहीं किया जा सका है। इस प्रकार समग्र ग्रन्थकी उपादेयताको समझ कर श्रद्धा और तत्परतापूर्वक सम्पूर्ण ग्रन्थके अनुशीलनकी आवश्यकता है।

'नासदीयसूक्तम्' में सात मन्त्र (ऋचाएँ) हैं। इस सूक्तको सात सन्दर्भोंमें विभक्त किया गया है। प्रथम **'मायाशेषसन्दर्भ'** के अन्तर्गत प्रथम मन्त्रको गुम्फित किया गया है। द्वितीय **'मायाश्रयस्वप्रकाश-परब्रह्मशेषसन्दर्भ'** के अन्तर्गत द्वितीयमन्त्रको गुम्फित किया गया है। तृतीय **'स्रष्टव्यपर्यालोचनसन्दर्भ'** के अन्तर्गत तृतीयमन्त्रको गुम्फित किया गया है। **'सिसृक्षासन्दर्भ'** के अन्तर्गत चतुर्थमन्त्रको गुम्फित किया गया है। **'सर्गक्रमदुर्लक्ष्यतासन्दर्भ'** के अन्तर्गत पञ्चममन्त्रको गुम्फित किया गया है। **'जगत्कारणदुर्लक्ष्यतासन्दर्भ'** के अन्तर्गत षष्ठमन्त्रको गुम्फित किया गया है। सप्तम **'दुर्धरदुर्विज्ञेयतासन्दर्भ'** के अन्तर्गत सप्तममन्त्रको गुम्फित किया गया है।

माया और महाप्रलयका निषेधमुखसे प्रतिपादन (१-१$\frac{१}{२}$)

'नासदीयसूक्तम्' के 'मायाशेषसन्दर्भान्तर्गत' प्रथममन्त्रमें कहा गया है कि महाप्रलयमें शशशृङ्गादितुल्य निरुपाख्य 'असत्' नहीं था, न आत्मा और आकाशादितुल्य निर्वाच्य (निरूपण करने योग्य) सत् ही था। उस समय शशशृङ्गादितुल्य असत् ही होता तो उससे अर्थक्रियाकारी आकाशादिकी उत्पत्ति ही कहाँ सम्भव होती? उस समय यदि सर्गदशाके तुल्य आकाशादिकी विद्यमानता ही होती तो महाप्रलयकी प्राप्ति ही कहाँ होती? परिशेषसे यही सिद्ध होता है कि सत् और असत् तथा इनसे विलक्षण रजोरूप कार्यप्रपञ्चसे विरहित स्वाश्रयसापेक्ष स्वाश्रयभावापन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनिर्वचनीया माया ही महाप्रलयमें शेष थी। उस समय रजःसंज्ञक लोक नहीं थे। अभिप्राय यह है कि व्योमसंज्ञक अन्तरिक्ष और उससे उपलक्षित अन्तरिक्षके नीचेके पृथ्वी, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल लोक उस समय नहीं थे। व्योमसंज्ञक अन्तरिक्ष (भुवः) के ऊपरके स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्-लोक भी नहीं थे। अभिप्राय यह है कि महाप्रलयमें चतुर्दश (१४) भुवनात्मक ब्रह्माण्ड नहीं था। क्या आवरक (आवारक, आच्छादक) था? नहीं। जब आवर्य (आवरण करने योग्य, आवरणका विषय) ही कुछ नहीं था तब आवरक कहाँसे होता? वह देश भी तो नहीं था जिसमें स्थित होकर आवरक आवर्यका आवरण करता। अभिप्राय यह है कि आवरकको आवरण करनेके लिये आश्रय देनेवाला देश भी उस समय नहीं था, जिसमें स्थितिलाभकर वह आवर्यको आवृत करता। किस भोक्ता जीवके सुखदुःखसाक्षात्काररूप भोगके निमित्त वह आवरक आवर्यका आवरण करता? उस समय भोक्ता जीव भी तो देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणरूप उपाधिसे विरहित ईश्वरभावापन्न होकर ही अवशिष्ट था। क्या दुष्प्रवेश और अत्यन्त अगाध जल था? नहीं। जल तो केवल अवान्तर प्रलयमें ही रहता है। महाप्रलयमें उसका रहना सम्भव नहीं।

यही कारण है कि **'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्स इमामपश्यत्तां वराहो भूत्वाऽहरत्'**...... (तैत्तिरीयसंहिता ७.१.५.१) के भाष्यमें श्रीसायणाचार्य महाभागने लिखा है कि **'इदमितीदानीं दृश्यमानं गिरिनदीसमुद्रादिकं जगत्पृथिव्युत्पत्तेःपूर्वं सलिलमासीत्'**- 'इस समय दृश्यमान गिरिनदीसमुद्रादिक जगत् पृथिवीकी उत्पत्तिके पूर्व अर्थात् श्रीभगवान्द्वारा वराहरूपसे पृथिवीके उद्धारके पूर्व सलिल (जल) था।'

ध्यान रहे, कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यकमें **'आपो वा इदमासन्सलिलमेव। स प्रजापतिरेकः पुष्करपर्णे समभवत्। तस्यान्तर्मनसि कामः समवर्तत'** (तैत्ति० १.२३.१, नृसिंहपूर्वता० १) की उक्तिसे श्रुतिने महाप्रलयमें सलिलसंज्ञक आप (जल) को शेष माना है और पुष्करपर्णमें प्रजापतिकी अभिव्यक्तिका तथा प्रजापतिके मनमें कामरूप प्रथम कार्यका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा तदनन्तर स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तपका वर्णन किया है। श्रीभाष्यकार सायणाचार्य महोदयने इस स्थलमें तै० सं० ७.१.५.१ के तुल्य 'इस समय दृश्यमानगिरिनदीसमुद्रादिक जगत् पृथिवीकी उत्पत्तिके पूर्व जल ही था' ऐसा संकोच न करके ऐसा अर्थ किया है कि **'यदिदं जगदिदानीमस्माभिर्दृश्यते तदिदमुत्पत्तेः पूर्वमाप एवाऽऽसन्, न तु देवतिर्यङ्मनुष्यादिकं किञ्चिदपि भौतिकमासीत्। पृथिव्यादिभूतान्तरमपि वारयितुं सलिलमेवेत्युच्यते'**— ''जो यह जगत् इस समयमें दीखता है, यह सब उत्पत्तिके पूर्व भी जल ही था'। देव, तिर्यक्, मनुष्यादिक कुछ भी भौतिक नहीं था। पृथिव्यादि भूतान्तरका भी वारण करनेके लिये 'सलिल (जल) ही था' ऐसा कहा है।'' आगे **'पूर्वसृष्टौ लीनायामव्यक्ते जगत्कारणे स्रक्ष्यमाणप्राणिकर्मोद्भवे सति यदा प्रजापतेर्मनसि प्रथमं कार्यमुत्पन्नं तदा तत्कार्यं सृष्टिविषयेच्छारूपेण निष्पन्नमित्यर्थः।'**- 'पूर्वसृष्टिमें जगत्कारण अव्यक्तमें लीन सर्जन किये जानेवाले प्राणियोंके कर्मोंके उद्भव होनेपर जब प्रजापतिके मनमें कामरूप प्रथम कार्य उत्पन्न हुआ तब उसका कार्य सृष्टि विषयक इच्छारूपसे निष्पन्न हुआ' की उक्तिसे भाष्यकारमहोदयने जगत्को अव्यक्तमें लीन कहा है। दृश्यमान जलकी स्तुतिमें विनियुक्त **'आपो वा इदमासन्त्सलिलमेव....'** यह श्रुति सलिलसंज्ञक आपका अर्थ लयस्थान अव्यक्तसंज्ञक प्रधान करनेके लिये बाध्य करती है। **'तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वं मा इदम्'** कहकर नासदीयसूक्तम् (३) ने स्वयं ही इस तथ्यका प्रकाश किया है। **'षल गतौ-औणादिक इलच्। इदं दृश्यमानं सर्वं जगत् सलिलं कारणेन सङ्गतमविभागापन्नम् आः आसीत्'**— 'यह दृश्यमान सर्वजगत् सलिल अर्थात् कारणसे सङ्गत अविभागापन्न था अर्थात् तमोभूत-ब्रह्माधिष्ठिता प्रकृतिरूप, अव्याकृतसंज्ञक प्रधानरूप था।'

अवान्तरप्रलयमें जहाँ आपसंज्ञक सलिलको शेष रखा गया है; वहाँ **'सलिलमेव'** में प्रयुक्त एवकार (ही) का अर्थ सलिलसङ्गत—सलिलतादात्म्यापन्न अर्थात् सलिलरूप है। इस सन्दर्भमें आर्षवचन अनुशीलन करने योग्य है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन् स्वयोदीरितया स्वशक्त्या।
कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतन्त्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे॥
तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान्।
गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाभिद्यत नाभिदेशात्॥
स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत् कालेन कर्मप्रतिबोधनेन।
स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः॥
तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम्।
तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता स्वयम्भुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत्॥
तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः।
परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि॥
तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम्।
उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानमद्धाविददादिदेवः॥
क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाब्जमनन्यदप्सु।
अस्ति ह्यधस्तादिह किञ्चनैतदधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम्॥
स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरन्तर्जलमाविवेश।
नार्वाग्गतस्तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताजः॥
तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः।
यो देहभाजां भयमीरयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः॥"

(श्रीमद्भागवते ३.८.१२-२०)

"अपनी स्वरूपभूता चिच्छक्तिके साथ एक सहस्र चतुर्युगपर्यन्त जलमें शयन करनेके अनन्तर जब उन्हींके द्वारा नियुक्त उनकी कालशक्तिने उन्हें जीवोंके कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये प्रेरित किया, तब उन्होंने अपने शरीरमें लीन हुए अनन्त लोक देखा॥ जिस समय भगवान्की दृष्टि अपनेमें निहित लिङ्गशरीरादि सूक्ष्मतत्त्वपर पड़ी, तब वह कालाश्रित रजोगुणसे क्षुभित होकर सृष्टिरचनाके निमित्त उनके नाभिदेशसे बाहर निकला॥ कर्मशक्तिको जाग्रत् करनेवाले कालके द्वारा विष्णुभगवान्की नाभिसे प्रकट हुआ वह सूक्ष्मतत्त्व कमलकोशके रूपमें सहसा ऊपर उठा और उसने सूर्यके समान अपने तेजसे उस अपार जलराशिको देदीप्यमान कर दिया॥ सम्पूर्ण गुणोंको प्रकाशित करनेवाले उस सर्वलोकमय कमलमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वे विष्णुभगवान् ही अन्तर्यामिरूपसे प्रविष्ट हो गये। तब उससे बिना पढ़ाये ही स्वयं सम्पूर्ण वेदोंको जाननेवाले साक्षाद्वेदमूर्ति श्रीब्रह्माजी प्रकट हुए, जिन्हें लोग स्वयम्भू कहते हैं॥ उस कमलकी कर्णिकामें बैठे हुए ब्रह्माजीको जब कोई लोक दिखायी नहीं दिया, तब वे आँखें फाड़कर आकाशमें चारों ओर गर्दन घुमाकर देखने लगे, इससे उनके चारों दिशाओंमें चार मुख हो गये॥ उस समय प्रलयकालिक पवनके थपेड़ोंसे उछलती हुई जलकी तरङ्गमालाओंके कारण उस जलराशिसे ऊपर उठे हुए कमलपर विराजमान आदिदेव ब्रह्माजीको अपना तथा उस लोकतत्त्वरूप कमलका कुछ भी रहस्य न जान पड़ा॥ वे सोचने लगे, 'इस कमलकी कर्णिकापर बैठा हुआ मैं कौन हूँ? यह कमल भी विना किसी अन्य आधारके जलमें कहाँसे उत्पन्न हो गया? इसके नीचे अवश्य कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिये, जिसके आधारपर यह स्थित है'॥ ऐसा सोचकर वे उस कमलकी नालके सूक्ष्म छिद्रोंमें होकर उस जलमें घुसे। किन्तु उस नालके आधारको खोजते-खोजते नाभिदेशके समीप पहुँचकर भी वे उसे पा न सके॥ विदुरजी! उस अपार अन्धकारमें अपने उत्पत्तिस्थानको खोजते-खोजते ब्रह्माजीको बहुत काल बीत गया। यह काल ही भगवान्का चक्र है, जो प्राणियोंको भयभीत करता हुआ उनकी आयुको क्षीण करता रहता है॥"

"ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः।
शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः॥
कालेन सोऽजः पुरुषायुषाभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः।
स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभातमपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम्॥
तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोजमात्मानमम्भः श्वसनं वियच्च।
ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः॥"

(श्रीमद्भागवत ३.८.२१, २२, ३२)

"अन्तमें विफलमनोरथ हो वे वहाँसे लौट आये और पुनः अपने आधारभूत कमलपर बैठकर धीरे-धीरे प्राणवायुको जीतकर उन्होंने चित्तको निःसङ्कल्प किया और वे समाधिमें स्थित हो गये॥ इस प्रकार पुरुषकी पूर्ण आयुके समान कालतक अच्छी तरह योगाभ्यास करनेपर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्माजीको ज्ञान प्राप्त हुआ; तब उन्होंने अपने उस अधिष्ठानको, जिसे वे पहले खोजनेपर भी नहीं देख पाये थे, अपने अन्त:करणमें शेषशायी विष्णुरूपसे प्रकाशित होते देखा॥ तब विश्वरचनाकी इच्छावाले लोकविधाता ब्रह्माजीने भगवान्के नाभिसरोवरसे प्रकट हुआ वह कमल, जल, आकाश, वायु और अपना शरीर—केवल ये पाँच ही तत्त्व देखा, इनके अतिरिक्त कुछ उन्हें दिखाई न दिया॥''

तैत्तिरीयशैलीमें पञ्चभूतोंकी दृष्टिसे विचार करनेपर ३२वें श्लोकमें जिन पाँच तत्त्वोंका उल्लेख है, उनमें **'वियत्'** पदसे आकाशका साक्षात्-उल्लेख प्राप्त है। **'श्वसनम्'** शब्दसे वायुका साक्षात्-उल्लेख प्राप्त है। **'अम्भः'** शब्दसे जलका साक्षात्-उल्लेख प्राप्त है। शेष दो तत्त्वोंके स्थानपर श्रीहरिकी नाभिसे प्रादुर्भूत सरोज और सरोजसे प्रादुर्भूत ब्रह्माका वर्णन है। १४वें श्लोक **'स पद्मकोशः...'** में लोकपद्मका तेजोरूपसे वर्णन उसे तेज सिद्ध करता है। पारिशेष्यन्यायसे श्रीब्रह्माजीका श्रीविग्रह सूक्ष्म पृथ्वी सिद्ध है। **'आकाशशरीरं ब्रह्म'** (तैत्तिरीयोपनिषत् १.६.२), **'कारणोपाधिरीश्वरः'** (शुकरहस्योपनिषत् १२) के अनुसार कारणात्मक भगवद्विग्रह अव्याकृतरूप सिद्ध है।

उक्त तथ्यको प्रकारान्तरसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि अव्याकृतात्मक भगवद्विग्रहका नाभिरूप एकदेश उच्छूनावस्थाको प्राप्त आकाशात्मक है। उससे प्रादुर्भूत कमल वाय्वात्मक (वायुरूप) है। पद्मसे प्रादुर्भूत ब्रह्मा तेजोरूप हैं। 'सलिल' शेष है। अभिप्राय यह है कि मायासहित परब्रह्म अव्याकृत है। अव्याकृतके आधिदैविकरूप श्रीविष्णु हैं। अव्याकृतसे प्रादुर्भूत आकाशका आधिदैविकरूप नाभि है। आकाशसे प्रादुर्भूत वायुका आधिदैविकरूप नाभिसे प्रादुर्भूत पद्म है। वायुसे प्रादुर्भूत तेजके आधिदैविकरूप पद्मसे प्रादुर्भूत ब्रह्मा हैं। तेजसे प्रादुर्भूत जलके आधिदैविकरूप भगवान् श्रीविष्णुकी शय्यारूप शेष हैं। उत्ताल तरगें फणतुल्य हैं।

उक्त रीतिसे **'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्'** (तै० सं० ७.१.५.१) के सायणभाष्यकी संगति सध जाती है कि 'इस समय दृश्यमान गिरिनदीसमुद्रादिक जगत् पृथिवीकी उत्पत्तिके पूर्व सलिल ही था।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथवा **'आकाशशरीरं ब्रह्म'** (तैत्ति० १.६.२) के अनुसार प्रलयावशेष भगवान् विष्णु आकाशात्मक हैं। उनकी नाभि आकाशस्थ उच्छूनावस्थारूप वायु है। नाभिसे प्रादुर्भूत कमल तेजोरूप है। शेष जलरूप हैं। नाभिकमलसे प्रादुर्भूत ब्रह्मा पृथिवीरूप हैं। ईश्वरीय तेजसे उपबृंहित ब्रह्मा स्थूल आकाशादि सहित ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्डान्तर्गत प्राणिप्रभेदकी रचना करते हैं। 'जल ही था' का अभिप्राय 'पृथिवी और आकाशादि भूत जलसे तादात्म्यापन्न थे' ग्रहण करना उपयुक्त है।

'कल्पभेदसे सर्गभेदका क्रम और विक्रमनिरूपण योगवासिष्ठादिमें है; अतः यहाँ भी जलसे ही शेष आकाशादिकी उत्पत्ति क्यों न मान ली जाय' ऐसा कथन उपयुक्त नहीं। **'यथापूर्वमकल्पयत्'** (ऋग्वेद १०.१९०.३), **'यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम्'** (भाग० ३.१०.१३)-'जैसा पूर्वकल्पमें था, वैसा ही रचा', 'यह जगत् जैसा अब है, वैसा ही पहले था और भविष्यमें भी वैसा ही रहेगा' आदि श्रुति-स्मृतिविरुद्ध होनेसे उक्त कथन अमान्य है। कल्पभेदसे चरित्रचित्रणमें भेद संभव होनेपर भी सर्गक्रममें भेद उपयुक्त नहीं। कल्पभेदसे चरित्रचित्रणमें भेद शास्त्रसम्मत होनेसे मान्य है—

"पुनः पुनः कल्पभेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च।
अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः क्वचित् क्वचित्॥"
(आनन्दरामायणपूर्वकाण्डे ७.२९)

"कलपभेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए।
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥"
(रामचरितमानस १.३३.७, ८)

उक्त कथन युक्तिविरुद्ध भी है। जलके सन्निकट अधिक संख्यावाली विशेषता सम्पन्न होनेसे जलसे पृथिवीका ही प्रादुर्भाव सम्भव है, न कि जलकी अपेक्षा निर्विशेष तेज, वायु और आकाशका। अभिप्राय यह है कि आकाशमें शब्दनामक एक गुण है। वायुमें शब्द और स्पर्शनामक दो गुण हैं। तेजमें शब्द, स्पर्श और रूपनामक तीन गुण हैं। जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रसनामक चार गुण हैं। पृथिवीमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धनामक पाँच गुण हैं। यही कारण है कि आकाशसे वायुकी, वायुसे तेजकी, तेजसे जलकी, जलसे पृथिवीकी उत्पत्ति सम्भव है। उपादेयसे उपादानका निर्विशेष, सूक्ष्म, शुद्ध, विभु और प्रत्यक् होना अनिवार्य है।

चरमकार्य पृथिवी-वृक्षादिमें जहाँ उपादान-उपादेयभाव उपचरित है; पूर्वोत्तर विद्यमानतादिको लेकर ही मृद्घटादितुल्य जिनमें उपादानोपादेयभाव है, उनको लेकर सर्गवैलक्षण्यका उपपादन वासिष्ठादिमें उपयुक्त ही है। सविशेषसे निर्विशेषकी उत्पत्ति पृथिवीसे जलकी, काष्ठसे वह्निकी उत्पत्तिके तुल्य निमित्त-नैमित्तिकभावको लेकर सम्भव है, न कि उपादानोपादेयभावको लेकर। देवोंमें देहत्यागके विना पितासे पुत्र और पुत्रसे पिताकी उत्पत्तिरूपा अन्योन्यप्रकृतिता महामहिमान्वितताको लेकर चरितार्थ है। जहाँ कहीं आकाशसे जल या जलसे तेज आदिकी उत्पत्तिका महाभारतादिमें उल्लेख है, वहाँ वह निमित्त-नैमित्तिकदृष्टिसे चरितार्थ है अथवा सृष्टिकी अनिर्दचनीयता और आत्माकी अद्वितीयताके प्रतिपादनमें विनियुक्त है। तैत्तिरीयशैलीमें आकाशादि पाँच भूतोंकी तथा छान्दोग्यशैलीमें तेज आदि तीन भूतोंकी सिद्धि उपलक्षणविधया अथवा अन्तर्भावरीत्या चरितार्थ है।

'तम आसीत्' (ना० सू० ३) की उक्तिसे जिस भावरूप अज्ञानको श्रुतिने महाप्रलयमें शेष माना है; वह **'आनीदवातम्'** (२) की उक्तिसे निरूपित सत्संज्ञक ब्रह्मके समाश्रित मान्य है। **'सलिलं सर्वमा इदम्'** (३) की उक्तिसे जगत्को उस कारणात्मक तमोभूत अज्ञानमें क्षीरसे एकीभूत नीरके तुल्य संगत अर्थात् सर्वतोभावेन एकीभूत अर्थात् तादात्म्यापन्न माना गया है। उसीको विवक्षावशात् **'नासदासीन्नोसदासीत्'** की उक्तिसे प्रथम ऋचामें शशशृङ्गतुल्य न तो असत् ही माना गया है और न पृथिव्यादितुल्य इन्द्रियगोचर भावरूप सत् ही माना गया है। उसे परम अबाध्य ब्रह्मतुल्य सत् भी नहीं माना गया है।

महाप्रलयमें अवशिष्ट तत्त्व पूर्वसर्गका लयस्थान और उत्तरसर्गका उपादान होनेसे शशशृङ्गतुल्य असत् नहीं हो सकता, अत एव उसे सत् मानना उपयुक्त है, साथ ही जगत्तुल्य व्यवहार्य और ब्रह्मतुल्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वह अबाध्य भी नहीं हो सकता; अतः उसे असत् कहना उपयुक्त है। ऐसी स्थितिमें वेदान्तोंमें मायारूपसे प्रथित वह तत्त्व सत्-असत्-उभय-विलक्षण होनेसे अनिर्वचनीय तथा वन्ध्यापुत्रवत् 'असत्' न होनेसे तथा जगत् तथा ब्रह्मतुल्य सत् न होनेसे अर्थात् जगत्की अपेक्षा स्थिर और ब्रह्मकी अपेक्षा अस्थिर होनेसे उभयात्मक भी कहा जाता है। ब्रह्माधिष्ठिता माया और मायाकल्पित जगत् दोनोंकी ब्रह्ममें अध्यस्तता दोनोंकी असद्रूपता सिद्ध करती है। महाप्रलयमें मायाद्वारसे जगत् सत्संज्ञक ब्रह्ममें उसी प्रकार स्थित रहता है, जिस प्रकार बीजभण्डारमें बीजद्वारसे अंकुरादि बीजोपादान मृत्तिकामें सन्निहित रहते हैं।

'सत्'-'असत्' अर्थात् भावाभावका सहावस्थान और तादात्म्य जहाँ असंगत है; वहाँ उक्त रीतिसे स्त्रीशरीरमें मातृ-भगिनीसन्निवेश और सहावस्थानसदृश मायामें सदसत्-सन्निवेश और सहावस्थान भी सुसंगत है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार 'माता' भगिनी नहीं है और 'भगिनी' माता नहीं है; परन्तु एक ही स्त्री किसीकी माता और किसीकी भगिनी दोनों ही है; उसी प्रकार 'सत्' असत् नहीं है और 'असत्' सत् नहीं है; परन्तु एक ही माया किसी दृष्टिसे सत् और किसी दृष्टिसे असत् दोनों ही है। जिस प्रकार 'प्रकृति' विकृति नहीं है और 'विकृति' प्रकृति नहीं है; परन्तु महदादि प्रकृति-विकृति दोनों ही हैं; उसी प्रकार 'सत्' असत् नहीं है और 'असत्' सत् नहीं है; परन्तु भेदकोपाधिकी विवक्षासे माया सदसदात्मिका दोनों ही है।

'जगत्' शशशृङ्गतुल्य असत् नहीं है तथा ब्रह्मतुल्य अबाध्य-सत् नहीं है; अत एव अनिर्वचनीय अथवा उभयात्मक मान्य है। महाप्रलयमें जगत्का ब्रह्मसे क्षीरसन्निविष्ट नीरका क्षीरसे तादात्म्यतुल्य तादात्म्य है। महाप्रलयमें मायाका ब्रह्मसे बीजमृत्तिकातुल्य, दाहिकाशक्तिवह्नितुल्य, तरंगशक्तिजलतुल्य तादात्म्य है। अभिप्राय यह है कि माया बीजतुल्य (अंकुरोत्पादिनी शक्तिसदृश) और ब्रह्म बीजोपादान मृत्तिकातुल्य है। माया दाहिकाशक्तितुल्य और ब्रह्म वह्नितुल्य है। माया तरंगशक्तितुल्य और ब्रह्म जलतुल्य है। जगत् वृक्ष, दाह, तरंगतुल्य है। जिसप्रकार वृक्षसहित बीजका आश्रय मृत्तिका है; उसी प्रकार जगत्-सहित मायाका आश्रय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्म है। जिस प्रकार दाहसहित दाहिकाशक्तिका आश्रय अग्नि है; उसी प्रकार जगत्-सहित मायाका आश्रय ब्रह्म है। जिस प्रकार तरंगसहित तरंगशक्तिका आश्रय जल है; उसी प्रकार जगत्-सहित मायाका आश्रय ब्रह्म है। जिस प्रकार वृक्षसहित बीजके विना भी मृत्तिका है; उसी प्रकार जगत्-सहित मायाके विना भी ब्रह्म है। जिस प्रकार दाहसहित दाहिकाशक्तिके विना भी वह्नि है; उसी प्रकार जगत्-सहित मायाके विना भी ब्रह्म है। जिस प्रकार तरंगसहित तरंगशक्तिके विना भी जल है; उसी प्रकार जगत्-सहित मायाके विना भी ब्रह्म है। जिस प्रकार मृत्तिकाके विना बीजसहित वृक्ष नहीं है; उसी प्रकार ब्रह्मके विना मायासहित जगत् नहीं है। जिस प्रकार वह्निके विना दाहिकाशक्तिसहित दाह नहीं है; उसी प्रकार ब्रह्मके विना मायासहित जगत् नहीं है। जिस प्रकार जलके विना तरंगशक्तिसहित तरंग नहीं है; उसी प्रकार ब्रह्मके विना मायासहित जगत् नहीं है।

इस जगत्का मूलकारण महाप्रलयदशामें शशविषाणतुल्य नितान्त असत् नहीं था; क्योंकि ऐसे कारणसे इस दृश्यमान जगत्की उत्पत्ति सम्भव नहीं। सृष्टिरचनाके पूर्व महाप्रलयावस्थामें द्वैतप्रपञ्च नहीं था। ऐसा होनेपर भी जगत्कारणरूपसे जो विद्यमान था, वह असत् नहीं था। अभिप्राय यह है कि उस समय शून्यवादियोंको मान्य सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य शशशृङ्गतुल्य निरुपाख्य शून्य नहीं था। यह नियम है कि शून्यका तो न कहीं आरोप हो सकता है और न शून्य किसीका अधिष्ठान ही हो सकता है, न शून्यसे सत् (भाव) की उत्पत्ति ही हो सकती है। शशशृङ्गादि जहाँ आकाशकुसुमादिके कारण नहीं हो सकते, वहाँ घटादिके भी कारण नहीं हो सकते। कहा भी है- **'नास्त्यसद्धेतुकमसत् सदसद्धेतुकं तथा'** (माण्डूक्यकारिका ४.४०)।

महाप्रलयमें जो जगत्कारणरूपसे विद्यमान था, वह सत् नहीं था, असत् नहीं था, सदसत् नहीं था; तीनोंसे विलक्षण अनिर्वाच्य मायानामक पदार्थ ही था। यह नियम है कि **'सच्च सद्धेतुकं नास्ति सद्धेतुकमसत्कुतः'** (माण्डूक्यकारिका ४.४०), -'सत् न तो सत्का कारण हो सकता है और न असत्का ही।' घटादि न तो घटादिके हीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारण हो सकते हैं, न शशशृङ्गादिके ही। कार्य-कारणमें अपेक्षित तादात्म्यको यद्यपि सत्से सत्की या असत्से असत्की या सदसत्से सदसत्की उत्पत्ति मानकर साधा जा सकता है; परन्तु उत्पत्ति नहीं साधी जा सकती। इस प्रकार तादात्म्य नहीं तो कार्य-कारणभाव नहीं और तादात्म्य है तो कार्य-कारणभाव नहीं; अर्थात् तादात्म्य, अतादात्म्य उभयस्थितियोंमें उक्त रीतिसे उत्पत्ति असिद्ध है।

पृथ्वी आदिकी कार्यरूपता दृश्यत्व, सावयवत्व, परिच्छिन्नत्व, अनित्यत्वादि हेतुओंसे मान्य है। पारिशेष्यन्यायसे सत्, असत्, सदसत्से विलक्षण अनिर्वचनीया माया ही कारण सिद्ध होती है तथा कार्य भी तदनुरूप अनिर्वाच्य ही सिद्ध होता है। इस प्रकार कार्य-कारणमें तादात्म्य सध जाता है। **'मायावादिमते क्वचिदपि कार्यकारणभावस्य वस्तुभूतस्यासम्प्रतिपत्तेः'** (आनन्दगिरिः माण्डूक्यकारिका ४.२०)।

शुद्धात्मतत्त्वको जगत्कारण अधिष्ठानरूपसे माना गया है और माया अथवा मायाशबलको उपादानरूपसे—

''भ्रमाधिष्ठानताऽस्माभिः प्रकृतित्वमुपेयते।
निर्गुणेप्यस्ति जात्यादौ सा ब्रह्म प्रकृतिस्ततः ।।

(वैयासिकन्यायमाला; ब्रह्मसूत्र २.१.१३. ३५)

तादात्म्यासिद्धिके वारणके लिये परस्पर विलक्षण सत्, असत्के स्थानपर उभयविलक्षण मायाको प्रपञ्चोपादान माना गया है। अभिप्राय यह है कि 'जगत्' मायाका परिणाम और ब्रह्मका विवर्त है। 'माया' ब्रह्मशक्ति है। शक्ति शक्तिमान्से न भिन्न होती है, न अभिन्न; अतः अनिर्वचनीया होती है। यथा (जिस प्रकार) मृन्निष्ठ (मिट्टीमें रहनेवाली) प्रपञ्चोत्पादिनी शक्ति मृत्तिकासे न भिन्न होती है; न अभिन्न, उभयविलक्षण होनेसे अनिर्वचनीया होती है। तथा (उसी प्रकार) कोई भी शक्य (शक्तिकार्य) उसके आश्रय शक्तिमान् (शक्त) से न भिन्न होता है, न अभिन्न; अपितु उभयविलक्षण होनेसे अनिर्वचनीय होता है। अभिप्राय यह है कि कार्यसहित शक्ति आश्रय शक्तिमान्में अध्यस्त होती है। जिस प्रकार वह्निनिष्ठा दाहिकाशक्ति वह्निविलक्षणा होती है; उसी प्रकार सन्निष्ठा मायाशक्ति सद्विलक्षणा होती है। सद्विलक्षणा मायाशक्ति असद्विलक्षणा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी होती है। सदसद्विलक्षणा होनेसे मायाशक्ति अनिर्वचनीया होती है, साथ ही कार्यानुमेया भी।

ध्यान रहे, **नासदीयसूक्तम्** में विवक्षावशात् मायाको (i) **न सत् (१)**, (ii) **न असत् (१)**, (iii) **स्वधा (२)**, (iv) **तमस् (३)**, (v) **तुच्छ (३)**, (vi) **आभु (३)**, (vii) **असत् (४)**, (viii) **मनस् (५) और** (ix) **परमव्योम (७)**— इन नौ नामोंसे अभिहित किया गया है। परमात्माका 'मन' मायारूप है। परमव्योमका अर्थ जहाँ सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा है; वहाँ **'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्'** (तैत्तिरीयोपनिषत् २.१) की शैलीमें अव्याकृतसंज्ञक माया भी है। कठरुद्रोपनिषत्ने भी मायाको परमव्योमरूप माना है— **"संसारे च गुहावाच्ये मायाज्ञानादिसंज्ञके। निहितं ब्रह्म यो वेद परमे व्योम्नि संज्ञिते। सोऽश्नुते सकलान्कामान्क्रमेणैव द्विजोत्तमः ॥"** (१०, ११)।

नासदीयसूक्तमें आनीदवात (२) और **अध्यक्ष** (७)- इन दो शब्दोंके द्वारा ब्रह्मको अभिहित किया गया है। **रेतोधाः** (५) और **प्रयतिः** (प्रयतिता) कहकर जीवको अभिहित किया गया है। **स्वधा** (३), **सत्** (४), **विसर्जन** (६), **विसृष्टि** (६, ७)- इन चार शब्दोंके द्वारा जगत्को अभिहित किया गया है।

आवर्य पृथिव्यादि चतुर्दशभुवनगर्भ ब्रह्माण्डके तुल्य आवरक पृथिव्यादि महत्तत्त्वपर्यन्त उपादानात्मक तत्त्व भी कार्यकोटिके होनेसे महाप्रलयमें ब्रह्माधिष्ठिता मायारूपसे ही अवशिष्ट रहते हैं। आभूषणरूप आवर्यके न रहनेपर भी सुवर्णरूप आवरक शेष रहता है; परन्तु महाप्रलयमें कोई भी आवरक शेष नहीं रहता। **'तमसा गूळ्हमग्रे'**, **'तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्'** (३) इस वक्ष्यमाण वचनके अनुसार बीजमें सन्निहित अंकुरादिको बीजसे समावृत करनेके तुल्य असत्कल्प तमस्में सन्निहित जगत्को तमस्से समावृत कहा गया है। कार्यकी अपेक्षा कारणमें निर्विशेषता, सूक्ष्मता, शुद्धता, विभुता और प्रत्यग्रूपता होती है। यही कारण है कि कार्य आवर्य और कारण आवरक बन जाता है। कारणके बोधमें प्रतिबन्धक होनेसे कार्य आवरक माना जाता है; जैसे कि मृद्घट मृत्तिकादर्शनमें प्रतिबन्धक होनेसे आच्छादक मान्य है। कारण कार्यमें अनुगत होनेसे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आच्छादक मान्य है; जैसे कि मृत्तिका अपनी अनुगतिसे घटादिकी आच्छादिका मान्य है।

शास्त्रोंमें चार प्रकारका प्रलय माना गया है-(१) नित्य, (२) नैमित्तिक, (३) प्राकृतिक और (४) आत्यन्तिक। सावयव कार्यात्मक देहादिका प्रतिक्षण परिवर्तन **'नित्यप्रलय'** है। ब्रह्माजीकी निद्राके निमित्त 'भूः' आदि लोकत्रयका प्रलय **'नैमित्तिकप्रलय'** है। चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्डसहित भुवनोपादान पृथिव्यादितत्त्वोंका प्रकृतिमें लय **'प्राकृतप्रलय'** है। ब्रह्मात्मविज्ञानके अमोघप्रभावसे अविद्या और उसके कार्यका छेदनकर जीवका स्वरूपेणावस्थान **'आत्यन्तिकप्रलय'** है।

सहस्र चतुर्युगपर्यन्त ब्रह्माजीका दिन होता है। दिनके तुल्य ही उनकी रात्रि होती है। तीन सौ साठ दिनों (दिन-रात्रि) का वर्ष होता है। सौ वर्षोंकी ब्रह्माजीकी पूर्णायु होती है। उसीको द्विपरार्ध कहते हैं। ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होते ही पञ्चभूतात्मक जगत् मायामें लीन होता है। ब्रह्माजी भी मायामें लीन होते हैं। ब्रह्माजीके तुल्य ही रुद्रादिमूर्तियाँ भी मायामें लीन होती हैं। उत्तरसर्गमें हेतुभूता प्रकृतिसंज्ञक माया महाप्रलयमें सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मादिसंज्ञक परमेश्वरमें अभेदेन स्थिति लाभ करती है॥ १॥

'नासदीयसूक्तम्' के मायाश्रयस्वप्रकाशपरब्रह्मशेषसन्दर्भान्तर्गत द्वितीय मन्त्रमें कहा गया है कि उस प्रतिहारसमय (महाप्रलय) में प्रतिहर्ता (संहर्ता) मृत्यु नहीं था और न मृत्युके अभावसे सिद्ध अमरणस्वभाव कोई प्राणी ही था। रात्रि-दिन और इनसे उपलक्षित मास, ऋतु, संवत्सरप्रभृति सर्वकाल और कालज्ञानके न रहनेसे 'मृत्यु नहीं था' यह कथन सर्वथा चरितार्थ ही है। अभिप्राय यह है कि दाह्यतुल्य संहार्य भोग्य और भोक्तृप्रपञ्चका दाहतुल्य मृत्युसंज्ञक संहार हो जानेपर दाहकतुल्य अमृतसंज्ञक संहारक महाकाल भी महाप्रलयमें शेष नहीं रहता। अथवा सर्वसंहारक मृत्युसंज्ञक काल और ज्ञानमय अमृतसंज्ञक जीव शिवतादात्म्यापन्न होकर स्थित रहता है। कार्यप्रपञ्चका उपादानात्मक लयस्थान महाकारण माया भी वक्ष्यमाण मायाश्रय महेश्वरसे एकीभूत रहती है।

ध्यान रहे, 'मृत्यु' अग्नितुल्य है। महाप्रलय उत्तरसर्गकी अपेक्षा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मृत्युकी अभिव्यक्तिकी पूर्वावस्था है। पूर्वसर्गकी अपेक्षा वह मृत्युके ध्वंसकी उत्तरावस्था है। अतएव 'महाप्रलयमें मृत्यु नहीं था' यह कथन युक्तियुक्त है। अग्निकी अभिव्यक्तिके पूर्व और अग्निके ध्वंसके पश्चात् अग्निका असत्त्व दृष्टान्त है। इस कथनके पीछे दार्शनिकता यह है कि भोगका हेतु कर्म है। फलोन्मुख परिपक्व कर्माधीन ही भोग है। विना कर्मके भोग असम्भव है। इस तथ्यको न माननेवालोंके मतमें अकृताभ्यागमदोष अनिवार्य है। कर्मफलोपभोगके अनन्तर फलोन्मुख कर्मके अभावमें भोग्यप्रपञ्चका प्रयोजन शेष न होनेसे अवस्थान अनुपयुक्त है। परम कृपालु भगवान् समस्त जीवोंको सर्गके अनुरूप समय तक विश्राम प्रदान करनेके लिये महाप्रलयका संकल्प करते हैं। संहारक मृत्यु भी संहारके अनन्तर परमेश्वरका ग्रास बन जाता है। उस समय परमेश्वरके अतिरिक्त कोई भी मृत्युञ्जय नहीं होता। कर्मफलोपभोगके लिये अथवा प्रलयका द्रष्टा होनेके लिये कोई भी कार्यकरणसंघातात्मा अमरणधर्मा प्राणी उस समय अवशिष्ट नहीं रहता। न तो उस समय सृष्टि होती है, न उसका संहार होता है, न संहर्ता (मृत्यु) होता है, न संहारसे अवशिष्ट कोई प्राणी ही रहता है। ध्यान रहे. केवल पुरुषका नाम प्राणी नहीं है तथा न केवल महदादि जड वस्तुओंका नाम ही प्राणी है। पुरुष और सांख्योक्त प्रकृति, महत् आदि चौबीस तत्त्वोंके समूहका नाम भूतसंज्ञक प्राणी है—

> "पुरुषः प्रकृतिबुद्धिर्विषयाश्चेन्द्रियाणि च।
> अहंकारोऽभिमानश्च समूहो भूतसंज्ञकः ॥"
>
> (महाभारते शान्तिपर्वणि २०५.२४)

ऐसा होनेपर भी अंडजादि शरीरोंके साक्षात् उपादान और अमित होनेके कारण पृथिव्यादि भूतोंको महाभूत कहा जाता है—

> "अमितानां महाशब्दो यान्ति भूतानि सम्भवम्।
> ततस्तेषां महाभूतशब्दोऽयमुपपद्यते ॥"
>
> (महा० शान्ति० १८४.३)

निरपेक्ष अमृत ब्रह्म और ब्रह्माधिष्ठिता माया है। महाप्रलयमें उसका सत्त्व ही श्रुतिका प्रतिपाद्य है। अतएव उसका (निरपेक्ष अमृतका)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतिषेध अप्राप्त है। सापेक्ष अमृत प्रलयमें अवशिष्ट महः, जनः, तपः और सत्यम् संज्ञक परमेष्ठि-लोक, देह और पद है, उसीका प्रतिषेध यहाँ विवक्षित है। व्यष्टि, समष्टि सूक्ष्म और कारणशरीरपर्यन्त जीवभाव है। महाकारण मायामें सूक्ष्म और कारणप्रपञ्चका विलय हो जानेके कारण जीवसंज्ञक अमृतका प्रतिषेध महाप्रलयमें उपयुक्त ही है। ब्रह्माधिष्ठिता मलिनसत्त्वगुणप्रधाना प्रकृति निमित्तकारण और तमःप्रधाना प्रकृति उपादानकारण है। मलिनसत्त्वप्रधाना और तमःप्रधाना प्रकृतिका लयस्थान त्रिगुणमयी गुणसाम्या माया महाकारण है। ब्रह्माधिष्ठिता माया महाप्रलयमें शेष रहती है।

अब प्रश्न उठता है कि यदि श्रुतिको महाप्रलयमें कालका भी प्रतिषेध ही अपेक्षित है तो कालवाचक **'तर्हि'-'तदानीम्'** (उस समय) यह पद क्यों प्रयुक्त है? इसका उत्तर यह है कि यह पद उपचारार्थ अर्थात् गौण है। वस्तुस्थिति यह है कि जैसे इदानीम् (इस समय) निषेधका अवच्छेदक काल है, वैसे ही माया भी निषेधका अवच्छेदक होनेसे अर्थात् नामरूपात्मक जगत्का निषेध मायागर्भित होनेसे अवच्छेदक समानतासे अकालमें भी कालवाचक प्रत्ययकी संगति सम्भव है। अभिप्राय यह है कि घट, पट, पृथिव्यादि कार्योंकी प्रतीति आनुभविकी (अनुभवसिद्ध) नहीं है। कारण यह है कि वर्तमानत्वादिरूप कालका स्फुरण सर्वथा विशेषणरूपसे ही चरितार्थ है। **'इदानीं जायते', 'तदानीं नश्यति'**— 'इस समय उत्पन्न होता है', 'उस समय नष्ट होता है'—इस प्रकार जन्म-नाशके अवच्छेदकरूपसे कालकी प्रतीति होनेपर भी लयाधारत्वादिरूप (लयावशेषत्व, निर्विशेषत्वादि रूप) उपादानकारणता कालमें चरितार्थ नहीं है। सत्-असत्-विलक्षणा अनिर्वचनीया माया मुख्य ईक्षणादिमें समर्थ न होनेपर भी अवष्टम्भादि गुणोंके योगसे (अर्थात् तमःप्रधाना प्रकृतिके योगसे) भूत-भौतिकप्रपञ्चका परिणामोपादान हो सकती है। अतएव महाप्रलयमें कालातीत महामाया ही कालगर्भित पृथिव्यादिके निषेधका अवच्छेदक अर्थात् उपादानरूपसे अवशिष्ट हो सकती है। परमात्मामें मुख्य ईक्षण भी विशुद्धसत्त्वात्मिका मायाके योगसे ही सम्भव है। अतएव ब्रह्माधिष्ठिता माया जगत्का निमित्तकारण भी हो सकती है। इस प्रकार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्ममें अभिन्ननिमित्तोपादानकारणत्व जिस मायाके आध्यासिक योगसे है, वही महाप्रलयमें कालगर्भित पृथिव्यादिके निषेधका अवच्छेदक हो सकती है। ब्रह्माधिष्ठिता मायाकी अभिन्ननिमित्तोपादानकारणता निम्नलिखित वचनोंसे सिद्ध है—

''मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥''

(श्वेताश्वतरोपनिषत् ४.१०)

''मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥''

(भगवद्गीता ९.१०)

अशेषविशेषातीत स्वतःसिद्ध परब्रह्मका विधिमुखसे प्रतिपादन (२)

अथवा **'तदानीम्'** आदि कालवाचक पदोंकी सार्थकता भी मायोपहित ब्रह्मकी कालरूपताके कारण संभव है। जब भोग्य और भोगप्रद काल नहीं था तथा भोक्ता-कर्त्ता भी नहीं था, तब कौन था? क्या शून्य ही तो नहीं था? नहीं, सम्पूर्ण प्राणिसमूहको आत्मसात् किये स्वयम् विना वायु (प्राण) के ही वह प्राणका भी प्राण प्राणनकर्त्ता परब्रह्म प्रतिष्ठित था। ऐसा भी नहीं कि मायासंयुक्त होनेपर भी शुद्धब्रह्मकी महाप्रलयमें असम्भावना सांख्यसम्मत प्रकृति अर्थात् त्रिगुणात्मिका स्वतन्त्रा मायाको ही सिद्ध करती है। वस्तुस्थिति यह है कि नित्यता, असंगता और अद्वितीयताको न त्यागे हुए अर्थात् साधे हुए ही स्वनिष्ठ (जलनिष्ठ) शैत्यको आत्मसात् किये सलिल (जल) के तुल्य वह परब्रह्म मायाको आत्मसात् किये अर्थात् सर्वथा एकीभूत किये स्थित था। स्थूणानिखननन्यायसे इस तथ्यकी परिपुष्टि की जाती है। उस परब्रह्मसे पर निःसन्देह कुछ भी नहीं था। सर्गकालिक द्वैत उस समय नहीं था। द्वैतबीज मायाको परब्रह्म अपनेमें अध्यस्त बनाये-आत्मसात् किये हुए था। जब भूत-भौतिक द्वैतबीज माया भी परब्रह्ममें अध्यस्त ही थी, तब किसको लेकर द्वैत होता? महाप्रलयमें ब्रह्मसे तादात्म्यापन्न या अविभागापन्न होकर ही स्वधासंज्ञक माया विद्यमान थी। ब्रह्माश्रिता माया वृक्षाश्रित अमरबेलके तुल्य ब्रह्माण्डपुष्पोत्पादिनी विचित्रशक्तियोंसे सम्पन्न स्वतन्त्रसत्ताशून्य होती

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुई भी विद्यमान थी। वह ब्रह्मसे पृथग्गणनाके योग्य नहीं थी। सर्वथा शक्तिमात्रकी पृथक्-गणना सम्भव नहीं। शक्तिकार्य उस समय था नहीं, ऐसी स्थितिमें मायासहित सत्तत्त्व सद्वितीय हो, ऐसा सम्भव नहीं।

इस प्रकार अनिर्वचनीया मायाके योगसे भी ब्रह्म वस्तुतः **'आनीदवात'** अर्थात् स्वतन्त्रसत् सिद्ध होता है। ब्रह्मके योगसे माया सत् अर्थात् निर्वाच्य नहीं होती, इसलिये **'नो सदासीत्'** यह पूर्वोक्ति चरितार्थ होती है। वायुके योगसे जैसे आकाश चञ्चल नहीं होता और आकाशके योगसे वायु स्थिर नहीं होता, अग्निके योगसे वायु मूर्त नहीं होता और वायुके योगसे अग्नि अमूर्त (अरूप) नहीं होता; रज्जुसर्पके योगसे रज्जुतत्त्व अनिर्वाच्य नहीं होता और रज्जुयोगसे रज्जुसर्प अबाध्य नहीं होता; वैसे ही मायाके योगसे ब्रह्म अनिर्वाच्य (मिथ्या) नहीं होता और ब्रह्मके योगसे माया सत् नहीं होती।

माया यद्यपि दृश्य है। कार्य और कारण दोनोंके लिये प्रसंगानुसार मायाशब्दका प्रयोग विहित भी है। **'माया ह्येषा मया सृष्टा'** (महाभारतशान्तिपर्वणि ३३९.४५, ४५ १/३) की उक्तिसे कार्यकोटिकी मायाका प्रतिपादन किया गया है। **'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'** (श्वेताश्वतरोपनिषत् ४.१०) की उक्तिसे कारणकोटिकी मायाका प्रतिपादन किया गया है। तथापि कार्यकोटिकी मायाका प्रतिषेध प्रलयदशामें अभीष्ट होनेसे कारणभूता मूलमायाके अतिरिक्त कोई भी दृश्यरूप कार्यात्मक प्रपञ्च नहीं था॥ २॥

महाप्रलय और सृष्टिरचनाका विधिमुखसे प्रतिपादन (३, ४, ५)

नासदीयसूक्तके स्रष्टव्यपर्यालोचनसन्दर्भान्तर्गत तृतीय मन्त्रमें कहा गया है कि सृष्टिके पूर्व महाप्रलयमें कार्यात्मक प्रपञ्चरूप जगत् अनिर्वचनीया मायासंज्ञक भावरूप अज्ञानान्धकारसे एकीभूत था। यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् सलिल अर्थात् कारणसे सङ्गत अतएव अविभागापन्न अज्ञायमान था। क्षीरसे एकीभूत नीरके तुल्य ब्रह्माधिष्ठिता प्रकृतिसे एकीभूत कार्यात्मकप्रपञ्च दुर्विज्ञेय था। तमोभूत असत्कल्प अपने उपादानकारणसे समावृत और उससे सर्वथा एकीभूत जो कार्यात्मक प्रपञ्च था वह स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप परमेश्वरके तपके अद्भुत माहात्म्यसे उत्पन्न हुआ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टिके पूर्व तमस् ही था। जगत्कारण तमस्से नामरूपात्मक प्रपञ्च ढका था। जैसे रात्रिका अन्धकार सब पदार्थोंको ढक लेता है, वैसे ही उस तमस्ने सबको अपने अन्दर गूढ कर रखा था। व्यवहारदशाके समान महाप्रलयदशामें आवरक तमोरूप कर्त्ता और आवर्य जगद्रूप कर्मकी स्पष्ट पृथक्ता ज्ञात नहीं थी। यह संपूर्ण जगत् सलिल अर्थात् कारणसे सङ्गत पूर्णरूपसे अविभागापन्न था अथवा दुग्धमिश्रित जलतुल्य पृथक्विज्ञानका अविषय था। वह क्षीरतुल्य तमस् यद्यपि नीरतुल्य जगत्से प्रबल-सा सिद्ध होता है; परन्तु विचारकोंकी दृष्टिमें तुच्छ अर्थात् अनिर्वचनीय ही है। केवल आवरण करनेका ही इसका स्वभाव है। कालक्रमसे लीन प्रपञ्चको प्रादुर्भूत न होने देनेका स्वभाव नहीं है। फिर तमस् प्रबल हो भी तो परमेश्वरके स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तपके अमोघ प्रभावसे तमस्से आवृत और एकीभूत विविध विचित्रताओंसे भरपूर प्रपञ्चका भी यथापूर्व व्यक्त हो जाना सम्भव है। आच्छादकका ही सर्गदशामें आच्छादन हो जाना और प्रलयदशामें लयस्थान हो जाना—परमेश्वरके अमोघ माहात्म्यका द्योतक है।

जिन पदार्थोंका प्रलयमें निषेध किया गया है, वे ही पदार्थ सर्गकालमें परमात्मासे अधिष्ठित मायासे अभिव्यक्त होते हैं। उन पदार्थोंको परिपूर्ण प्रकाशरूप परमात्माने स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तपसे रचा। परमात्माने मानस यथार्थसंकल्परूप ऋत, वाचिक यथार्थभाषणरूप सत्य तथा इनसे उपलक्षित धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रहादि शास्त्रीय धर्मोंको रचा। इसी प्रकार उसने रात्रि, दिन और जलसे भरपूर समुद्रोंको उत्पन्न किया। उसने सम्वत्सरोपलक्षित सर्वकाल उत्पन्न किया- **'सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि कला मुहूर्ताः काष्ठाश्च'** (तैत्तिरीयारण्यक १०.१.२)। अहोरात्र (दिन-रात) से उपलक्षित सर्वभूतोंको व्यक्त किया। उस विधाताने पूर्वकालके अनुरूप ही कालके ध्वजरूप सूर्य, चन्द्रको तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सुखरूप द्युलोकसंज्ञक त्रिभुवनसे उपलक्षित चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्डको रचा।

श्रुत्यन्तरमें **'न तमः'** कहकर तमस्का प्रतिषेध 'सत्' की विद्यमानतासे है अथवा तेज और तमस् दोनोंका प्रतिषेध प्राप्त होनेसे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कार्यात्मक तमस्का प्रतिषेध है तथा **'सत्किञ्चिदवशिष्यते'** की उक्ति सत्की प्रधानतासे है।

> **"ततः स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम्।**
> **अनाख्यमनभिव्यक्तं सत्किञ्चिदवशिष्यते॥"**
>
> (योगकुण्डल्युपनिषत् ३.२४)

"प्रलयदशामें निश्चल, दुरवगाह, मनका भी अविषय, चन्द्रादि अधिदैवसे भी अतीत, आवरक तमस्से सुदूर, अनभिव्यक्त, अनाख्य—निरूपणका अविषय; शून्यसे सुदूर अशेषविशेषातीत व्यापक स्वप्रकाश सत् ही अवशिष्ट था।" कदाचित् **'न तमः'** की उक्तिसे मायाका ही प्रतिषेध मानें तो **'ज्योतिषामपि तज्जोतिः'** (गीता १३.१७)-'वह ज्योतियोंका भी ज्योति है' की शैलीमें ज्योतिका तथा **'तमसः परमुच्यते'** (गीता १३.१७)-'तमस्से पर कहा गया है' की शैलीमें अज्ञानरूप तमस्का प्रतिषेध मानना उपयुक्त है। **'सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।'**, **'तमःशब्देनाविद्या'** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ४.१) में स्पष्ट ही तमस्का अर्थ अविद्या किया गया है।

उक्त वचन असत्कार्यवाद, असद्वाद, अनीश्वरवाद, परमाणुवाद, आरम्भवाद, परिणामवाद, जडवाद, क्षणिकविज्ञानवाद, खण्डप्रलयवादके व्यावर्तनके अभिप्रायसे है।

यद्यपि मायायुक्त ब्रह्म ही प्रलयदशामें अवशिष्ट था, निर्बीज ब्रह्मसे जगत्की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं, निर्बीजमें जगत्का लय भी सम्भव नहीं; फिर भी माया या तमस्को ही शेष माननेपर प्रस्थानान्तरसिद्ध प्रधानकी सिद्धि होती है; अतः माया, प्रकृति, प्रधान या तमस्से अतीत ब्रह्मको अवशिष्ट रखना श्रुतिको अभीष्ट है। उस ब्रह्मका जगत्को विवर्त मानना उपयुक्त ही है। इस प्रकार जगत्कारणरूपसे भी उसका वर्णन अभीष्ट ही है। नैरात्म्यवाद और जडवादके उच्छेदके लिये ब्रह्मवादका महत्त्व है। ब्रह्मपरिणामवाद और आरम्भवादके उच्छेदके लिये मायावादका महत्त्व है। वस्तुस्थितिको हृदयंगम करनेके लिये दोनों विधाएँ आवश्यक हैं। **'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्....'** (छान्दोग्य ६.२.१) तथा **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म... तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'** (तैत्तिरीय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२.१) आदि श्रुतियाँ ब्रह्मकारणवादकी प्रतिपादिका हैं। **'नासदासीन्नो सदासीत्'** (नासदीयसूक्तम् १), **'अजामेकाम्'** (श्वेताश्वतर ४.५) आदि श्रुतियाँ मायावादकी प्रतिपादिका हैं। तत्त्वोपसंहारन्यायसे तात्पर्य्यनिर्धारण आवश्यक है। सर्वथा निर्धर्मक, निरीह, निर्गुण, सकलविचित्रताशून्य ब्रह्मसे सृष्टि सम्भव नहीं। लोकमें शुद्ध सुवर्णसे निर्मित आभूषण टिकाऊ (स्थिर) नहीं होता, किञ्चित् ताम्रका योग उसके साथ अपेक्षित होता है। सृष्टिके उपयुक्त ब्रह्मके साथ स्वात्मवैभव या स्वात्ममायाके रूपमें शक्तिका योग अपेक्षित है। वह शक्ति भी सर्वथा ब्रह्मरूप ही हो तो द्वैत अनिवार्य है और सृष्टि असम्भव है। ऐसी स्थितिमें शक्तिको बन्ध्यापुत्र और ब्रह्म दोनोंसे विलक्षण स्वीकार करते ही मायावादकी प्रसक्ति अनिवार्य है। **'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्। यः कारणानि निखिलानि'** (श्वेताश्वतर० १.३), **'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥'** (श्वेताश्वतर० ४.१०), **'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥'** (भगवद्गीता ९.१०) आदि श्रुतिस्मृतियाँ उभयकारणवादकी प्रतिपादिका हैं।

यद्यपि जैसे चैत्ररूप कर्त्ता और ग्रामरूप कर्म दोनोंकी सहस्थिति सम्भव होनेपर भी दोनोंका ऐक्य सम्भव नहीं; वैसे ही महाप्रलयमें आवरक तमस् और आवर्य जगत्की सहस्थिति सम्भव होनेपर भी दोनोंका ऐक्य सम्भव नहीं। तथापि आवर्य जगत्के उपादान होनेसे दोनोंका ऐक्य भी सम्भव है। यही कारण है कि स्निग्धमृत्तिकामें और पिण्डावस्थामें सन्निहित घटके सदृश जगत् प्रलयदशामें विशेषरूपसे ज्ञायमान नहीं होता।

सृष्टि-प्रलयसन्दर्भमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस प्रपञ्चका उपादानकारण प्रकृति है। परमात्मा इसका अधिष्ठान है। इसको अभिव्यक्त करनेवाला काल है। व्यवहारदशाकी त्रिविधता वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्मरूप परमेश्वरकी पालनप्रवृत्तिके अनुरूप जब तक ईक्षणशक्ति काम करती रहती है, तब तक जीवोंके कर्मोपभोगके लिये पिता-पुत्रादि कारण-कार्यरूपसे यह सृष्टिचक्र निरन्तर चलता रहता है। महाप्रलयका योग समुपस्थित होनेपर सर्गक्रमके विपरीत क्रमसे पृथिव्यादि अपने कारणमें विलीन होते हैं। ज्ञानक्रियोभयशक्तिप्रधान प्रथम कार्यात्मक महत्तत्त्व त्रिगुणके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वारसे अव्यक्त प्रकृतिमें लीन होता है। प्रकृतिका क्षोभ कालाधीन है; अतः वह कालसे एकीभूतरूप लयको प्राप्त होती है। काल अपने चेतक ज्ञानमय जीवमें तादात्म्यापत्तिरूप लयको प्राप्त होता है। जीव अपने शिवरूपत्वरूप लयको प्राप्त होता है। अभिप्राय यह है कि स्वरूपविज्ञानके विना ही प्रलयमें जीव शिवभावापन्न होकर विराजता है। परमात्माकी प्रपञ्चोन्मुखता ही उसकी जीवरूपता है। जीवकी सर्जन-संरक्षणादिके अनुरूप संकल्पमुखता ही उसकी कालरूपता है। यद्यपि परमात्माकी प्रपञ्चोन्मुखता और संकल्पमुखता अर्थात् ईक्षणोन्मुखता प्रकृतिसंज्ञक मायाके योगसे ही है; तथापि दर्पणसे अतिक्रान्त दर्पणादित्यतुल्य और धूमसे अतिक्रान्त (अतीत) ज्वालातुल्य अप्रतिममहामहिमामण्डित महेश्वरकी जीवरूपता और कालरूपता मायासे अतिक्रान्त है। इस दृष्टिसे विचार करें तो **'न मृत्युरासीत्'** (ना० सू० २) की उक्तिसे मृत्युसंज्ञक कालका अभाव महाप्रलयमें विवक्षित है। **'अमृतं न तर्हि'** (नास० २) की उक्तिसे अमृतसंज्ञक जीवका महाप्रलयमें निषेध (लय) विवक्षित है। जीवका लयस्थान शिवस्वरूप परमात्मा है। वह सबका परम और चरम मूल है। अतएव उसका लय नहीं होता॥ ३॥

सिसृक्षासन्दर्भके अन्तर्गत चतुर्थमन्त्रमें कहा गया है कि ईश्वरने सर्जनेच्छासे स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तप किया। सर्जनेच्छा ईश्वरके मायारूप मनमें हुई। अभिप्राय यह है कि अतीत कल्पमें अकृतार्थ जीवोंके मनसे सम्बन्धित और मनमें सन्निहित जो भाविप्रपञ्चके हेतुभूत वासनाभूत कर्म था उसीके उद्बुद्ध और फलोन्मुख होनेके कारण सर्गके आरम्भमें प्राणियोंको आत्मसात् किये महेश्वरके मायारूपी मनमें पर्यालोचनरूप तपका भी मूल सिसृक्षारूप काम समुत्पन्न हुआ।

'तम आसीत्' (३), **'असत्'** (४) कहकर श्रुतिने भावरूप अव्याकृतात्मक अज्ञानको तथा **'कामस्तदग्रे समवर्तताधि'** (४) कहकर कामको और **'रेतः प्रथमं यदासीत्'** (४) कहकर कर्मको जगत्का मूल माना है। अभिप्राय यह है कि यह संसार अविद्या, काम और कर्मके योगसे समुत्पन्न होता है। परमेश्वर जीवोंके अविद्या, काम और कर्मोंके अनुरूप ही जगद्रचना करते हैं॥ ४॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्गक्रमदुर्लक्ष्यतासन्दर्भके अन्तर्गत पाँचवें मन्त्रमें जीवनिष्ठ अविद्या, काम और कर्म सृष्टिके हेतुरूपसे कहे गये हैं। अविद्योपादानक और कामकर्मनिमित्तक आकाशादि भूत और भौतिक पदार्थका सर्जन करते समय कार्यवर्ग सूर्यरश्मिसदृश शीघ्र विस्तार और प्रकाशको प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार आर्द्रेन्धनके योगसे ज्वाला और धूम दो रूपोंमें अग्निकी अभिव्यक्ति होती है। ज्वालाकी अग्निके अनुरूप अभिव्यक्ति होती है और धूमकी विरूप। धूमकी आर्द्रेन्धनके अनुरूप अभिव्यक्ति है और ज्वालाकी विरूप। उसी प्रकार काम और कर्मगर्भित अविद्याके योगसे परमात्माकी ही भोक्ता ओर भोग्य दो रूपोंमें अभिव्यक्ति होती है। उनमें भोक्ताकी परमात्माके अनुरूप अभिव्यक्ति है और भोग्यकी विरूप। भोग्यकी अविद्याके अनुरूप अभिव्यक्ति है और भोक्ताकी विरूप। भोक्ता अन्नाद है और भोग्य अन्न। दोनों रूपोंमें एक ही परमात्मा मायायोगसे स्फुरित है।

बाह्य स्थूलप्रपञ्च जहाँ जीवका भोग्य है, वहाँ आन्तर सूक्ष्मप्रपञ्च भी। दर्श-पूर्णमास, दुग्ध, ब्रीहि आदिका उपभोग जहाँ जीव देव, पशु, मनुष्यादि शरीरोंके योगसे करता है; वहाँ नाम-रूप और कर्मोंके अभिव्यञ्जक वाक्, मन और प्राणात्मक सूक्ष्मशरीरका उपभोग अविद्याके योगसे करता है। इस प्रकार कार्य-करणात्मक प्रपञ्च 'अन्न' है। जीव **'अन्नाद'** है। अन्न भोग्य है। अन्नाद भोक्ता है। यह तथ्य सप्तान्नब्राह्मणके अनुशीलनसे सिद्ध है। अन्नात्मक प्रपञ्चको अनावश्यक महत्त्व न देकर आत्मरति, आत्मतृप्ति और आत्मसन्तुष्टिलाभकर जीवनको कृतकृत्य करनेमें ही महत्त्वबुद्धि उपार्जित करनी चाहिये। स्वधारूप अन्नात्मक भोज्यप्रपञ्चको आत्मस्वरूपमें आरोपित जानकर परम विश्राम लाभ करना चाहिये। **'न वा अरे'** (बृहदारण्यक ४.५.६) यह श्रुति भोग्यप्रपञ्चको भोक्ताका शेष सिद्ध करती है। शेषाधीन स्थिति उपयुक्त नहीं है। ऐसी स्थितिमें भोग्यकी दासताका वारणकर निज निरुपाधिक वरणीय स्वरूपके भजन और वरणमें ही अभिरुचि होनी चाहिये॥ ५॥

जगदाश्रयकी अवाङ्मनसगोचरता तथा सृष्टिकी अनिर्वचनीयता (६, ७)

'जगत्कारणदुर्लक्ष्यतासन्दर्भ' के अन्तर्गत छठे मन्त्रकी व्याख्याके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्दर्भमें इस तथ्यको प्रकाशित किया गया है कि यह विविध विचित्र भूत-भौतिक, भोक्ताभोग्यादिरूपा सृष्टि किस उपादानकारणसे और निमित्त-कारणसे प्रकट हुई है—इस तथ्यको परमार्थतः कौन जानता है? इस जगत्में उसका कौन प्रवचन कर सकता है? इस भूतभौतिक प्रपञ्चके विसर्जनके बाद ही जब देवता, मन और इन्द्रियादिकी उत्पत्ति हुई है, तब वे भला उस मूलतत्त्वको कैसे जान सकते हैं? सृष्टिका मूलतत्त्व दुर्विज्ञेय है; क्योंकि जो वस्तु जानी जाती है, वह तो दृश्य, जड, विकारी ही होती है। जिसका हम कारणरूपसे अनुमान करते हैं, अथवा जिसे कारणरूपसे जानते हैं, वह भी छिन्न-भिन्न होनेवाला अन्य ही होता है। ऐसी स्थितिमें कार्य-कारणकल्पनाके प्रकाशक सर्वाधिष्ठान स्वयंप्रकाश प्रत्यग्ब्रह्मको ज्ञानका विषय कैसे बनाया जा सकता है?

नामरूपात्मक जगत् अनिर्वचनीय होनेसे निरूपणका विषय नहीं है। जगत्कारण ब्रह्म शब्दप्रवृत्तिके हेतु—जाति, गुण, क्रिया, सम्बन्ध, रूढिरहित होनेसे अभिधावृत्तिसे शब्दप्रवृत्तिका अविषय है। ऐसी स्थितिमें जगत् कितना है, कैसा है और इसका उपादान तथा निमित्त कौन है, आदि तथ्योंको भला कौन विधिवत् जानता है? कौन इसे ठीक-ठीक बता ही सकता है?

घटादिके कर्त्तामें जो देहादिकी स्थिति है, वह ईश्वरमें सर्वतोभावेन चरितार्थ हो, ऐसा आवश्यक नहीं। व्याप्तिके विना सामानाधिकरण्यमात्र असाधक ही होता है। ऐसा न मानें तो रसोई-घरमें धूम-वह्नि (धूँआ और आग) की व्याप्तिका ग्रहण करते समय ही व्यञ्जनादिमत्त्व भी परिलक्षित होता है; फिर तो पर्वतादिमें भी उनका (व्यंजनादिका) अनुमान होना चाहिये; परन्तु ऐसा नहीं। अभिप्राय यह है कि रसोई घरमें धूम और अग्निके साहचर्यतुल्य पर्वतमें धूमाग्निका साहचर्य है, यह तो ठीक है; परन्तु उससे निष्पन्न (धूमाग्निसाहचर्यातिरिक्त) छप्पन भोग और छत्तीसों व्यञ्जनकी स्थिति पर्वतमें सिद्ध करना जैसे उपयुक्त नहीं; वैसे ही ज्ञानवान्, इच्छावान् और क्रियावान् कर्त्ताको कार्यके मूलमें स्थित सिद्ध करना तो ठीक; परन्तु उस कर्त्ताको देहादियुक्त अनुमित करना अनुचित। ऐसा न समझने वाले विमोहित तो होते ही हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब देवगण उस तत्त्वको नहीं जान सकते तब मनुष्योंमें भला कौन जान सकता है? मनुष्योंके साथ तो अल्पज्ञता सर्वतोभावेन अनुविद्ध है॥ ६॥

दुर्धरदुर्विज्ञेयतासन्दर्भान्तर्गत सप्तम मन्त्रके भाष्यमें इस तथ्यका प्रकाश किया गया है कि जिस विवर्तोपादानकारणसे अर्थात् कल्पित कार्यके उपादानकारणसे इस विविध-विचित्र परस्पर विपरीत (विलक्षण) सृष्टिका उदय हुआ है, वह भी इस सृष्टिको अपने स्वरूपमें धारण करता है या नहीं? अन्य कोई धारण कर ही कैसे सकता है? यदि धारण कर सकता है तो ईश्वर ही। इस सृष्टिका जो अध्यक्ष परमेश्वर है, वह परमव्योममें रहता है। वह भी कहीं इसको जानता है अथवा नहीं? देश, कालादि त्रिविध परिच्छेदशून्य परमात्मा सृष्टिके मूलकारण-अपने आपको जानता भी है अथवा नहीं? अथवा अपने अज्ञानकल्पित प्रपञ्चको वह जानता भी है अथवा नहीं? **'यदि वा न वेद'** का अभिप्राय यह है कि जब स्वदृष्टिसे सृष्टि है ही नहीं, तब जानेगा किसको! अन्य कोई तो जाननेसे रहा!

'तदैक्षत' (छा० ६.२.३), **'स ईक्षांचक्रे'** (प्रश्नोपनिषद् ६.३), **'सोऽकामयत'** (तैत्तिरीय० २.६) आदि श्रुतियोंके अनुसार चेतन परमात्माको जगत्का निमित्तकारण मानना और **'बहु स्याम्'** (तैत्ति० २.६, छा० ६.२.३) आदि श्रुतियोंके अनुसार उसीको उपादानकारण मानना और उस अभिन्ननिमित्तोपादानकारणसे प्रपञ्चकी अभिव्यक्ति स्वीकार करना उपयुक्त है अथवा नहीं? कार्य जड हो और कारण चेतन हो तो दोनोंमें तादात्म्यकी असिद्धि ही बनी रहती है। जब कि मृद्घट, तन्तुपट, सुवर्णभूषणादि स्थलोंमें कार्य-कारणमें तादात्म्य परिलक्षित होता है। यद्यपि चेतनाशून्य नखलोमादि चेतनासम्पन्न देहसे उत्पन्न होते हैं और चेतनाशून्य रेतस्से चेतनासम्पन्न शरीर उत्पन्न होता है। चेतनायुक्त (मकड़ी) से चेतनाशून्य जाले व्यक्त होते हैं। परन्तु प्रकृतमें चार्वाकोंके तुल्य जड भूतचतुष्टयसे चेतन जीवोंको और जड जगत्को उत्पन्न मानें या वेदान्तियोंके तुल्य चेतन परमात्मासे जड जगत् और चेतन जीवों (प्राणियों) को उत्पन्न मानें, इसमें यदि अपौरुषेय वेदका आलम्बन न लिया जाय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तो चेतनको ही जगत्कारण मानने और देहातिरिक्त-देहातीत जीवको वस्तुतः ब्रह्म स्वीकार करनेमें कौन विनिगमक होगा ?

यद्यपि यह अत्यन्त समीचीन तथ्य है कि चेतन परमात्मा ही स्थावर-जंगमात्मक जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है; परन्तु असन्दिग्धस्थलमें भी 'यदि मैं पतिव्रता हूँ तो मेरे पातिव्रत्यके प्रभावसे ऐसा हो जाय', 'यदि वेद प्रमाण हैं तो मेरा बाल बाँका न हो' आदि सन्दिग्धवचनतुल्य **'यदि वा दधे यदि वा न'** यह वचन है। विज्ञोंको परोक्ष, तटस्थ और रहस्यात्मकवचन आह्लादित करते हैं, जब कि अज्ञोंको विमोहित। वस्तुस्थिति यह है कि कार्य-कारणमें तादात्म्यकी सिद्धिके लिये तथा एकोपादानकी सिद्धिके लिये जड जगत्तुल्य अचित्-अनिर्वचनीया मायाको परिणामोपादान मानना जहाँ आवश्यक है; वहाँ जडके मूलमें जड माननेपर प्राप्त अनवस्थादोषके वारणके लिये सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माको जगत्का अधिष्ठानात्मक उपादान मानना आवश्यक है। परन्तु उक्त तथ्यका प्रकाश भी आगम और आगमिक युक्तियोंके विना कहाँ सम्भव है ?

'नासदीयसूक्तम्' के अन्तर्निहित भावोंको निगमगीतम्के माध्यमसे विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त किया जाता है—

निगमगीतम्

नासदीयसूक्तसारसर्वस्वम् (१)

श्लोकः-नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं किन्त्वभूत्तमः।
सद्योगात्तमसः सत्त्वं न स्वतस्तन्निषेधनात्॥ १॥

(पञ्चदशी २.५०)

श्लोकार्थः- महाप्रलयमें न तो सत् था, न असत् ही; किन्तु मायासंज्ञक अनिर्वचनीय तमस् था। वह तमस् स्वतः सत् नहीं था। सत्-संज्ञक महेश्वरके योगसे ही उसका सत्त्व मान्य है। **'नो सदासीत्'** (नासदीयसूक्तम् १) की उक्तिसे उसके सत्त्वका निषेध कर दिया गया है॥ १॥

श्लोकः- आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥ २॥

(मनुस्मृतिः १.५)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकार्थः- महाप्रलयमें यह जगत् तमोभूत अर्थात् तमस्में लीन था। तमःशब्दसे गुणवृत्तिसे प्रकृति निर्दिष्ट है। अभिप्राय यह है कि तमस्के तुल्य तमस् था। जैसे तमस्में लीन पदार्थ प्रकाशित नहीं होते; वैसे ही प्रकृति अर्थात् मायामें लीन पदार्थ भी परिलक्षित नहीं होते। अभिप्राय यह है कि महाप्रलयमें संसार सूक्ष्मरूपसे स्थित था। प्रकृति भी ब्रह्मात्मरूपसे अव्याकृत थी। अतएव ब्रह्माधिष्ठिता प्रकृतिसे एकीभूत यह जगत् अप्रज्ञात अर्थात् सकलप्रमाणश्रेष्ठ प्रत्यक्षप्रमाणका अविषय था। अलक्षण अर्थात् अननुमेय (अनुमानप्रमाणसे अगम्य) था। वाचक स्थूलशब्दका अभाव होनेसे अप्रतर्क्य अर्थात् शब्दप्रमाणसे भी अविज्ञेय था। अत एव अलक्षण (/अविज्ञेय) अर्थात् अर्थापत्त्यादिप्रमाणोंसे भी अगोचर था। 'ऐसा जगत् महाप्रलयमें शून्य ही था अर्थात् नहीं ही था' ऐसा कथन उपयुक्त नहीं। **'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्'** (बृ० उ० १.४.७), **'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्'** (छान्दोग्य ६.२.१) आदि श्रुतियोंने महाप्रलयमें जगत्को अव्याकृतसंज्ञक सद्रूप माना है। सत्-शब्द ब्रह्मवाचक है। **'नासदासीत्'** (नासदीयसूक्तम् १) की उक्तिसे श्रुतिने असत्का निराकरण कर दिया है। अभिप्राय यह है कि जगत् ब्रह्मात्मरूपसे स्थित था। अतएव सर्वप्रकार प्रसुप्त-सरीखा था। उस समय जगत् स्वकार्यक्षम (अपने कार्यमें समर्थ) नहीं था।

ध्यान रहे, श्रुतिसिद्ध अर्थका अनागमिक युक्तियोंके द्वारा अपलाप नहीं किया जा सकता। धर्म और ब्रह्ममें श्रुति ही असाधारण प्रमाण है। कहा भी है—

''अतीन्द्रियार्थे धर्मादौ शिवे परमकारणे।
श्रुतिरेव सदा मानं स्मृतिस्तदनुसारिणी॥''

(सूतसंहिता ४ यज्ञ० सूतगीता ८.१९)

''रूपावलोकने चक्षुर्यथाऽसाधारणं भवेत्।
तथा धर्मादिविज्ञाने वेदोऽसाधारणः परः॥''
''रूपावलोकनस्येदं यथा घ्राणं न कारणम्।
तथा धर्मादिबुद्धेस्तु द्विजास्तर्को न कारणम्॥''

(सूतसंहिता ४ यज्ञ० सूतगीता ३.३३, ३४)

''अतीन्द्रिय धर्मादि और परम कारण शिवरूप ब्रह्ममें श्रुति ही सदा प्रमाण है। उसके अनुसारिणी स्मृतिका प्रामाण्य है॥''

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"रूपदर्शनमें जिस प्रकार नेत्र असाधारण प्रमाण होता है, धर्मादिविज्ञानमें उसी प्रकार वेद असाधारण-परम प्रमाण है॥"

"रूपदर्शनमें जैसे यह घ्राण कारण नहीं, धर्मादिविज्ञानमें वैसे ही तर्क कारण नहीं॥"॥ २॥

श्लोकः-

ईश्वरो जगतः कर्त्ता मायया स्वीयया पुरा।
अभेदेन स्थितः पूर्वकल्पवासनयाऽन्वितः॥ ३॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ० सूतगीता ४.१)

श्लोकार्थः- श्रुतिप्रामाण्यके बलपर और श्रुतिसिद्ध मायाशक्तिके बलपर अद्वितीय ब्रह्मसे सृष्टिकी उत्पत्ति सम्भव है। जो यह जगत्स्रष्टा ईश्वर है, वह सृष्टिरचनाके पूर्व महाप्रलयमें सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका अपनी मायासे एकीभूत होकर स्थित था। अभिप्राय यह है कि सांख्याभिमत प्रकृतिके तुल्य वेदान्तसम्मत माया स्वतन्त्र नहीं है। वह परमेश्वरके समाश्रित रहनेवाली शक्ति है। यद्यपि प्रलयदशामें माया स्वविलक्षणपरिणामशून्य होनेके कारण विशेषरूपसे प्रतीत नहीं होती, तथापि ब्रह्मस्वरूप चित्प्रकाशके द्वारा ही भासित होती है। अत एव उसका असत्त्व अमान्य है। यही कारण है कि महाप्रलयमें मायाकार्य आकाशादि भूत-भौतिकादि प्रपञ्च मायामें प्रविलीन रहते हैं। उस समय महेश्वर पूर्वकल्पीय मायागत वासनासे समन्वित शेष रहता है॥ ३॥

श्लोकः-

कालकर्मानुगुण्येन स्वाभिन्नस्वीयमायया।
अभिन्नोऽपि तया स्वस्य भेदं कल्पयति प्रभुः॥ ४॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ० सूतगीता ४.२)

श्लोकार्थः- त्रिगुणमयी माया (प्रकृति) प्रलीनावस्थामें क्षोभहेतुका अभाव होनेसे अक्षुब्ध रहती हुई असत्प्रायः होती है। मायाश्रय महेश्वर प्राणियोंके परिपक्व पुण्यपापात्मक कर्मोंके फलस्वरूप सुखदुःखोपभोगके लिये सृष्टिरचनामें प्रवृत्त होता है। पूर्वकल्पमें प्राणियोंके अभुक्त शुभाशुभ कर्म जब कालवशात् परिपक्व होते हैं; तब उन कर्मोंके अनुरूप स्वरूपसे अभिन्न स्वसम्बन्धिनी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मायासे स्वयं एकीभूत भी परमेश्वर उस मायासे अपने भेदकी कल्पना करता है। यह भेदकल्पना भी उसी मायासे आध्यासिक सम्बन्धप्राप्त सोपाधिक परमेश्वरकृत है। अन्यथा असङ्ग, उदासीन, कूटस्थ, चिन्मात्र, निरुपाधिक परमेश्वरके द्वारा भेदकल्पनादि भी कहाँ सम्भव है ? ॥ ४॥

श्लोकः-

कल्पितोऽयं द्विजा भेदो नाभेदं बाधते सदा।
कल्पितानामवस्तुत्वादविरोधश्च सिद्ध्यति॥ ५॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ० सूतगीता ४.३)

श्लोकार्थः- हे द्विजवृन्द! महेश्वरके द्वारा उक्त रीतिसे भेदनिर्मित होनेपर भी अद्वैतव्याघात सम्भव नहीं। मिथ्याभूत अतएव अवास्तव भेदसे वास्तव अभेदका बाध सदा ही (कभी भी) सम्भव नहीं। ईश्वरकल्पित भेदका भी मिथ्यात्व सिद्ध (चरितार्थ) है। वास्तव अभेद और मायाकृत भेदके कारण अद्वैतसिद्धि निर्बाध ही है॥ ५॥

श्लोकः-

पुनः पूर्वेक्षणोत्पन्नवासनाबलतोऽनघाः।
ईक्षिता पूर्ववद्भूत्वा स्वशक्त्या परया युतः॥ ६॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ० सूतगीता ४.४)

श्लोकार्थः- हे अनघ! इस प्रकार माया और अपने भेदकी परिकल्पना करनेवाला परमेश्वर है। पराशक्तिरूपा मायासम्बन्धी सत्त्वादिगुणजनित पूर्वकल्पीय वासनाबलसमन्वित मायोपहित परमेश्वर पूर्वकल्पके तुल्य ही ईक्षणकर्त्ता होकर स्रष्टव्यजगत्पर्यालोचनरूप ईक्षण करता है। ऐसा ही कहा गया है— **'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय'** (छान्दोग्य ६.२.४)-'उसने मायायोगसे बहुत होनेके लिये ईक्षण किया'॥ ६॥

श्लोकः-

मायाया गुणभेदेन रुद्रं विष्णुं पितामहम्।
सृष्ट्वाऽनुप्राविशत्तेषामन्तर्यामितया हरः॥ ७॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ० सूतगीता ४.५)

श्लोकार्थः- इस प्रकार ईक्षणावस्थाको प्राप्त अपनी शक्तिसहित हरसंज्ञक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमेश्वरने प्राणियोंके पूर्वानुष्ठित अभुक्त शुभाशुभ कर्मोके योगसे उस मायाके प्रविभक्त सत्त्वादि गुणोंकी उपाधिसे विष्णु, ब्रह्मा और रुद्रका सर्जनकर सृष्टि-स्थिति-संहृतिरूप व्यापारोंमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रको नियमित करनेके लिये स्वयं अन्तर्यामिरूपसे अनुप्रवेश किया। कहा भी है— **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** (तैत्तिरीयारण्यक ८.६) ॥ ७॥

श्लोकः-

पूर्वकल्पप्रपञ्चोत्थसंस्कारेणानुरञ्जितम्।
कालकर्मविपाकेन सत्त्ववृत्तिसमाश्रितम्॥
सृष्ट्यर्थमैक्षत प्राज्ञा बह्व स्यामिति शक्तिमत्॥८॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ० ब्रह्मगीता ५.४७, ४७ $\frac{1}{2}$)

श्लोकार्थः- हे प्राज्ञो! उक्त रीतिसे यह तथ्य सिद्ध है कि अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मासे विविध कार्यप्रपञ्चकी उत्पत्ति पूर्वकल्पमें विलीन (प्रलीन) प्रपञ्चजनित वासना और उसके अनुभवजन्य संस्कारके योगसे हुई। प्राणियोंके कालकृत शुभाशुभ कर्मोके परिपाकके फलस्वरूप शक्तिमान् परमेश्वरने शक्तिगत सत्त्ववृत्तिसे उपादानान्तरनिरपेक्षरूपसे 'बहुविध जगत् होऊँ' ऐसा ईक्षण किया॥८॥

श्लोकः-

इदं सर्वं जगत्पूर्वं सदेवाऽऽसीत्सुरर्षभाः।
असदासीदिति भ्रान्ता वदन्ति सुरपुङ्गवाः॥९॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ० ब्रह्मगीता ५.३७)

श्लोकार्थः- हे देवोत्तमो! अद्वितीय सत्य ही जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है; यह परिदृश्यमान नामरूपात्मक संपूर्ण कार्यप्रपञ्च सृष्टिके पूर्व सत् ही था। अभिप्राय यह है कि जगत् महाप्रलयदशामें सद्रूप कारणात्मक ही था; न कि नामरूपात्मक। यद्यपि वस्तुस्थिति ऐसी है, तथापि भ्रान्तजन 'जगत् असत् ही था' ऐसा अनर्गल प्रलाप करते हैं। उनका कथन है कि "विनष्ट बीजादिसे ही अंकुरादि कार्योकी उत्पत्ति देखी जाती है; अत एव कारणका उपमर्दन (नाश) किये विना कार्यका प्रादुर्भाव असङ्गत है। अत एव अंकुरादि कार्योका अभाव ही कारण है। उक्त दृष्टान्तोंके अनुरोधसे जगत्कारण भी असत् ही सिद्ध होता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है।'' परन्तु ऐसा माननेवाले अवश्य हीं भ्रान्त हैं। मृत देवदत्तमें पुत्रोत्पादनशक्तितुल्य नष्ट कारणमें कार्योत्पादनशक्ति असङ्गत है। अंकुरादि कार्यकालमें बीजादि कारणसंस्थानादि विशेषोंकी तथा उनके अवयवोंकी अनुवृत्तिके अनुरोधसे असत्को कारण मानना उपयुक्त नहीं। अत एव असत्कारणवादी भ्रान्त अवश्य हैं॥ ९॥

श्लोकः-

असन्न कारणं युक्तं वस्तुतत्त्वनिरूपणे।
वन्ध्यापुत्रोऽपि सर्वेषां कारणं स्यात्स्वयं खलु॥ १०॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, ब्रह्मगीता ५.३८)

श्लोकार्थः- असत्को कारण मानना उपयुक्त नहीं। कारण यह है कि असत् जो कि सर्वप्रकारसे निरुपाख्य ही मान्य है, वह भावरूप धर्माश्रियत्वरूप कारणत्वलक्षण विरहित है। कदाचित् हठपूर्वक ऐसे असत्को ही जगत्कारण माना जाय तब तो असत्से सर्वथा अविलक्षण (अविशेष) वन्ध्यापुत्र भी निःसन्देह सर्वकारण स्वतःसिद्ध होगा॥ १०॥

श्लोकः-

स्वशक्त्याऽसच्च सर्वेषां कारणं भवतीति चेत्।
शक्तिरप्यसतो नास्ति सतो बीजस्य दर्शनात्॥ ११॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, ब्रह्मगीता ५.३९)

श्लोकार्थः- ऐसा मानना भी उपयुक्त नहीं कि स्वशक्तिके योगसे असत् भी सर्वकारण हो सकता है। कारण यह है कि असत्की शक्ति नहीं होती। अभिप्राय यह है कि असत् कहीं भी शक्तिमान् सिद्ध नहीं होता। सत्-बीज ही अंकुरोत्पादिनी शक्तिसे सम्पन्न परिलक्षित होता है। यह तथ्य अन्वयव्यतिरेकरूप अनुमानप्रमाणसे सिद्ध है॥ ११॥

श्लोकः-

अङ्कुरोत्पादिका शक्तिः सद्रूपस्यैव दृश्यते।
खलु बीजस्य सर्वत्र नासतस्तददर्शनात्॥ १२॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, ब्रह्मगीता ५.४०)

श्लोकार्थः- अभिप्राय यह है कि अन्वय-व्यतिरेकरूप अनुमानप्रमाणसे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अंकुरोत्पादिका शक्ति सद्रूप बीजकी ही सिद्ध है। इस प्रकार दृष्टविरोध होनेसे असत्की शक्तिकल्पना सर्वथा अनुपयुक्त है॥ १२॥

श्लोकः-

> **साऽपि शक्तिः सती किंवाऽसती सदसती तु वा।**
> **सती चेत्सा सती शक्तिः कथं वन्ध्यासुताश्रया॥ १३॥**
>
> **आश्रयत्वं सतो दृष्टं खलु लोके न चासतः।**
> **साऽसती चेत्कथं शक्तिः कार्यनिर्वाहिकाऽसती॥ १४॥**
>
> (सूतसंहिता ४ यज्ञ०, ब्रह्मगीता ५.४१, ४२)

श्लोकार्थः- अब प्रश्न उठता है कि वह शक्ति सती है, किं वा असती अथवा सदसती? भावरूपा शक्ति निरुपाख्य असत्का धर्म हो, यह कैसे सम्भव है? अत्यन्त असत् बन्ध्यासुतादिक भावरूप शक्तिसे सम्पन्न नहीं देखे जाते, न युक्तिपूर्वक सिद्ध ही होते हैं। सद्रूपा शक्तिके आश्रय सद्बीजादि ही देखे जाते हैं, न कि नरविषाणादि। अत एव भावरूपा शक्तिका असत्को आश्रय स्वीकार करनेपर वह बीजादिके तुल्य ही 'सत्' सिद्ध होगा। असत् कहनेमात्रसे उसकी असद्रूपता कथमपि सिद्ध नहीं हो सकेगी। 'असत्की सद्रूपा शक्ति' यह कथन सर्वथा अनुपयुक्त ही है। कदाचित् असत्के समाश्रित रहनेवाली शक्ति स्वयं असत् ही है तो असत्के कारणत्वके उपपादनके लिये स्वीकृत वह शक्ति स्वयं भी वन्ध्यासुतादिसदृश कार्यसम्पादनसामर्थ्यशून्य ही सिद्ध होगी॥ १३, १४॥

श्लोकः-

> **वन्ध्यापुत्रः स्वयं नैव कार्यनिर्वाहकः खलु।**
> **निर्वाहकत्वधर्मश्च सत एव हि दृश्यते॥ १५॥**
>
> (सूतसंहिता ४ यज्ञ०, ब्रह्मगीता ५.४३)

श्लोकार्थः- 'असदाश्रिता असती शक्ति कार्यनिर्वाहिका सिद्ध होगी' ऐसा मानना भी उपयुक्त नहीं। वन्ध्यासुत स्वयं कार्यनिर्वाहक सिद्ध नहीं होता। सर्वत्र निर्वाहकत्वधर्म सत्का ही दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार असती शक्तिके योगसे असत् कारण हो, ऐसा सम्भव नहीं॥ १५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकः-

शक्तिः सदसती सा चेद्दोषद्वयसमागमः।
अतः स्वशक्त्या चासत्तु सर्वेषां नैव कारणम्॥ १६॥
(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, ब्रह्मगीता ५.४४)

श्लोकार्थः- यह कथन तो अत्यन्त उपहासास्पद ही है कि असदाश्रिता शक्ति सत्-असत्-उभयरूपा है। किसी भी वस्तुकी सदसद्रूपता युक्तियुक्त नहीं। शक्तिको सदसती माननेपर उक्त द्विविध दोषोंकी प्रसक्ति अनिवार्य है। अतः 'स्वशक्तिसे असत् सम्पूर्ण सर्गका कारण है' यह कथन सर्वथा अनुपयुक्त ही है॥ १६॥

श्लोकः-

तस्मात्सोऽयमसद्वादो जल्पमात्रं न युक्तिमान्।
अतः सदेव सर्वेषां कारणं नासदास्तिकाः॥ १७॥
(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, ब्रह्मगीता ५.४५)

श्लोकार्थः- इसलिये हे आस्तिको! शून्यवादियोंद्वारा निरूपित यह असद्वाद जल्पमात्र है, न कि युक्तियुक्त। अतः सत् ही सबका कारण है, न कि असत्॥ १७॥

श्लोकः-

सृष्टेस्तु प्रागिदं सर्वं सदेवाऽऽसीत्तु कारणम्।
तच्च कारणमाद्यन्तविनिर्मुक्तं सदद्वयम्॥ १८॥
(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, ब्रह्मगीता ५.४६)

श्लोकार्थः- फलितार्थ यह है कि सृष्टिके पूर्व यह नामरूपात्मक जगत् कारणात्मक सत् हीं था। वह कारण आदि-अन्तसे रहित अद्वितीय सत् ही था॥ १८॥

श्लोकः-

माया च प्रलये काले परस्मिन्परमेश्वरे।
सत्यबोधसुखानन्तब्रह्मरुद्रादिसंज्ञिते॥ १९॥
अभेदेन स्थितिं याति हेतुस्तत्र सुदुर्गमः॥
(सूतसंहिता १ शिव० ८.१७, १७ $\frac{1}{2}$)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकार्थः- महाप्रलयमें माया ब्रह्मरुद्रादिसंज्ञक अनन्त सच्चिदानन्दपरमपरमेश्वरमें तादात्म्यापन्न (तद्रूप, अभिन्न) होकर स्थित रहती हुई उत्तरसर्गके प्रति हेतुरूपसे अवशिष्ट रहती है। सृष्टिरचनाके दुर्गम प्रयोजनको मनीषियोंने विविध प्रकारसे प्रतिपादित किया है। वस्तुतः भोगापवर्गकी सिद्धिके लिये अथवा अकृतार्थ जीवोंको कृतार्थ होनेका अवसर प्रदान करनेके लिये उत्तरसर्गकी अपेक्षा है; अत एव मायाविशिष्ट परब्रह्मका शेष रहना आवश्यक है॥ १९॥

श्लोकः-

अन्यथाभानहेतुत्वादियं मायेति कीर्तिता॥ २०॥
आत्मतत्त्वतिरस्कारात्तम इत्युच्यते बुधैः।
विद्यानाश्यत्वतोऽविद्या मोहस्तत्कारणत्वतः॥ २१॥
सद्वैलक्षण्यदृष्ट्येयमसदित्युदिता बुधैः।
कार्यनिष्पत्तिहेतुत्वात्कारणं प्रोच्यते बुधैः॥ २२॥
कार्यवद्व्यक्तताभावादव्यक्तमिति गीयते।
एषा माहेश्वरी शक्तिर्न स्वतन्त्रा परात्मवत्॥ २३॥
(सूतसंहिता १ शिव० ८.१८-२१)

श्लोकार्थः- अन्यथा भानमें हेतु होनेसे माया **'माया'** कही गयी है। आत्मतत्त्वका तिरस्कार करनेसे अर्थात् आत्माको आच्छादित-सी करनेसे मनीषियोंके द्वारा यह **'तमस्'** कही गयी है। विद्याके द्वारा नष्ट होनेसे यह **'अविद्या'** कही गयी है। भ्रमित अर्थात् मोहित करनेके कारण **'मोह'** कही गयी है। सद्विलक्षण होनेसे मनीषियोंके द्वारा यह **'असत्'** कही गयी है। कार्यतुल्य व्यक्त न होनेसे माया **'अव्यक्त'** कही जाती है। यह महेश्वरकी शक्ति महेश्वरतुल्य स्वतन्त्र नहीं है। यही कारण है कि यह **शक्ति** कही जाती है॥२०-२३॥

श्लोकः-

स्वभावादेव सम्भूतं समस्तमिति केचन।
तन्न सिद्ध्यति विपेन्द्रा देशकालाद्यपेक्षया॥ २४॥
कर्मणैव समुत्पन्नं समस्तमिति केचन।
तच्छ्रुतिस्मृतिवादस्य विरुद्धं मुनिपुङ्गवाः॥ २५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न स्वभावाज्जगज्जन्मस्थितिध्वंसा मुनीश्वराः।
न मया केवलेनापि न च केवलकर्मणा॥२६॥
प्राणिनां कर्मपाकेन मया च मुनिसत्तमाः।
जगतःसम्भवो नाशः स्थितिश्च भवति द्विजाः॥२७॥
एवं कर्मानुरूपेण जगज्जन्मादि यन्मया।
एष स्वभावो विप्रेन्द्रा इति वेदार्थनिर्णयः॥२८॥
(सूतसंहिता १ शिव० ११.२२, २३, ३४-३६)

श्लोकार्थः- कोई लोकायतिक सम्पूर्ण जगत्को स्वभावसे ही समुद्भूत मानते हैं। परन्तु देश, कालादिकी अपेक्षा होनेसे उनका यह मत समीचीन सिद्ध नहीं होता। काश्मीरमें ही कुंकुम (केसर) की उत्पत्ति देशकी अपेक्षा सिद्ध करती है। दिनमें ही कमलोंका विकास, रात्रिमें ही उत्पल (रात्रिविकासी कमल) का विकास कालकी अपेक्षा सिद्ध करता है। पुण्यात्माको ही सुखोपलब्धि और पापीको ही दुःखोपलब्धि अदृष्टकी अपेक्षा रखती है। यह सब ईश्वरेच्छासे सम्भव है, अत एव ईश्वरापेक्षा भी सिद्ध है। कोई अनीश्वरवादी 'यह सब कर्मसे ही उत्पन्न हुआ है' ऐसा मानते हैं; परन्तु हे मुनीश्वरो! उनका यह मत श्रुति-स्मृतिके विरुद्ध है। अभिप्राय यह है कि ईश्वराधिष्ठित कर्म ही जगद्रचनादिमें हेतु है न कि स्वतन्त्र केवल कर्म। हे मुनीश्वरो! न केवल स्वभावसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहृति सम्भव है, न केवल मुझ महेश्वरसे और न केवल कर्मसे ही जगत्की उत्पत्त्यादि सम्भव है। हे द्विजो! प्राणियोंके कर्मपरिपाकसे तथा मुझ महेश्वरसे जगत्की उत्पत्ति और संहृति सम्भव है। इस प्रकार मुझ महेश्वरसे जो कर्मानुरूप जगज्जन्मादि सिद्ध है, यही स्वभाव है, न कि लोकायतिकसम्मत वस्तुधर्म; यह वेदान्तसिद्धान्त है। अभिप्राय यह है कि ब्रह्माधिष्ठिता प्रकृति पञ्चभूतोंके द्वारसे तथा काल, स्वभाव, पुरुषनिष्ठ कर्मोंके निमित्तसे जगत् बनती है, फिर भी यह संसार बहिर्मुखोंको आकस्मिक ही परिलक्षित होता है। अभिप्राय यह है कि वेदान्तनयानुसार आकस्मिक परिलक्षित होनेवाला यह जगत् ब्रह्माधिष्ठिता प्रकृतिप्रसूत पञ्चभूतोपादानक और काल, स्वभाव, कर्मनिमित्तक है॥२४-२८॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकः-

आकाशादीनि भूतानि स्थूलानि पुनरास्तिकाः।
जायन्ते सूक्ष्मभूतेभ्यः पूर्वकल्पे यथा तथा॥ २९॥
(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ४.२८)

श्लोकार्थः- हे आस्तिको! पूर्वकल्पके अनुरूप ही आत्मासे आकाशादि सूक्ष्म भूतोंकी उत्पत्तिके अनन्तर आकाशादि पञ्चतन्मात्रात्मक सूक्ष्मभूतोंसे आकाशादि पञ्चस्थूलभूतोंकी उत्पत्ति होती है॥ २९॥

श्लोकः-

अण्डभेदास्तथा लोकभेदास्तेषु च चेतनाः।
अचेतनानि चान्यानि भौतिकानि च पूर्ववत्॥ ३०॥
विजायन्ते च भोगार्थं चेतनानां शरीरिणाम्।
भोक्तारः पशवः सर्वे शिवो भोजयिता परः॥ ३१॥
(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ४.२९, ३०)

श्लोकार्थः- स्थूलभूतोंके द्वारा पूर्वकल्पानुरूप ही विविध ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्डान्तर्गत भूधर (पर्वत)-सागरादिमण्डित पृथिव्यादि लोक तथा लोकस्थ उद्भिज्ज, अण्डज, स्वेदज, जरायुज, मनसिज और स्वयम्भूभेदसे विविध प्राणिसमुदाय समुद्भूत होते हैं। अचेतनप्रपञ्च चेतन जीवोंके भोगार्थ ही उत्पन्न होता है। बद्धदशामें सभी भोक्ता पशुसंज्ञक होते हैं। भोजयिता शिवस्वरूप पशुपति भोग्यरूप अचेतन और भोक्तृरूप चेतन दोनोंसे पर ही हैं॥ ३०, ३१॥

श्लोकः-

सुखदुःखादिसंसारो भोगः सर्वमिदं सुराः।
स्वप्नवद्देवदेवस्य माययैव विनिर्मितम्॥ ३२॥
(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ४.३१)

श्लोकार्थः- हे देवो! यह सुख-दुःखादिरूप संपूर्ण संसार देवदेव महादेवकी मायासे विनिर्मित स्वप्नसदृश है। अभिप्राय यह है कि जैसे स्वप्नमें भोक्तृ-भोग्य-भोग-तीनरूपसे संसारकी अनुभूति होनेपर भी स्वप्नप्रपञ्च वास्तव नहीं होता, वैसे ही महेश्वरकी मायासे विनिर्मित भोक्तृ-भोग्यादिरूप जगत् अनुभवगोचर (अनुभूत) होनेपर भी वास्तवसत्य नहीं होता॥ ३२॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकः-

मायया निर्मितं सर्वं मायैव हि निरूपणे।
कारणव्यतिरेकेण कार्यं नेति हि दर्शितम्॥ ३३॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ४.३२)

श्लोकार्थः- ऐसा नहीं मानना चाहिये कि सांख्यशैलीमें (सांख्यनयानुसार) माया सत्य है; ऐसी स्थितिमें मायानिर्मित जगत् भी सत्य ही होगा। जो भी मायाकार्य है, वह सब प्रामाणिकरीतिसे निरूपण करनेपर माया ही स्वीकार करने योग्य है। मृत्तिकाके कार्यभूत घटादिकी मृण्मयताके तुल्य यह तथ्य हृदयंगम करने योग्य है। अभिप्राय यह है कि लोकमें भी मृदादि कारणके अतिरिक्त घटादिकार्य नहीं देखे जाते। **'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'** (छान्दोग्य ६.१.४) यह श्रुति उक्त तथ्यकी प्रतिपादिका है॥ ३४॥

श्लोकः-

मायाऽपि कारणत्वेन कल्पिता मुनिपुङ्गवाः।
अधिष्ठानातिरेकेण नास्ति तत्त्वनिरूपणे॥ ३५॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ४.३३)

श्लोकार्थः- हे मुनिश्रेष्ठो! 'मायाकार्यको लेकर न सही, मायाको लेकर ही सही, द्वैतसिद्धि तो अवश्य ही सम्भव है।' ऐसी आशंका भी नहीं करनी चाहिये। यदि माया पृथक् सत्य होती तो द्वैतसिद्धि और अद्वैतासिद्धि सम्भव होती; परन्तु वह माया चिन्मात्रस्वरूप परशिव परब्रह्ममें विक्रियमाण जगत्का उपादानरूपसे कल्पित है। अत एव विचार करनेपर माया भी शुक्तिरजतादितुल्य अधिष्ठानात्मक ब्रह्मसे व्यतिरिक्त नहीं है॥ ३५॥

श्लोकः-

व्यवहारदृशा मायाकल्पना नैव वस्तुतः।
वस्तुतः परमाद्वैतं ब्रह्मैवास्ति न चेतरत्॥ ३६॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ४.३४)

श्लोकार्थः- मायाकी कल्पना भी व्यवहारदृष्टिसे ही है, न कि वस्तुतः। अभिप्राय यह है कि प्रातीतिकरूपसे ही व्यवहारकी उपपत्ति मान्य है। वस्तुतः परमाद्वैत ब्रह्म ही है, न कि कोई अन्य॥ ३६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकः-

मायारूपतया साक्षाद्ब्रह्मैव प्रतिभासते।
जगज्जीवादिरूपेणाप्यहो देवस्य वैभवम्॥ ३७॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ४.३५)

श्लोकार्थः- देवदेव महादेवका क्या ही अद्भुत वैभव है कि पारमार्थिक परब्रह्म ही विद्यमान माया, तत्कार्य जगज्जीवादिभेदभ्रमका अधिष्ठान होता हुआ माया और जगज्जीवादिरूपसे भास रहा है॥ ३७॥

श्लोकः-

संसारकारणं माया सा सदा सद्विलक्षणा।
प्रतीत्यैव तु सद्भावस्तस्या नैव प्रमाणतः॥ ३८॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ८.५)

श्लोकार्थः- अभिप्राय यह है कि संसारकारण जो माया है, वह सदा सद्विलक्षणा ही है। प्रतीतिके द्वारा ही उसका सद्भाव है, न कि प्रमाणके द्वारा। अध्यस्तपदार्थ प्रमाणसहिष्णु हो, ऐसा सम्भव भी तो नहीं है! अधिष्ठानसत्त्व ही आरोप्यगत परिलक्षित होता है। अत एव माया और उसके कार्यका सत्त्व प्रातीतिक ही है, न कि वास्तविक॥ ३८॥

श्लोकः-

साऽपि ब्रह्मातिरेकेण वस्तुतो नैव विद्यते।
तत्त्वज्ञानेन मायाया बाधो नान्येन कर्मणा॥ ३९॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ८.६)

श्लोकार्थः- वह माया भी ब्रह्मातिरिक्ता वस्तुतः नहीं है। तत्त्वज्ञानसे ही मायाका बाध संभव है, न कि कर्मसे। लोकमें शुक्तिरजतादि विभ्रम अधिष्ठानयाथात्म्यज्ञानसे निवर्त्य देखे जाते हैं। अत एव परशिवस्वरूपमें अध्यस्त माया और उसका कार्यवर्ग मायाके कारण परब्रह्मके याथात्म्यज्ञान-मात्रसे निवर्त्य होनेसे परब्रह्मकी प्राप्तिमें तत्त्वज्ञान ही साक्षात् साधन है, न कि कर्मादि कोई अन्य॥ ३९॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकः-

सर्वमेतत्परं ब्रह्म विदित्वा सुदृढं बुधाः।
मानतर्कानुभूत्यैव गुरूक्त्या च प्रसादतः।
ज्ञानप्राकट्यबाहुल्याज्ज्ञानं च स्वात्मनैव तु॥ ४०॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ४.३९)

श्लोकार्थः- हे प्राज्ञो! प्रमाण, तर्क, अनुमान, गुरूपदेश और गुरुकृपासे **'सर्वमेतत्परं ब्रह्म'** -'यह सब परब्रह्म ही है' ऐसा सुदृढ, सुपुष्ट पुष्कल विज्ञानोदय होता है। आविर्भूतज्ञान स्वरूपके अज्ञानका निवारण करता हुआ कतकरजोन्यायसे चिन्मात्र आत्मरूपसे ही अवशिष्ट रहता है॥ ४०॥

श्लोकः-

न तत्र चन्द्रार्कवपुः प्रकाशते
न वान्ति वाताः सकलाश्च देवताः।
स एष देवः कृतभूतभावनः
स्वयं विशुद्धो विरजः प्रकाशते॥ ४१॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, ब्रह्मगीता ७.४७)

श्लोकार्थः- उस परमेश्वरमें चन्द्र, सूर्यादि देवविग्रह प्रकाशित नहीं होते, न वायु ही बहते हैं, अन्य देवगण भी उसमें द्योतित नहीं होते। अभिप्राय यह है कि वह विना चन्द्र और सूर्यके आह्लाद, ईक्षण; प्रकाश और दर्शनरूप है। वह विना वायुके ही जीवित अतएव अमृतस्वरूप (मृत्युञ्जय) है, करणप्रकाशक अन्य देवोंके विना ही श्रवण, स्पर्शनादिमें समर्थ है। वह देव ब्रह्मादि संपूर्ण प्राणियोंका उपजीव्य है; स्वयं सर्वातीत, असङ्ग, मल-विक्षेपावरणविरहित विशुद्ध, विरज होता हुआ प्रकाशित है, अर्थात् स्वप्रकाश है॥ ४१॥

श्लोकः-

भासमानमिदं सर्वं भानरूपं परं पदम्।
पश्यन्वेदान्तमानेन सद्य एव विमुच्यते॥ ४२॥

(सूतसंहिता ४ यज्ञ०, सूतगीता ४.४२)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकार्थः- चित्प्रकाशबलसे भासमान यह सम्पूर्ण जगत् चिदाश्रित, चिद्विलास, चिद्विवर्त, चिन्मय और चिन्मात्र ही है।विकारसमुदायसे अतीत अत एव निरतिशयानन्दरूपसे प्राप्तव्य परंपदरूप परब्रह्मको वेदान्तवाक्यरूप प्रमाणसे जानता हुआ साधक सद्योमुक्ति लाभ करता है॥ ४२॥

○ ○ ○

निगमगीतम्
नासदीयसूक्तसारसर्वस्वम् (२)

श्लोकः-

अव्यक्तं कारणं यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमैः।
प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम्॥ १॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.१९)

श्लोकार्थः- अव्यक्त कारणको जो सदसद्रूप अर्थात् स्वतःअसद्रूप और अधिष्ठानात्मक परब्रह्मसत्तासे सद्रूप है, अत एव नित्य है, उसे श्रेष्ठ ऋषिगण प्रधान तथा सूक्ष्मा (महदादि सप्त कार्यकोटिकी प्रकृतिसे सूक्ष्म) और प्रकृति कहते हैं॥ १॥

श्लोकः-

अक्षय्यं नान्यदाधारममेयमजरं ध्रुवम्।
शब्दस्पर्शविहीनं तद्रूपादिभिरसंहितम्॥ २॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.२०)

श्लोकार्थः- वह क्षयरहित है। चरमकारण होनेसे अचित् पदार्थोंमें कोई उसका आधार नहीं है। वह अप्रमेय, अजर, ध्रुव, शब्दस्पर्शविहीन तथा रूप, रस, गन्धहीन है॥ २॥

श्लोकः-

त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम्।
तेनाग्रे सर्वमेवासीद् व्याप्तं वै प्रलयादनु॥ ३॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.२१)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकार्थः- वह त्रिगुण है। जगत्कारण है। स्वयं अनादि और उत्पत्ति तथा लयसे रहित है। यह सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रलयसे लेकर सृष्टिके आदितक उसीसे व्याप्त था॥ ३॥

श्लोकः-

वेदवादविदो विद्वन्नियता ब्रह्मवादिनः।
पठन्ति चैतमेवार्थं प्रधानप्रतिपादकम्॥ ४॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.२२)

श्लोकार्थः- हे विद्वन्! श्रुतिके रहस्यको जाननेवाला श्रुतिपरायण ब्रह्मवेत्ता महात्मागण इसी अर्थको लक्ष्य करके प्रधानके प्रतिपादक इस श्लोकको कहा करते हैं-॥ ४॥

श्लोकः-

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि-
र्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्॥ ५॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.२३)

श्लोकार्थः- उस समय (महाप्रलयमें) न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथिवी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था और न इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कार्यप्रपञ्च ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्ध्यादिका अविषय एक प्रधानाश्रय (प्रकृतिका आश्रय) पुरुषसंज्ञक पूर्णपरब्रह्म ही था॥ ५॥

श्लोकः-

विष्णोः स्वरूपात्परतो हि ते द्वे
रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र।
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते
रूपान्तरं तद् द्विज कालसंज्ञम्॥ ६॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.२४)

श्लोकार्थः- हे विप्र! परब्रह्मसंज्ञक श्रीविष्णुके परमस्वरूपसे प्रधान और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरुष स्फुरित हुए जो महाप्रलयमें परब्रह्मरूपसे एकीभूत थे। हे द्विज! श्रीपुरुषोत्तम भगवान् विष्णुका ही अन्यरूप जिसे काल कहा जाता है, उसीसे ये प्रधान और पुरुष प्रलयदशामें संयुक्त और सर्गदशामें वियुक्त होते हैं॥ ६॥

श्लोकः-

प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलये तु यत्।
तस्मात्प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसञ्चरः॥ ७॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.२५)

श्लोकार्थः- अतीत (पूर्व) प्रलयमें यह व्यक्त प्रपञ्च प्रकृतिमें लीन था, इसलिये कार्यप्रपञ्चके इस प्रलयको **प्राकृतप्रलय** कहते हैं॥ ७॥

श्लोकः-

गुणसाम्ये ततस्तस्मिन्पृथक्पुंसि व्यवस्थिते।
कालस्वरूपं तद्विष्णोर्मैत्रेय परिवर्त्तते॥ ८॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.२७)

श्लोकार्थः- हे मैत्रेय! प्रलयकालमें त्रिगुणके साम्यावस्थापन्न हो जानेपर अर्थात् प्रधानरूपसे अवशिष्ट रहनेपर और पुरुषके प्रकृतिसे पृथक् स्थित हो जानेपर अर्थात् गुणवैषम्यनिमित्तक गुणानुरूप आत्ममान्यतासे पृथक् हो जानेपर भगवान् विष्णुका कालरूप प्रवृत्त होता है। अभिप्राय यह है कि उत्तरसर्गके लिये अपेक्षित प्रलयान्तमें गुणक्षोभके लिये मायावृत्तिरूप संकल्पविशिष्ट मायोपहित परब्रह्म मानो प्रलयमें कालरूपसे अवशिष्ट रहता है॥ ८॥

श्लोकः-

ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः।
सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वात्मा परमेश्वरः॥ ९॥
प्रधानपुरुषौ चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः।
क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ॥ १०॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.२८, २९)

श्लोकार्थः- तदनन्तर (सर्गकाल उपस्थित होनेपर) उन परब्रह्म परमात्मा विश्वरूप सर्वव्यापी सर्वभूतेश्वर सर्वात्मा परमेश्वरने अपनी इच्छासे विकारी प्रधान और अविकारी पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको क्षुभित किया॥ ९. १०॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकः-

यथा सन्निधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते।
मनसो नोपकर्तृत्वात्तथाऽसौ परमेश्वरः ॥ ११ ॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.३०)

श्लोकार्थः- जिस प्रकार क्रियाशील न होनेपर भी गन्ध अपनी सन्निधिमात्रसे ही मनको क्षुभित कर देता है, उसी प्रकार परमेश्वर अपनी सन्निधिमात्रसे ही प्रधान और पुरुषको प्रेरित करते हैं॥ ११ ॥

श्लोकः-

गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने।
गुणव्यञ्जनसम्भूतिः सर्गकाले द्विजोत्तम ॥ १२ ॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.३३)

श्लोकार्थः- हे द्विजश्रेष्ठ! सर्गकालके प्राप्त होनेपर गुणोंकी साम्यावस्थारूप **प्रधान** जब क्षेत्रज्ञसंज्ञक विष्णुसे अधिष्ठित हुआ तब उससे **महत्** की उपत्ति हुई॥ १२ ॥

श्लोकः-

त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायत।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥ १३ ॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.३५, ३५ $\frac{१}{२}$)

श्लोकार्थः- महत्तत्त्वसे ही वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिसंज्ञक तामस त्रिविध अहङ्कार उत्पन्न हुआ॥ १३ ॥

श्लोकः-

भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात् ॥ १४ ॥
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश।
एकादशं मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥ १५ ॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.४६, ४७)

श्लोकार्थः- तामस अहंकारसे यह भूततन्मात्ररूप सर्ग हुआ। दश इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे उत्पन्न हुईं। इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए। ग्यारहवाँ मन भी सात्त्विक अहंकारसे ही उत्पन्न कहा गया है॥ १४, १५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकः-

आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा।
शब्दादिभिर्गुणैर्ब्रह्मन् संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ॥ १६ ॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.५०)

श्लोकार्थः- आकाशादि स्थूल भूत तामस अहंकारसे समुद्भूत शब्दादितन्मात्रात्मक (गुणात्मक) सूक्ष्मभूतोंसे उत्पन्न हुए। इनमें शब्दनामक एक गुणवाला आकाश है। शब्द, स्पर्शनामक दो गुणोंवाला वायु है। शब्द, स्पर्श, रूपनामक तीन गुणोंवाला तेज है। शब्द, स्पर्श, रूप, रसनामक चार गुणोंवाला जल है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धनामक पाँच गुणोंवाली पृथ्वी है॥ १६॥

श्लोकः-

नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना।
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥ १७ ॥
समेत्यान्योन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयाः।
एकसंघातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥ १८ ॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च।
महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते॥ १९ ॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.५२-५४)

श्लोकार्थः- महत्से पृथ्वीपर्यन्त इन तेईस (२३) तत्त्वोंमें पृथक्-पृथक् नाना शक्तियाँ हैं। यही कारण है कि ये परस्पर पूर्णतया मिले विना जगत्की रचना नहीं कर सके। इसलिये एक-दूसरेके आश्रय रहनेवाले और एक ही संघातकी उत्पत्तिके लक्ष्यवाले महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त प्रकृतिके ये सभी विकार पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर सर्वथा एक होकर प्रधानके अनुग्रहसे अण्डकी उत्पत्ति करते हैं॥ १७-१९॥

श्लोकः-

तत्क्रमेण विवृद्धं सज्जलबुद्बुदवत्समम्।
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे! महत्तदुदकेशयम्।
प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम्॥ २० ॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.५५)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकार्थः- हे महाबुद्धे! जलके बुलबुलेके समान क्रमशः महदादि तत्त्वोंसे बढ़ा हुआ वह गोलाकार और जलपर स्थित महान् अण्ड ब्रह्मस्वरूप विष्णुका अत्युत्तम प्राकृत आधार हुआ॥ २०॥

श्लोकः-

तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ व्यक्तरूपो जगत्पतिः।
विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः॥ २१॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.५६)

श्लोकार्थः- उसमें वे अव्यक्तस्वरूप जगत्पति विष्णु व्यक्तरूपसे स्वयं ही विराजमान हुए॥ २१॥

श्लोकः-

मेरुरुल्बमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन्सुमहात्मनः॥ २२॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.५७)

श्लोकार्थः- उन महात्मा हिरण्यगर्भका सुमेरु उल्ब (गर्भको ढकनेवाली झिल्ली), अन्य पर्वत जरायु (गर्भाशय) तथा समुद्र गर्भाशयस्थ रस था॥ २२॥

श्लोकः-

साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः।
तस्मिन्नण्डेऽभवद्विप्र सदेवासुरमानुषः॥ २३॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.५८)

श्लोकार्थः- हे विप्र! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीपादिके सहित समुद्र, ग्रहगणके सहित समस्त लोक तथा देव, असुर और मनुष्यादि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए॥ २३॥

श्लोकः-

वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः।
वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा॥ २४॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.५९)

श्लोकार्थः- वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दश-दश गुण अधिक जल,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् अहंकारसे आवृत है तथा भूतादि महत्तत्त्वसे समावृत है॥ २४॥

श्लोकः-

अव्यक्तेनावृतो ब्रह्मंस्तैः सर्वैः सहितो महान्।
एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम्।
नारिकेलफलस्यान्तर्बीजं बाह्यदलैरिव॥ २५॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.६०)

श्लोकार्थः- इन सबके सहित वह महत्तत्त्व भी अव्यक्त-प्रधानसे आवृत है। इस प्रकार जैसे नारियलके फलका भीतरी बीज बाहरसे कितने ही छिलकोंसे ढँका रहता है, वैसे ही यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणोंसे घिरा हुआ है॥ २५॥

श्लोकः-

जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः।
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्त्तते॥ २६॥
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना।
सत्त्वभृद्भगवान्विष्णुरप्रमेयपराक्रमः॥ २७॥
तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः।
मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः॥ २८॥
भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते।
नागपर्यङ्कशयने शेते च परमेश्वरः॥ २९॥
प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं करोति ब्रह्मरूपधृक्॥३०॥
सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥ ३१॥

(श्रीविष्णुपुराणे १.२.६१-६६)

श्लोकार्थः- उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान् विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुणका आश्रय लेकर इस संसारकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं॥ रचना हो जानेपर सत्त्वगुणविशिष्ट अतुल्य पराक्रमी भगवान् विष्णु उसका कल्पान्तपर्यन्त युग-युगमें पालन करते हैं॥ हे मैत्रेय! पुनः कल्पका अन्त होनेपर अति दारुण तमःप्रधान रुद्ररूप धारण कर वे जनार्दन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष्णु ही समस्त भूतोंका भक्षण कर लेते हैं॥ इस प्रकार समस्त भूतोंका भक्षणकर जगत्को जलमय करके वे परमेश्वर शेषशय्यापर शयन करते हैं॥ जगनेपर ब्रह्मारूप होकर वे पुनः जगत्की रचना करते हैं। वे एक ही भगवान् जनार्दन जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहृतिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन संज्ञाओंको धारण करते हैं॥२६-३०॥

● ● ● ● ● ●

● ● ● ●

● ●

●

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

❋ श्रीगणेशाय नमः ❋

प्रकाशकीय

श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य पुरीपीठाधीश्वरमहाभागद्वारा विरचित ऋग्वेदीय नासदीयसूक्तम्के श्रीसायणभाष्यम्की बृहन्मीमांसाको प्रकाशित करते हुए अतीव प्रसन्नता है। सूक्तमीमांसाको **सङ्गतिः**, **मन्त्रः**, **मन्त्रार्थः**, **भावार्थः**, **व्याख्येयः**, **सायणभाष्यम्** और **व्याख्या**— इन सातरूपोंमें विभक्त किया गया है। इसपर श्रीपूज्यचरणोंने स्वयम् ही बृहद्भूमिका भी लिखी है। **'परिशिष्टम्'** के माध्यमसे भी महत्त्वपूर्ण तथ्योंको प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ ही परम उपादेय है। व्याख्या जहाँ विद्वद्भोग्य है, वहाँ **'मन्त्रार्थः'** और **'भावार्थः'** सबके लिये उपयोगी है।

व्याख्याके माध्यमसे श्रीसायणभाष्यम्का गवेषणापूर्ण प्रामाणिक अनुवाद जहाँ प्रस्तुत किया गया है, वहाँ शास्त्रोंमें सन्निहित सुप्तप्राय कई महत्त्वपूर्ण तथ्योंका सुस्पष्ट समीकरण मनोरम ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। भूमिकाके परिशिष्ट अंशमें द्विविध **'निगमगीतम्'** के माध्यमसे **'नासदीयसूक्तम्'** के अन्तर्निहित रहस्योंको आर्षशैलीमें सानुवाद सन्निहित किया गया है।

'नासदीयसूक्तम्' की प्रस्तुत टीकाका नाम **'श्रीहरिहरप्रकाशिका'** है। श्रीहरि और हर दोनोंके स्वरूपवैभव और माहात्म्यसे भरपूर होनेसे तथा हरिहरोपासक एवम् श्रीहरिहरस्वरूप स्वनामधन्य श्रीहरिहरानन्द सरस्वती **'करपात्री जी'** महाभागके अनुग्रहसे स्फुरित होनेसे इस टीकाका नाम 'श्रीहरिहरप्रकाशिका' रखा गया है।

जिन पं० श्रीगंगाधरमिश्रजी (पुरी) और पं० श्रीपूर्णचन्द्र महापात्रजी (पुरी) ने पीठकी व्यवस्था सम्बन्धी समस्त दायित्वोंका दक्षतापूर्वक निर्वाह करते हुए पूज्यचरणोंको ग्रन्थलेखन आदिका अवसर प्रदान किया है, उनके प्रति हम हृदयसे आभारी हैं। पं० श्रीचन्द्रमोहन पाठकजी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(बिहार) ने प्रेसकापी तैयारकर पूज्य श्रीमहाराजजी को प्रमुदित किया है। पं० श्रीतेज:पालशर्माजी (पुरी) ने प्रूफ देखनेमें दक्षताका परिचय देकर पूज्यचरणोंको प्रमुदित किया है। डि.टि.पि व मुद्रण- लिजेंड, ३ आर्.एफ्. १२।४, युनिट-९, भुवनेश्वरने ग्रन्थको यथासम्भव शुद्ध, सुन्दर और शीघ्र प्रकाशित कर हमें प्रमुदित किया है। पं० श्रीहरेकृष्णशर्मा जी (कटक) ने प्रेसचयनादि प्रकाशनसम्बन्धी समस्त दायित्वोंका दक्षतापूर्वक निर्वाहकर स्वयम्को श्रीचरणोंका विशेष अनुग्रहपात्र बना लिया है।

लेखन, सम्पादन, प्रकाशन-प्रत्येकदृष्टिसे ग्रन्थको महत्त्वपूर्ण बनानेका पूर्ण प्रयास किया गया है। विषयविभागपूर्वक पाठक्रम और वर्णक्रमसे विषयानुक्रमणिका वैज्ञानिकढंगसे प्रस्तुत की गयी है।

विज्ञ पाठकोंसे निवेदन है कि वे धैर्य और उत्साहपूर्वक ग्रन्थानुशीलनकर लाभान्वित हों तथा सुयोग्य पाठकों तक हमारे प्रकाशनको पहुँचानेका प्रयत्न करें। आर्थिकदृष्टिसे सम्पन्न पाठकोंसे अनुरोध है कि वे पूज्यचरणोंद्वारा विरचित सभी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके प्रकाशनमें आर्थिक अवरोधको दूर कर, हमें प्रमुदित करें।

हम उन पण्डितप्रवर पूज्यवर ब्रह्मलीन श्री दण्डी स्वामी सुखबोधाश्रम (सुदर्शनाचार्य) जी महाराज (अनूपशहर, उ० प्र०) के प्रति हृदयसे आभारी हैं, जिन्होंने इस **'नासदीयसूक्तम्'** नामक ग्रन्थरत्नका अत्यन्त उत्साहपूर्वक आद्योपान्त अवलोकन और अनुशीलन कर श्रीपूज्यचरणोंको अत्यन्त आह्लादित किया था। जिन श्री डॉ० भीष्मदत्त शर्माजी (मेरठ) के अनुरोधसे इस ग्रन्थरत्नकी रचना पूज्यश्री आचार्यचरणोंने की, उनके प्रति हम हृदयसे आभारी हैं।

राजीव मिश्र

निजी सचिव, ज० शं०।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

शान्तिपाठः

वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीते-नाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि॥ तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥**

● ● ●

विनियोगः

एकादशेऽनुवाके त्रयोविंशतिसंख्याकानि सूक्तानि। तत्र **'नासदासीत्'** इति सप्तर्चं प्रथमं सूक्तं त्रैष्टुभम्। परमेष्ठी नाम प्रजापतिर्ऋषिः। वियदादिभावानां सृष्टि-स्थितिप्रलयादीनामत्र प्रतिपाद्यत्वात् तेषां (/एषाम्) कर्त्ता परमात्मा देवता। तथा चानुक्रान्तं — 'नासत्सप्त-प्रजापतिः परमेष्ठी भाववृत्तं तु' इति। गतो विनियोगः॥

गतो विनियोगः- समावर्तनेऽनेन सूक्तेन सिष्णासुना प्रत्यृचं समिदाधातव्या। सूत्रितं च। 'ममाग्ने वर्च इति प्रत्यृचं समिधोऽभ्यादध्यात्' (आ० गृ० ३.९.२) इति।

**ऋग्वेदीय कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्में पाठान्तरसहित यह शान्तिपाठ संलग्न है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

❋ श्रीगणेशाय नमः ❋

●

नासदीयसूक्तम्

विषयानुक्रम

●

भूमिकादि पृ I से LIV

●

मन्त्रक्रम	प्रतीक		विषय	पृष्ठ
१.	नासदासीन्नोसदासीत्	●	महाप्रलयमें कार्यप्रपञ्चसे विनिर्मुक्त अनिर्वचनीया मायाकी विद्यमानता	१-४९
२.	न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि	●	महाप्रलयमें कालातीत स्वप्रकाश स्वतःसिद्ध सर्वोपरि सत्य मायाश्रय परब्रह्मकी विद्यमानता	५०-६८
३.	तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे	●	ब्रह्माश्रित आवरणस्वभाव माया-संज्ञक असत्कल्प तमस्से समावृत तमोरूप जगत्की मायोपाधिक महेश्वरके स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तपके अमोघ प्रभावसे निष्पन्नता	६८-९२
४.	कामस्तदग्रे समवर्तताधि	●	मायासन्निहित जीवोपाधि मनोनिष्ठ कर्मवासनामूलक सिसृक्षारूप कामजन्य स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप ईश्वरीय तपकी ऋषिमनोगोचर जगद्धेतुता	९२-९९
५.	तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम्	●	अविद्याकामकर्मीकिरणतुल्य आकाशादिप्रपञ्चकी विद्युत्प्रकाशवत्	९९-१०६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रक्रम	प्रतीक	विषय	पृष्ठ
		युगपत् - निष्पन्नता तथा भोक्तृप्रपञ्चकी भोग्यप्रपञ्चसे उत्कृष्टता	
६.	को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्	● भूतभौतिक-भोक्तृभोग्यादिरूप प्रपञ्चके अभिन्ननिमित्तोपादान परमेश्वरमें सर्वज्ञकल्प किन्तु अर्वाचीन देवोंकी अगतिता	१०६-११७
७.	इयं विसृष्टिर्यत आबभूव	● जिस जगदाश्रय जगदीश्वरसे जगन्निष्पत्ति उसके लिये भी जगत्की दुर्धरता और दुर्विज्ञेयता अत एव नभनैल्यतुल्य जगत्की अनिर्वचनीयता और विवर्तता	११७-१३०

● ● ●

परिशिष्टम्

मन्त्रक्रम	प्रतीक	करपात्रभाष्यम् (पृष्ठ)	सायणभाष्यम् (पृष्ठ)	वैंकटमाधवभाष्यम् (पृष्ठ)
१.	नासदासीत्	१३१-१३६	१६५-१६७	१७५
२.	न मृत्युरासीत्	१३६-१४४	१६७-१६८	१७५-१७६
३.	तम आंसीत्	१४४-१४९	१६९-१७०	१७६
४.	कामस्तदग्रे	१४९-१५२	१७०-१७१	१७६
५.	तिरश्चीनो विततः	१५२-१५५	१७१-१७२	१७६-१७७
६.	को अद्धा वेद	१५६-१५८	१७२-१७३	१७७
७.	इयं विसृष्टिः	१५८-१६४	१७३-१७४	१७७-१७८

● ● ●

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्णानुक्रमेण
विषयानुक्रमणिका

मन्त्रक्रम	प्रतीक	सूक्तक्रम	पृष्ठ
१.	इयं विसृष्टिः	(७)	११७-१३०
२.	कामस्तदग्रे	(४)	९२-९९
३.	कोऽद्धा वेद	(६)	१०६-११७
४,	तम आसीत्	(३)	६८-९२
५.	तिरश्चीनः	(५)	९९-१०६
६.	न मृत्युरासीत्	(२)	५०-६८
७.	नासदासीत्	(१)	१-४९

● ● ●

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः॥
(गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत् २.१)

ॐ नमो महते नारायणाय॥
ॐ नमो भगवते रुद्राय॥

● ● ●

अथ नासदीयसूक्तम्

(ऋग्वेदसंहिता, दशममण्डल, अनुवाक ११, सूक्त १२९; अ० ८. अ० ७. व० १७)

● १. मायाशेषसंदर्भ

● **सङ्गति :**— महाप्रलयमें अनिर्वचनीया मायाकी विद्यमानता —

● **मन्त्र :**—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्॥
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥ १॥

● **पदच्छेदः**— न, असत्, आसीत्, नो, सत्, आसीत्, तदानीम्, न, आसीत्, रजः, नो, व्योमा, परः, यत्। किम्, आवरीवः, कुह, कस्य, शर्मन्, अम्भः, किम्, आसीत्, गहनम्, गभीरम्॥ १॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **मन्त्रार्थः— तदानीम्** - उस समय (महाप्रलयमें) उपादानरूपसे अभिमत तत्त्व **असत्** - शशशृङ्गादितुल्य निरुपाख्य असत् **न** - नहीं **आसीत्** - था और **नो** - न **सत्** - आत्मा और आकाशादितुल्य निर्वाच्य (निरूपण करने योग्य) सत् ही **आसीत्** - था। उस समय शशशृङ्गादितुल्य असत् ही होता तो उससे अर्थक्रियाकारी आकाशादिकी उत्पत्ति ही कहाँ सम्भव होती? उस समय यदि सर्गदशाके तुल्य आकाशादिकी विद्यमानता ही होती तो महाप्रलयकी प्राप्ति ही कहाँ होती? परिशेषसे यही सिद्ध है कि सत् और असत् और इनसे उपलक्षित सदसत्कोटिसे विलक्षण रजोरूप कार्यप्रपञ्चसे विरहित स्वाश्रयसापेक्ष स्वाश्रयभावापन्न अनिर्वचनीया माया ही महाप्रलयमें शेष थी। **रजः** (अत्र च सामान्यापेक्षमेकवचनम्) - रज:संज्ञक लोक **न** - नहीं **आसीत्** - था। अभिप्राय यह है कि **व्योमा परो यत्** (परस्ताद्यत्) **नो** (आसीत्) - व्योमसंज्ञक अन्तरिक्ष और उससे उपलक्षित अन्तरिक्षके नीचेके पृथ्वी, अतल (तल), वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल लोक उस समय नहीं थे। व्योमसंज्ञक अन्तरिक्षके ऊपरके स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् लोक भी नहीं थे। इस प्रकार महाप्रलयमें चतुर्दश (१४) भुवनात्मक ब्रह्माण्ड नहीं था। **किम् आवरीवः** - क्या आवरक (आवारक, आच्छादक) था? नहीं। जब आवर्य (आवरण करने योग्य, आवरणका विषय) ही कुछ नहीं था तब आवरक (आवरण करनेवाला), कहाँसे होता! **कुह** (कुत्र) - वह देश भी तो नहीं था, जिसमें स्थित होकर आवरक आवर्यका आवरण करता। अभिप्राय यह है कि आवरकको आवरण करनेके लिये आश्रय देनेवाला देश भी उस समय नहीं था, जिसमें स्थितिलाभकर वह आवर्यको आवृत करता। **कस्य शर्मन्** - किस भोक्ता जीवके सुख-दु:खसाक्षात्काररूप भोगके निमित्त वह आवरक आवर्यका आवरण करता? उस समय भोक्ता जीव भी तो देहेन्द्रियप्राणान्त:करणरूप उपाधिसे विरहित ईश्वरभावापन्न होकर ही अवशिष्ट था। **किं गहनं गभीरम् अम्भः आसीत्** - क्या दुष्प्रवेश और अत्यन्त अगाध जल था? नहीं। जल तो केवल अवान्तर प्रलयमें ही रहता है। महाप्रलयमें उसका रहना सम्भव नहीं।

● **भावार्थः—** उस महाप्रलयमें न तो असत् था, न सत् ही। उस समय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रजस् (लोक) अर्थात् पृथ्वीसे पातालपर्यन्त नीचेके लोक नहीं थे। तो क्या आकाश-अन्तरिक्ष और ऊपरके लोक थे? वे भी नहीं थे। तो क्या चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्डके ऊपर स्थित पुराणोक्त पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहम् और महत्-रूप सप्तावारक थे? नहीं; वे भी कहाँसे होते जब कोई आवार्य (आवृत होनेवाला) लोक ही नहीं था? वह देश भी उस समय नहीं था, जहाँ रहकर आवारक पदार्थ आवार्यको आवृत करते। तो क्या सुख-दुःख साक्षात्कार करनेवाला भोक्ता उस समय था? नहीं; भोक्ता भी उस समय कैसे होता, जबकि कोई अभिव्यञ्जक उपाधि और भोग्य अवशिष्ट नहीं थे। पर आकाशादि न सही, **'इदमग्रे सलिलमासीत्'** (तैत्तिरीयसंहिता ७.१.५.१), **'अपो वा इदमासीत्सलिलमेव'** (बृहज्जाबालोपनिषत् १) श्रुत्यन्तरसिद्ध जल तो उस समय रहा ही होगा? नहीं; उस समय जल भी नहीं था। जल तो अवान्तर प्रलयमें रहता है। महाप्रलयमें उसका रहना सम्भव नहीं॥

● **व्याख्येय :– 'नासदासीत्तदानीम्'** = 'महाप्रलयमें असत् नहीं था।'

● **सायणभाष्यम् - 'तपसस्तन्महिनाजायतैकम्' इत्यादिनाग्रे (३) सृष्टिः प्रतिपादयिष्यते। अधुना ततः प्रागवस्था निरस्तसमस्तप्रपञ्चा या प्रलयावस्था सा निरूप्यते। तदानीं प्रलयदशायामवस्थितं यदस्य जगतो मूलकारणं तदसच्छशविषाणवन्निरुपाख्यं नासीत्। न हि तादृशात्कारणादस्य सतो जगत उत्पत्तिः सम्भवति।**

● **व्याख्या** - इस जगत्का मूलकारण महाप्रलयदशामें शशविषाणतुल्य नितान्त असत् नहीं था; क्योंकि ऐसे कारणसे इस दृश्यमान जगत्की उत्पत्ति सम्भव नहीं। सृष्टिरचनासे पूर्व महाप्रलयावस्थामें द्वैतप्रपञ्च नहीं था। ऐसा होनेपर भी जगत्कारणरूपसे जो विद्यमान था, वह असत् नहीं था। अभिप्राय यह है कि शून्यवादियोंको मान्य सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य शशशृङ्गतुल्य निरुपाख्य शून्य नहीं था। यह नियम है कि शून्यका न तो कहीं आरोप हो सकता है और न शून्य किसीका अधिष्ठान ही हो सकता है; न शून्यसे सत् (भाव) की उत्पत्ति ही हो सकती है। शशशृङ्गादि जहाँ आकाशकुसुमादिके कारण नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो सकते, वहाँ घटादिके भी कारण नहीं हो सकते। कहा भी है— **'नास्त्यसद्धेतुकमसत्सदसद्धेतुकं तथा'** (माण्डूक्यकारिका ४.४०)

'असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत।' (तैत्तिरीयोपनिषद् २.७) इस श्रुतिके अनुसार प्रलयदशामें यद्यपि असत् सिद्ध होता है; परन्तु **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'**, **'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'** (तै० २.१) इन पूर्व वचनोंसे तथा **'तदात्मानं स्वयमकुरुत'** (तै० २.७) इस उत्तरवचनसे वह सदात्मा ही सिद्ध होता है। साथ ही **'असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्'** (तै० २.६)–'वह असत् ही हो जाता है जो (जगत्कारण पूर्वोक्त प्रतिष्ठारूप) ब्रह्मको असत् जानता है।' इस निन्दावचनसे तथा श्रुत्यन्तरसिद्ध **'कथमसतः सज्जायेत'** (छान्दोग्य० ६.२.२) = 'असत् से सत् कैसे उत्पन्न हो सकता है?' इस आक्षेपवचनसे भी सत्, प्राण, अव्याकृतसंज्ञक असत्को ही जगत्कारण मानना चाहिये, न कि बन्ध्यापुत्रवत् अलीक असत्को। **'असदेवेदमग्र आसीत्'** (छान्दोग्य० ३.१९.१), **'असद्वा इदमग्र आसीत्ततो वै सदजायत'** (तै० २.७) आदि स्थलोंमें असत्से सत्की उत्पत्तिका अर्थ अव्याकृतसे नाम-रूपात्मक प्रपञ्चकी अभिव्यक्ति ही है। जैसा कि बृहदारण्यकमें कहा गया है—

> **''तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियतासौ नामायमिदं रूप इति।''** (बृहदारण्यक० १.४.७)

'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छा० ६.२.१), **'सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्'** (छा० ६.२.२), **'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति'** (छा० ६.२.३) इन श्रुतियोंके अनुशीलनसे सत् ही जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण सिद्ध होता है।

● **व्याख्येय :- 'नो सदासीत्तदानीम्'** = 'उस समय आत्मा और आकाशादिके तुल्य सत्त्वरूपसे निर्वाच्य नहीं था।'

● **सायणभाष्यम् - तथा नो सन्नैव सदात्मवत्सत्त्वेन निर्वाच्यमासीत्। यद्यपि सदसदात्मकं प्रत्येकं विलक्षणं भवति तथापि भावाभावयोः सहावस्थानमपि सम्भवति। कुतस्तयोस्तादात्म्यमिति उभयविलक्षणमनिर्वाच्यमेवासीदित्यर्थः। ननु नो सदिति पारमार्थिकसत्त्वस्य निषेधः।**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तर्ह्यात्मनोऽप्यनिर्वाच्यत्वप्रसङ्गः। अथोच्येत। न। आनीदवातमिति तस्य सत्त्वमग्रे वक्ष्यते। परिशेषान्मायाया एवात्र सत्त्वं निषिध्यत इति।

● **व्याख्या** - उस समय स्वतःसिद्ध स्वयंप्रकाश आत्माके समान कोई दूसरी सत्ता भी नहीं थी। अभिप्राय यह है कि उस समय सत्, असत् दोनोंसे विलक्षण कोई अनिर्वचनीय वस्तु ही थी।

यह ध्यान रखने योग्य है कि यहाँ परमार्थसत्यका निषेध नहीं है; क्योंकि उसका अस्तित्व अगले मन्त्रमें **'आनीदवातम्'** कहकर स्वीकार किया गया है।

सत्, असत्से विलक्षण जिस तत्त्वका जगत्कारणरूपसे प्रतिपादन अभीष्ट है, वह वेदान्तप्रसिद्ध वक्ष्यमाण तमस्, माया या अज्ञान है। वह ब्रह्मतुल्य निर्वाच्य 'सत्य' नहीं और शशशृङ्गतुल्य निरुपाख्य 'असत्' नहीं। वह इन्द्रियगोचरकार्यकोटिका सत् नहीं, इन्द्रियागोचर कारणकोटिका असत् नहीं। यद्यपि सत् (अबाध्य) और असत् (वन्ध्यापुत्रादि) परस्परविलक्षण पदार्थोंकी वन्ध्या और वन्ध्यापुत्रवत् सहस्थिति संभव नहीं है, तथापि प्रतीतिगोचर अर्थक्रियाकारी बाधयोग्य घट, पटादिरूप पदार्थको असत् माना जाय तो रज्जु और रज्जुसर्पतुल्य उनका सहावस्थान भी सम्भव है। ऐसा होनेपर भी दोनोंमें तादात्म्य नहीं सध सकता। तादात्म्यसिद्धिके लिये जगत्कारणरूपसे सदाश्रित रहनेवाली अनिर्वचनीया मायाशक्ति मान्य है। जिस प्रकार घटोत्पादिनीशक्तिके विना केवल मृत्तिकासे घटोत्पत्ति सम्भव नहीं; दाहिकाशक्तिके विना केवल अंगारसे स्फोट (दाह) सम्भव नहीं तथा अज्ञानके विना केवल रज्जुसे सर्पादिकी उत्पत्ति सम्भव नहीं; उसी प्रकार मायाशक्तिके विना केवल असङ्ग चिदात्मासे प्रपञ्चोत्पत्ति सम्भव नहीं। रज्जु और रज्जुसर्पके मध्यवर्ती रज्जुके समाश्रित अज्ञानतुल्य ब्रह्माश्रिता प्रपञ्चोत्पादिनी शक्ति मान्य है।

अथवा 'सत्' असत् नहीं और 'असत्' सत् नहीं। ये दोनों परस्परविलक्षण हैं। प्रपञ्चोत्पादिनीशक्ति उभयविलक्षण है। वह प्रपञ्चकी जननी (उपादान) भावरूपा होनेसे असत् नहीं और बाध्य होनेसे परमभावरूप सत् नहीं। परमभावरूप न होता हुआ भी प्रतीतिगोचर प्रपञ्च भावरूप होनेसे सत् है। **'सत्यस्य सत्यम्'** (बृहदारण्यक० २.३.६, भागवत १०.२.२६).

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'नित्यो नित्यानाम्' (कठोपनिषत् ३,१३) आदि स्थलोंमें उसे सत्य माना गया है। परमभावरूप सत्से विलक्षण आद्यन्तयुक्त, बाध्य होनेसे वह असत् है। **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** (भगवद्गीता २.१६) और **'असतो मा सद्गमय'** (बृहदारण्यक० १.३.२८) आदि स्थलोंमें माया और उसके कार्यको असत् माना गया है। अप्राप्त असत्का प्रतिषेध न होनेसे ऐसा मानना आवश्यक है। ऐसी स्थितिमें पारमार्थिक असत्त्व और व्यावहारिक या प्रातीतिक सत्त्वके कारण भावाभावका अनिर्वचनीय पदार्थमें सहावस्थान होना स्वाभाविक है। ऐसा होनेपर भी गुण-गुणी आदिके तुल्य उनमें तादात्म्य हो, ऐसा सम्भव नहीं। इस प्रकार ब्रह्मशक्ति माया और कार्यात्मक प्रपञ्च दोनों ही सदसत् या भावाभावरूप अनिर्वचनीय हैं। दोनोंका तादात्म्य है। श्रीमद्भागवतमें माया सदसदात्मिका मानी गयी है। ऐसी स्थितिमें जगत्को सदसदात्मक मानना उपयुक्त ही है। जैसे अस्निग्धमृत्तिकामें घटोत्पादिनीशक्ति न होनेसे उससे घटोत्पत्ति असङ्गत है, वैसे ही मायाविरहित असङ्ग ब्रह्मसे प्रपञ्चोत्पत्ति असङ्गत है। जैसे रज्जुका अज्ञान ही सर्पोपादान है, न कि केवल रज्जु; क्योंकि रज्जुरूपसे विदित रज्जुसे रज्जुसर्पोत्पत्ति संभव नहीं; वैसे ही सत्का अज्ञान ही प्रपञ्चोपादान है, न कि केवल सत्; क्योंकि ब्रह्मरूपसे विदित ब्रह्म प्रपञ्चमें हेतु नहीं। मायाविशिष्ट - शबल ब्रह्मको सत् मानकर ही उससे प्रपञ्चोत्पत्तिका अन्यत्र प्रतिपादन उपयुक्त है। अग्रहण (ज्ञानका प्रागभाव), अन्यथाग्रहण (मिथ्याज्ञान, भ्रान्ति) और उसके (भ्रान्तिके) संस्कार अज्ञान शब्दके अवाच्य हैं। 'अज्ञोऽहम्' इस अनुभवसे अज्ञानकी अपरोक्षानुभूति सिद्ध है। ग्रहणप्रागभावरूप अग्रहण इन्द्रियसन्निकर्षाभावके कारण अपरोक्ष नहीं है, वह अनुपलब्धिगम्य है। भ्रान्ति और उसके संस्कार ये अभावसे भिन्न वस्तुके कार्य हैं। इन्हें उपादानकी अपेक्षा है। आत्मा केवल (असङ्ग) होनेसे इनका हेतु नहीं हो सकता। ऐसी स्थितिमें ज्ञानदाह्य अनादि अज्ञानकी उनके उपादानरूपसे सिद्धि होती है।

प्रलयदशामें आत्माके समान सत्-रूपसे निर्वाच्य अन्य कोई पदार्थ नहीं था। 'सद्विलक्षण असत् नहीं है', ऐसा नहीं कहा जा सकता। ऐसा माननेमें स्पष्ट ही व्याघातदोष प्राप्त है। **'भिन्नं सतोऽसच्च नेति वक्षि चेद् व्याहतिस्तव'** (पञ्चदशी २.६९)। अभिप्राय यह है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कि यद्यपि असत् सद्विलक्षण है, तथापि असत् यदि अर्थक्रियाकारी या प्रतीतिगोचर है तो उसे बन्ध्यापुत्रसे विलक्षण मानना होगा। ऐसी स्थितिमें सदसत्की रज्जु और रज्जुसर्पके तुल्य सहस्थिति संभव होगी।

प्रश्न उठता है कि इस प्रकार सत् और असत्का साहचर्य सिद्ध होनेपर भी भाव और अभावका साहचर्य तो सम्भव नहीं, फिर **'भावाभावयोः सहावस्थानमपि तदानीं सम्भवति'** ऐसा क्यों कहा गया है? ऐसा माननेपर तो असत् अभावात्मक ही सिद्ध होता है? घट और घटाभावकी सहस्थिति असङ्गत मान्य है। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि बन्ध्यापुत्रवत् असत्के लिये अभाव पदका प्रयोग यहाँ नहीं किया गया है। ऐसा मानना भी उपयुक्त नहीं कि असत्पदका प्रयोग सर्वत्र अभावार्थक ही होता है या अभाव पदका प्रयोग सर्वत्र असदर्थक ही होता है। **'असतो मा सद् गमय'** (बृहदारण्यक० १.३.२८) यहाँ असत् पदका प्रयोग प्रतीयमान प्रपञ्चके लिये हुआ है। **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** (भगवद्गीता २.१६) में असत् और अभावका प्रयोग बन्ध्यापुत्रतुल्य पदार्थके लिये नहीं हुआ है। अप्राप्त (अप्रसक्त)के प्रतिषेधमें श्रुति और सन्तोंकी प्रवृत्ति असङ्गत है—

"असतः शून्यस्यास्तित्वप्रसङ्गाभावादप्रसक्तप्रतिषेधप्रसक्तिरित्याशङ्क्याह — 'न हि शीतोष्णादि सकारणं प्रमाणैर्निरूप्यमाणं वस्तु सद् भवति'। विमतमतात्त्विकमप्रामाणिकत्वाद्रज्जुसर्पवत्। न हि धर्मिग्राहकस्य प्रत्यक्षादेस्तत्त्वावेदकं प्रामाण्यं कल्प्यते विषयस्य दुर्निरूपत्वादतोऽनिर्वाच्यं द्वैतमित्यर्थः॥" (आनन्दगिरिः, भगवद्गीता २.१६)

कदाचित् **'नो सदासीत्'** से पारमार्थिक सत्त्वका निषेध मानें तब तो आत्मा भी अनिर्वाच्य ही सिद्ध होगा; परन्तु श्रुति अग्रिममन्त्रसे आत्माका प्रतिपादन करेगी; परिशेषसे मायाके ही सत्त्वका (मायाको सत् माननेका) यहाँ निषेध प्राप्त है। अभिप्राय यह है कि महाप्रलयमें जो जगत्कारणरूपसे विद्यमान था, वह सत् नहीं था, असत् नहीं था, सदसत् नहीं था; तीनोंसे विलक्षण अनिर्वाच्य मायानामक पदार्थ ही था।

यह नियम है कि **'सच्च सद्धेतुकं नास्ति सद्धेतुकमसत्कुतः'**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(माण्डूक्यकारिका ४.४०). सत् न तो सत्का कारण हो सकता है और न असत्का ही। घटादि न तो घटादिका कारण हो सकता है, न शशशृङ्गादिका ही।

तो फिर विद्यमान घट-पट, स्त्री-पुत्र, सूर्य-चन्द्रादिका उद्गमस्थान कौन हो सकता है? सत् और असत्का परस्पर तादात्म्य नहीं सध सकता। सदसत्का सत् या असत्से तादात्म्य नहीं सध सकता। कार्य-कारणमें अपेक्षित तादात्म्यको यद्यपि सत्से सत्की या असत्से असत्की या सदसत्से सदसत्की उत्पत्ति मानकर साधा जा सकता है; परन्तु उत्पत्ति नहीं साधी जा सकती। इस प्रकार तादात्म्य नहीं तो कार्य-कारणभाव नहीं और तादात्म्य है तो कार्यकारणभाव नहीं; अर्थात् तादात्म्य, अतादात्म्य उभयस्थितियोंमें उक्त रीतिसे उत्पत्ति असिद्ध है।

पृथ्वी आदिकी कार्यरूपता दृश्यत्व, सावयवत्व, परिच्छिन्नत्व, अनित्यत्वादि हेतुओंसे मान्य है। पारिशेष्यन्यायसे सत्, असत्, सदसत्से विलक्षण अनिर्वचनीया माया ही कारण सिद्ध होती है और कार्य भी तदनुरूप अनिर्वाच्य ही सिद्ध होता है। **'मायावादिमते क्वचिदपि कार्यकारण-भावस्य वस्तुभूतस्यासम्प्रतिपत्तेः'** (आनन्दगिरिः, माण्डूक्यकारिका ४.२०)।

शुद्धात्मतत्त्वको जगत्कारण अधिष्ठानरूपसे माना गया है और मायाको अथ वा मायाशबलको उपादानरूपसे —

"भ्रमाधिष्ठानताऽस्माभिः प्रकृतित्वमुपेयते।
निर्गुणेऽप्यस्ति जात्यादौ सा ब्रह्म प्रकृतिस्ततः ॥"

(वैयासिकन्यायमाला; ब्रह्मसूत्रे २.१.१३.३७.२६)

श्रीमद्भागवतमें मायाशक्तिको सदसदात्मिका माना गया है और इसी अभिप्रायसे अनिर्वचनीयख्यातिवादीको सदसदात्मख्यातिवादी भी माना गया है —

"सा वा एतस्य संद्रष्टुःशक्तिः सदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥"

(श्रीमद्भागवते ३.५.२५)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"सदसद्भिन्नत्वे सति सदसदात्मकं ज्ञानमनिर्वचनीयख्यातिरिति। ज्ञानबाधितत्त्वात्सतो भिन्नत्वं तथाप्यापातत उपलभ्यमानत्वादसतो भिन्नत्वं तथात्वे सति सदसदात्मकं ज्ञानमनिर्वचनीयख्यातिः।

(वंशीधरी, भागवते ११.१७.२४)

"अव्यक्तं कारणं यत्तत् प्रधानमृषिसत्तमैः।
प्रोच्यते प्रकृतिःसूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम्॥"

(विष्णुपुराणे १.२.१९)

"तमो व्यक्तं शिवं धाम रजो योनिः सनातनः।
प्रकृतिर्विकारः प्रलयः प्रधानं प्रभवाप्ययौ॥
अनुद्रिक्तमनूनं वाप्यकम्पमचलं ध्रुवम्।
सदसच्चैव तत्सर्वमव्यक्तं त्रिगुणं स्मृतम्॥"

(महा० आश्वमेधिकपर्वणि ३९.२३,२४)

उपर्युक्त स्थलोंमें मायाकेलिये 'सदसत्' शब्दका प्रयोग हुआ है। 'सत्' भाव और 'असत्' अभावरूप है। परस्परविरुद्ध होनेसे भावाभावरूप कोई पदार्थ नहीं हो सकता। सत्का अर्थ प्रातीतिक, व्यावहारिक, अपरमार्थ-सत् या अनित्यविलक्षण अथवा असद्विलक्षण मानें तथा असत्का अर्थ परमार्थज्ञानसे बाधयोग्य मानें तो अनिर्वचनीय पदार्थ सदसत् हो सकता है। इसी अभिप्रायसे माया सदसदात्मिका कही जाती है।

अथवा भावरूप होनेसे माया सत् है, परमभावरूप न होनेसे असत् है।

अर्थक्रियाकारी जगत्का बीज होनेसे माया सत् (सती) है और ब्रह्मज्ञानसे बाध्य होनेसे असत् (असती) है। इस तरह बन्ध्यापुत्र और ब्रह्म—उभयविलक्षण होनेसे माया सदसदात्मिका है। जैसे एक ही देवदत्त पिताकी अपेक्षासे पुत्र और पुत्रकी अपेक्षासे पिता होता है; वैसे ही एक ही माया बन्ध्यापुत्रकी अपेक्षासे सत् और ब्रह्मकी अपेक्षासे असत् होनेसे सदसदात्मिका मान्य है। अथवा जैसे एक ही महदादि अहमादिकी अपेक्षा प्रकृति और अव्यक्तादिकी अपेक्षा विकृति होनेसे प्रकृति-विकृति मान्य है, वैसे ही प्रकृति बन्ध्यापुत्रकी अपेक्षासे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(माण्डूक्यकारिका ४.४०). सत् न तो सत्का कारण हो सकता है और न असत्का ही। घटादि न तो घटादिका कारण हो सकता है, न शशशृङ्गादिका ही।

तो फिर विद्यमान घट-पट, स्त्री-पुत्र, सूर्य-चन्द्रादिका उद्‌गमस्थान कौन हो सकता है? सत् और असत्का परस्पर तादात्म्य नहीं सध सकता। सदसत्का सत् या असत्से तादात्म्य नहीं सध सकता। कार्य-कारणमें अपेक्षित तादात्म्यको यद्यपि सत्से सत्की या असत्से असत्की या सदसत्से सदसत्की उत्पत्ति मानकर साधा जा सकता है; परन्तु उत्पत्ति नहीं साधी जा सकती। इस प्रकार तादात्म्य नहीं तो कार्य-कारणभाव नहीं और तादात्म्य है तो कार्यकारणभाव नहीं; अर्थात् तादात्म्य, अतादात्म्य उभयस्थितियोंमें उक्त रीतिसे उत्पत्ति असिद्ध है।

पृथ्वी आदिकी कार्यरूपता दृश्यत्व, सावयवत्व, परिच्छिन्नत्व, अनित्यत्वादि हेतुओंसे मान्य है। पारिशेष्यन्यायसे सत्, असत्, सदसत्से विलक्षण अनिर्वचनीया माया ही कारण सिद्ध होती है और कार्य भी तदनुरूप अनिर्वाच्य ही सिद्ध होता है। **'मायावादिमते क्वचिदपि कार्यकारण-भावस्य वस्तुभूतस्यासम्प्रतिपत्तेः'** (आनन्दगिरिः, माण्डूक्यकारिका ४.२०)।

शुद्धात्मतत्त्वको जगत्कारण अधिष्ठानरूपसे माना गया है और मायाको अथ वा मायाशबलको उपादानरूपसे —

"भ्रमाधिष्ठानताऽस्माभिः प्रकृतित्वमुपेयते।
निर्गुणेऽप्यस्ति जात्यादौ सा ब्रह्म प्रकृतिस्ततः ॥"
(वैयासिकन्यायमाला; ब्रह्मसूत्रे २.१.१३.३७.२६)

श्रीमद्भागवतमें मायाशक्तिको सदसदात्मिका माना गया है और इसी अभिप्रायसे अनिर्वचनीयख्यातिवादीको सदसदात्मख्यातिवादी भी माना गया है —

"सा वा एतस्य संद्रष्टुःशक्तिः सदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥"
(श्रीमद्भागवते ३.५.२५)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"सदसद्भिन्नत्वे सति सदसदात्मकं ज्ञानमनिर्वचनीयख्या-
तिरिति। ज्ञानबाधितत्त्वात्सतो भिन्नत्वं तथाप्यापातत
उपलभ्यमानत्वादसतो भिन्नत्वं तथात्वे सति
सदसदात्मकं ज्ञानमनिर्वचनीयख्यातिः।

(वंशीधरी, भागवते ११.१७.२४)

"अव्यक्तं कारणं यत्तत् प्रधानमृषिसत्तमैः।
प्रोच्यते प्रकृतिःसूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम्॥"

(विष्णुपुराणे १.२.१९)

"तमो व्यक्तं शिवं धाम रजो योनिः सनातनः।
प्रकृतिर्विकारः प्रलयः प्रधानं प्रभवाप्ययौ॥
अनुद्रिक्तमनूनं वाप्यकम्पमचलं ध्रुवम्।
सदसच्चैव तत्सर्वमव्यक्तं त्रिगुणं स्मृतम्॥"

(महा० आश्वमेधिकपर्वणि ३९.२३,२४)

उपर्युक्त स्थलोंमें मायाकेलिये 'सदसत्' शब्दका प्रयोग हुआ है। 'सत्' भाव और 'असत्' अभावरूप है। परस्परविरुद्ध होनेसे भावाभावरूप कोई पदार्थ नहीं हो सकता। सत्का अर्थ प्रातीतिक, व्यावहारिक, अपरमार्थ-सत् या अनित्यविलक्षण अथवा असद्विलक्षण मानें तथा असत्का अर्थ परमार्थज्ञानसे बाधयोग्य मानें तो अनिर्वचनीय पदार्थ सदसत् हो सकता है। इसी अभिप्रायसे माया सदसदात्मिका कही जाती है।

अथवा भावरूप होनेसे माया सत् है, परमभावरूप न होनेसे असत् है।

अर्थक्रियाकारी जगत्का बीज होनेसे माया सत् (सती) है और ब्रह्मज्ञानसे बाध्य होनेसे असत् (असती) है। इस तरह बन्ध्यापुत्र और ब्रह्म—उभयविलक्षण होनेसे माया सदसदात्मिका है। जैसे एक ही देवदत्त पिताकी अपेक्षासे पुत्र और पुत्रकी अपेक्षासे पिता होता है; वैसे ही एक ही माया बन्ध्यापुत्रकी अपेक्षासे सत् और ब्रह्मकी अपेक्षासे असत् होनेसे सदसदात्मिका मान्य है। अथवा जैसे एक ही महदादि अहमादिकी अपेक्षा प्रकृति और अव्यक्तादिकी अपेक्षा विकृति होनेसे प्रकृति-विकृति मान्य है, वैसे ही प्रकृति बन्ध्यापुत्रकी अपेक्षासे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत् और ब्रह्मकी अपेक्षासे असत होनेसे सदसदात्मिका मान्य है। कार्यदशामें मूर्त (व्यक्त) और कारणदशामें अमूर्त (अव्यक्त) होनेसे माया सदसदात्मिका है। व्यक्त अथ वा मूर्तको सत् और अमूर्त अथ वा अव्यक्तको असत् कहनेकी प्रथा है।

मायिक प्रपञ्च और माया दोनोंको माया कहनेकी प्रथा है। उसका रज्जुसर्पादितुल्य भान होनेसे वह असत् नहीं अथ वा रज्जुसर्पादितुल्य प्रपञ्चकी अभिव्यञ्जिका होनेसे असत् नहीं। **'नेह नानास्ति किञ्चन'** (बृह० ४.४.१९) आदि श्रुतियोंके अनुसार नानात्वका निषेध (बाध) होनेसे वह सत् नहीं– **''नासदासीद्विभातत्वान्नो सदासीच्च बाधनात्''** (पञ्चदशी ६.१२९)। अकृतार्थोंके प्रति माया अनष्ट होनेसे असत् नहीं, कृतार्थोंके प्रति नष्ट होनेसे सत् नहीं– **'कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्'** (योगदर्शनसाधनपादे २२)। अथ वा भूतपूर्वगतिसे सत् और बाधगतिसे या विदेहमोक्षरूपा भविष्यद् गतिसे असत् मान्य होनेके कारण माया सत् या असत् नहीं– **'भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः'** (नारदपरिव्राजकोपनिषत् ९.९)। तत्त्वज्ञकी वर्तमानदृष्टिसे वह अनिर्वचनीया है; क्योंकि सदसत् माननेमें विरोध है– **'सदसद्रूपत्त्वं विरुद्धत्वादयुक्तम्'** (पञ्चदशीटीका ६.१२९)।

ध्यान रहे, सर्गदशामें नाम-रूपात्मककार्यको लोकदृष्टिसे सत्, विचारदृष्टिसे अनित्य, वेदान्तरीतिसे असत् या मिथ्या कहते हैं, प्रलयदशामें उसीको अव्याकृत या असत् कहते हैं। **'यथेमेऽविकृता भावाः'** (भागवते १०.३.१५) के अनुसार सृष्टिदशामें भी अव्यक्त, अव्याकृत या प्रकृति, प्रधान अविकृत ही बना रहता है। सर्गदशामें आवर्य अतएव कर्मरूप कार्योंके साथ आवरक अत एव कर्तृरूप अज्ञानका सहावस्थान और प्रलयदशामें अनभिव्यक्त कार्योंके साथ उसका सहावस्थान तथा तादात्म्य **'तम आसीत्तमसा गूढमग्रे'** (३) इस वक्ष्यमाणवचनसे सिद्ध है। यही कारण है कि पुराणोंमें प्रकृतिको जहाँ त्रिगुण, अव्यक्त, नित्य, प्रधान, प्रकृति, अविशेष, विशेषवत् (विशेषाश्रय) और सदसदात्मक (सत् = कार्य, असत् = कारण, आत्मक = प्रत्येकविलक्षण, उभयरूप = कार्यगर्भित कारणरूप) माना है, वहाँ अज, अनादि, अव्यय, अमेय (अप्रमेय), अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस, अगन्ध, सृष्टिगर्भ भी माना है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत्॥"
(श्रीमद्भागवते ३.२६.१०)

"अव्यक्तं कारणं यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमैः।
प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम्॥
अक्षय्यं नान्यदाधारममेयमजरं ध्रुवम्।
शब्दस्पर्शविहीनं तद्रूपादिभिरसंहितम्॥
त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम्।
तेनाग्रे सर्वमेवासीद् व्याप्तं वै प्रलयादनु॥"
(श्रीविष्णुपुराणे १.२.१९-२१)

सत्कार्यवादके अनुसार प्रधान और प्रपञ्चमें तादात्म्य सध जाता है। तादात्म्यकी असिद्धि तो तब मान्य है जब प्रपञ्चको मिथ्या या असत् और प्रपञ्चोपादानको सत् माना जाय! उस तादात्म्यासिद्धिके वारणके लिये परस्परविलक्षण सदसत्के स्थानपर उभयविलक्षण मायाको प्रपञ्चोपादान माना गया है। शाङ्करवेदान्तमें जगत् मायाका परिणाम और ब्रह्मका विवर्त है।

'माया' शक्ति मान्य है। शक्ति उसके शक्तिमान्से न भिन्न होती है, न अभिन्न; अतः अनिर्वचनीया होती है। यथा (जिस प्रकार) मृन्निष्ठ (मिट्टीमें रहनेवाली) प्रपञ्चोत्पादिनी शक्ति मृत्तिकासे न भिन्न होती है, न अभिन्न, उभयविलक्षण होनेसे अनिर्वचनीया होती है तथा (उसी प्रकार) कोई भी शक्य (शक्तिकार्य) उसके आश्रय शक्तिमान् (शक्त) से न तो भिन्न होता है और न अभिन्न; अतः अनिर्वचनीय होता है; जैसे मृत्कार्य घट मिट्टीसे न भिन्न होता है, न अभिन्न; अपितु उभयविलक्षण होनेसे अनिर्वचनीय होता है। अभिप्राय यह है कि कार्यसहित शक्ति अपने आश्रय शक्तिमान्में अध्यस्त होती है। जिस प्रकार वह्निनिष्ठ दाहिकाशक्ति वह्नि नहीं होती; उसी प्रकार सत् (परमात्मा, ब्रह्म) की शक्ति सत्य नहीं होती। सदसद्विलक्षण होनेसे मायाशक्ति अनिर्वचनीया होती है, साथ ही कार्यानुमेया भी।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"कार्यादाश्रयतश्चैषा भवेच्छक्तिर्विलक्षणा।
स्फोटाङ्गारौ दृश्यमानौ शक्तिस्तत्रानुमीयते॥
स घटो न मृदो भिन्नो वियोगे सत्यनीक्षणात्।
नाप्यभिन्नः पुरा पिण्डदशायामनवेक्षणात्॥
अतोऽनिर्वचनीयोऽयं शक्तिवत्तेन शक्तिजः।
अव्यक्तत्वे शक्तिरुक्ता व्यक्तत्वे घटनामभृत्॥"
(पञ्चदशी १३.२९, ३५, ३६)

इस रीतिसे सत्य निर्वाच्य है और माया तथा उसका कार्य अनिर्वाच्य। ऐसी स्थितिमें शक्ति और उसके कार्य दोनों ही सदसद्विलक्षण होनेसे दोनोंमें तादात्म्य सध जाता है।

श्रुतियोंमें कहीं तो सत्, असत्, सदसत् तीन कोटियोंसे, कहीं सत्, असत्, सदसत्; भिन्न, अभिन्न, उभय; सभाग, निर्भाग, उभयरूप नवकोटियोंसे मायाको विलक्षण माना गया है। कहीं मायाको अनादि अविद्या सत्-असत्-विलक्षणा अनिर्वाच्या माना गया है। कहीं उसे प्रकृति, प्रधान, मायाशबल, गणेश माना गया है।

"अनादिरन्तर्वत्नी प्रमाणाप्रमाणसाधारणा न सती नासती न सदसती स्वयमविकाराद्विकारहेतौ निरूप्यमाणेऽसती। अनिरूप्यमाणे सती, लक्षणशून्या सा मायेत्युच्यते।"
(सर्वसारोपनिषत् ४)

"न सन्नासन्न सदसद्भिन्नाभिन्नं न चोभयम्। न सभागं न निर्भागं न चाप्युभयरूपकम्।" (परब्रह्मोपनिषत्)

"मूलाविद्या सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या"
(त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३)

"अनिर्वचनीया सैव माया जगद्बीजमित्याह। सैव प्रकृतिरिति गणेश इति प्रधानमिति च मायाशबलमिति च।" (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् ४)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

''अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिः अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते॥
सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो, महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा॥''
(विवेकचूडामणि: ११०, १११)

जगत् और माया दोनोंको वेदान्तोंमें न सत्, न असत्, न सदसत्; न भिन्न, न अभिन्न, न भिन्नाभिन्न; न सभाग (सावयव), न निर्भाग (निरवयव), न सभाग-निर्भागोभय कहा गया है।

मायाशक्तिविशिष्ट ब्रह्मके लिये प्रयुक्त सत्, असत् – शब्द मायाके लिये भी प्रयुक्त होते हैं। **'सच्छब्दवाच्यमविद्याशबलं ब्रह्म'** (त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् १), **'असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत।'** (तैत्तिरीय० २.७)।

इस प्रकार वेदान्तप्रस्थानमें मायाको अठारह प्रकारसे कहनेकी प्रथा है—

१. सत्, २. असत्, ३. सदसत्, ४. न सत्, ५. न असत्, ६. न सदसत्, ७. सादि, ८. अनादि, ९. साद्यनादि, १०. न सादि, ११. न अनादि, १२. न साद्यनादि, १३. सावयव, १४. निरवयव, १५. सावयव-निरवयव, १६. न सावयव, १७. न निरवयव, १८. न सावयव-निरवयव।

उक्त रीतिसे माया सत्, न सत्; असत्, न असत्; सदसत्, न सदसत्; सादि, न सादि; अनादि, न अनादि; साद्यनादि, न साद्यनादि; सावयव, न सावयव; निरवयव, न निरवयव; सावयव-निरवयव, न सावयव-निरवयव अठारह परस्पर विरुद्ध रूपोंमें निरूपित होती है। उक्त परस्पर विरुद्धरूपोंमें निरूपित होनेके कारण माया अनिर्वचनीया सिद्ध है।

प्रकृतभाष्यमें असत्के लिये निरुपाख्य, सत्के लिये निर्वाच्य और मायाके लिये अनिर्वाच्य शब्दका प्रयोग किया गया है। कठोपनिषत् और माण्डूक्यकारिकामें आत्मादि सिद्ध वस्तुओंके लिये 'धर्म' शब्दका प्रयोग हुआ है। ये सब शब्द श्रौत हैं। प्रस्थानान्तरप्रयुक्त (बौद्धागमप्रयुक्त)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होनेपर भी इनकी वैदिकता लुप्त नहीं होती। **'एवं धर्मान्पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति'** (कठोपनिषत् २.१.१४), **'धर्मा य इति जायन्ते जायन्ते ते न तत्त्वतः'** (मा० का० ४.५८)।

ध्यान रहे, जहाँ आत्माको अशब्दगोचर कहना अभीष्ट होता है, वहाँ उसके लिये भी निरुपाख्य, निराख्यात, अनिर्वचनीय शब्दोंका प्रयोग होता है। **'निरुपाख्यम्'** (मैत्रायण्युपनिषत् ५), **'निराख्यातोऽस्मि'** (ब्रह्मविद्योपनिषत् ९७), **'अनिर्वचनीयज्योतिः'** (मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ४); जहाँ आत्माको सत्य, ज्ञान, आनन्दरूप कहना अभीष्ट होता है, वहाँ वह **'निर्वाच्य'** माना जाता है। जहाँ मायाको सदसद्विलक्षणा अनिर्वाच्या कहा गया है, वहाँ ब्रह्म 'सत्' - **'निर्वाच्य'** सिद्ध होता है।

सर्वभूतहृदयश्रीकरपात्रस्वामिमहाभागसद्गुरुचरणोंने सायणभाष्यानुरूप **'नासदासीन्नो सदासीत्'** (ऋ० स० १०.१२९.१) की जो व्याख्या की है उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन प्राप्त सन्दर्भमें इस प्रकार है -

"यद्यपि सदसती परस्परविलक्षणे, तत एव भावाभावरूपयोस्तयोः सहावस्थानमपि न सम्भवति, तत एव तादात्म्यमपि तयोर्न सम्भवति, किन्तु सत्त्वासत्त्वाभ्यां निर्वक्तुमनर्हमनिर्वाच्यमेवासीत् तन्मूलकारणम्।" (वेदार्थपारिजाते पृ० १२१९)

"यद्यपि सत् और असत् ये दोनों परस्पर अत्यन्त विलक्षण हैं, इसलिये भाव और अभाव स्वभाववाले इन दोनोंकी एक जगह स्थिति नहीं हो सकती। इसलिये इन दोनोंका परस्परतादात्म्य नहीं माना जा सकता, किन्तु यहाँ इन शब्दोंका अर्थ यही है कि वह मूलकारण प्रलयावस्थामें सत्-रूपसे और असत्-रूपसे भी कथन करने योग्य नहीं था।"

"यद्यपि सृष्टिकालेऽपि मायाया अनिर्वाच्यत्वमेव तथाप्याञ्जस्येन बुद्ध्यारोहाय तदानीमित्युक्तिः। न च व्यावहारिकसत्तावतां पृथिव्यादीनां शक्त्यात्मना तदानीमपि सत्त्वात्कथं नो सदासीदिति सत्त्वनिषेध इति वाच्यम्, तत्र पारमार्थिकसत्त्वस्यैव निषेधविषयत्वात्।"

"यद्यपि सृष्टिदशामें भी माया अनिर्वाच्य ही मानी जाती है, तथापि इस तथ्यको सरलतासे समझानेके लिये यहाँ बताया गया

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है कि उस प्रलयावस्थामें भी वह अनिर्वाच्या ही रहती है। यदि यह पूछा जाय कि व्यावहारिकसत्तावाले पदार्थोंकी शक्तिरूपमें स्थिति प्रलयावस्थामें भी मानी जाती है, तब उनकी सत्ताका निषेध कैसे किया जाता है? तो इसका उत्तर यह है कि वहाँ उनकी पारमार्थिक-सत्ताका ही निषेध किया गया है।''

● **व्याख्येय :– 'नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्'** = 'भुवर् (अन्तरिक्ष) सहित नीचे और ऊपरके लोक नहीं थे अर्थात् चतुर्दश भुवनात्मकब्रह्माण्ड नहीं था।'

● **सायणभाष्यम् – एवमपि तदानीमिति विशेषणानर्थक्यं व्यवहारदशायामपि तस्याः पारमार्थिकसत्त्वाभावात्। अथ व्यावहारिकसत्तां पृथिव्यादीनां भावानां विद्यमानत्वात्कथं नो सदिति निषेधः। तत्राह-नासीद्रज इत्यादि। 'लोका रजांस्युच्यन्ते'** (निरुक्तम् ४.१९) **इति यास्कः। अत्र च सामान्यापेक्षमेकवचनम्। व्योम्नो वक्ष्यमाणत्वात्तस्याधस्तनाः पातालादयः पृथिव्यन्ता नासन्नित्यर्थः। तथा व्योमान्तरिक्षं तदपि नो नैवासीत्। पर इति सकारान्तं परस्तादित्यर्थे वर्तते। परशब्दाच्छान्दसोऽस्तातेरर्थेऽसि-प्रत्ययः। परो व्योम्नःपरस्तादुपरिदेशे द्युलोकप्रभृतिसत्यलोकान्तं यदस्ति तदपि नासीदित्यर्थः। अनेन चतुर्दशभुवनगर्भं ब्रह्माण्डं स्वरूपेण निषिद्धं भवति।'**

● **व्याख्या** – ''· **'नो सदासीत्तदानीम्'** में श्रुतिने जो **'तदानीम्'** विशेषणका प्रयोग किया है, वह उपयुक्त नहीं है; क्योंकि मायाकी अनिर्वचनीयता सर्गदशामें भी मान्य है तथा आत्मातिरिक्तोंके परमार्थसत्त्वका निषेध तो सर्ग, स्थिति, प्रलय तीनों दशाओंमें तुल्य ही है। पृथिव्यादि सर्ग और स्थितिदशामें भी व्यावहारिक सत्य ही हैं, न कि वास्तव सत्य। ऐसी स्थितिमें उनकी विद्यमानताका निषेध नहीं होता, केवल पारमार्थिक सत्ताका ही निषेध होता है।'' ऐसी आशंका प्राप्त होनेपर श्रुति पृथिवी आदिकी प्रलयदशामें विद्यमानताका निषेध करनेके लिये कहती है– **'नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्'**।

'रजः' इस एकवचनका प्रयोग जातिकी अपेक्षासे है। **'लोका रजांस्युच्यन्ते'** (निरुक्तम ४.१९) इस यास्कोक्तिसे यह सिद्ध है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कि 'रजः' पदका प्रयोग वेदोंमें 'लोक'के लिये होता है। **'रजः कर्मणि भारत'** (भगवद्गीता १४.९), **'रजो रागात्मकं विद्धि'** (भगवद्गीता १४.७) के अनुसार रजोगुण रागात्मक है और कर्मोमिं संलग्न रखता है। रजस् उपष्टम्भात्मक होनेसे राग और कर्ममें हेतु है। कर्मफलात्मक होनेसे दार्शनिकदृष्टिसे भी लोकोंको रजस् कहना उपयुक्त है। **'रजः कर्मणि'** (भगवद्गीता १४.९) के अनुसार जहाँ रजोगुण कर्मोमिं संलग्न करता है, वहाँ **'सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते।'** (भागवते ११.२२.१२, १३) के अनुसार रजोगुण उत्पत्तिमें हेतु है और कर्मात्मक हैं। महाप्रलयमें किसी एक गुणकी प्रधानता न होनेके कारण रजस् नहीं था। आकाशमें स्थित असंख्यों रजस्तुल्य लोकोंकी आत्मामें अवस्थिति होनेके कारण भी लोकोंको 'रजस्' कहना उपयुक्त है। रजोरूप कार्यात्मक विकारसे विरहित होकर ही अनिर्वचनीया माया उस समय ब्रह्माश्रिता थी।

व्यावहारिक सत्य पृथ्वी आदि लोक भी उस समय नहीं थे। व्योमपदका प्रयोग अन्तरिक्षके लिये हुआ है। पृथ्वी (भूः) और उसके नीचेके अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल लोक जहाँ नहीं थे; वहाँ 'भुवः' (अन्तरिक्ष) और उसके ऊपरके लोक स्वः, महः, जनः, सत्यम् भी नहीं थे। अभिप्राय यह है कि चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड उस समय कारणरूपसे ही शेष था, स्वतः नहीं था।

● **व्याख्येय :– 'किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्'** = आवार्य (ढकनेयोग्य) के अभावमें आवारक (ढकनेवाला) नहीं था। आवारकको आवरण करनेके लिये आश्रय देनेवाला देश भी उस समय नहीं था, जिसमें स्थितिलाभकर वह आवार्यको आवृत करता और न रसोपभोक्ता जीव ही उस समय था, जिसे भोग देनेके लिये आच्छादक पदार्थ सावरणरसको निरावरण करनेके लिये प्रस्तुत करता।

● **सायणभाष्यम् – अथ तदावरकत्वेन पुराणेषु प्रसिद्धानि यानि वियदादिभूतानि तेषामवस्थानप्रदेशं तदावरणनिमित्तं चाक्षेपमुखेन क्रमेण निषेधयति**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किमावरीवरिति। किमावरणीयं तत्त्वमावरकभूतजातमावरीवः। अत्यन्तमावृणुयात्। आवर्याभावात्तदावरकमपि नासीदित्यर्थः। वृणोतेर्यङ्लुगन्ताच्छांदसे लङि तिपि रूपमेतत्। यद्वा किमिति प्रथमैव। किं तत्त्वमावरकमावृणुयात्? आवर्याभावादाव्रियमाणवत्तदपि स्वरूपेण नासीदित्यर्थः। आवृण्वत्तत्त्वं कुह कुत्र देशेऽवस्थायावृणोति। आधारभूतस्तादृशो देशोऽपि नासीदित्यर्थः। किं शब्दात्सप्तम्यर्थे हप्रत्ययः। 'कु तिहोः' (पा० ७.२.१०४)। इति प्रकृतेः क्वादेशः। कस्य शर्मन् कस्य वा भोक्तुर्जीवस्य शर्मणि सुखदुःखसाक्षात्कारलक्षणे निमित्तभूते भोगे सति तदावरकं तत्त्वमावृणुयात्। जीवानामुपभोगार्था हि सृष्टिः। तस्यां हि सत्यां ब्रह्माण्डस्य भूतैरावरणं प्रलयदशायां च भोक्तारो जीवा उपाधिविलयात्प्रलीना इति कस्य कश्चिदपि भोक्ता न संभवतीत्यावरणस्य निमित्ताभावादपि तन्न घटत इत्यर्थः। एतेन भोग्यप्रपञ्चवद् भोक्तृप्रपञ्चोऽपि तदानीं नासीदित्युक्तं भवति॥ किं शब्दादुत्तरस्य ङसः 'सावेकाचः' इति प्राप्तस्योदात्तत्वस्य 'न गोश्वन्त्साववर्ण०' इति प्रतिषेधः। सुपां सुलुगिति शर्मणः सप्तम्या लुक्॥

● **व्याख्या**— उस समय न कुछ आवरण करनेवाला था और न आवरण करने योग्य ही था। सृष्टिदशामें ब्रह्माण्डको भूत आवृत करते हैं। प्रलयावस्थामें कौन किसको कहाँ रहकर आवरण करते? सबका आधारभूत देश भी तो उस समय नहीं था। जिन जीवोंके कर्मानुसार सुख-दुःखसाक्षात्काररूप भोग देनेके लिये सृष्टिकी उत्पत्ति और स्थिति होती है, वे जीव और निमित्त भी तो उस समय नहीं थे! प्रलयदशामें उपाधिका विलय हो जानेके कारण भोक्ता जीव भी लयदशाको प्राप्त हो जाता है; अतः किसी भोग्यका भोग करनेके लिये किसी भोक्ताका होना सम्भव नहीं था। निमित्तका अभाव हो जानेके कारण भी उस समय भोग्यप्रपञ्चके समान भोक्तृप्रपञ्च नहीं था॥

चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्डके ऊपर क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशके आवरणोंका विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवतादिमें उल्लेख है। श्रीमद्भागवतके अनुसार परमात्मासे अव्यक्त, (परमात्मासे अधिष्ठित) अव्यक्तसे महत्, अहम्, मन, दशविध इन्द्रिय, शब्दादि पञ्चतन्मात्राएँ और आकाशादि पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए। उक्त चौबीस तत्त्वोंसे एक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अण्ड उत्पन्न हुआ। उससे विराट् पुरुषकी अभिव्यक्ति हुई। उस अण्डका नाम विशेष है। उसीके अन्तर्गत श्रीहरिके स्वरूपभूत चौदहों भुवनोंका विस्तार है। वह चारों ओरसे क्रमशः एक-दूसरेसे जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार और महत्तत्त्व इन छः आवरणोंसे घिरा हुआ है। इन सबके बाहर सातवाँ आवरण प्रकृतिका है। प्रकृतिसे महत्तत्त्व आवृत है। महत्तत्त्वसे दशगुणी अधिक प्रकृति है। महत्तत्त्वसे अहम् आवृत है। अहम्से दशगुण अधिक महत्तत्त्व है। अहम्से शब्दतन्मात्रात्मक आकाश आवृत है। आकाशसे दशगुण अधिक अहम् व्यापक है। आकाशसे स्पर्शतन्मात्रात्मक वायु आवृत है। वायुसे दशगुण अधिक आकाश व्यापक है। वायुसे रूपतन्मात्रात्मक तेज आवृत है। तेजसे दशगुण अधिक वायु व्यापक है। तेजसे रसतन्मात्रात्मक जल आवृत है। जलसे दशगुण अधिक तेज व्यापक है। जलसे गन्धतन्मात्रात्मिका पृथ्वी आवृत है। पृथ्वीसे दशगुण अधिक जल व्यापक है। इस प्रकार आरोहक्रमसे पूर्व-पूर्व तत्त्व व्याप्य और आवृत हैं तथा उत्तर-उत्तर तत्त्व व्यापक और आवरक हैं। जैसे नारिकेलके फलका भीतरी बीज बाहरसे कितने ही छिलकोंसे ढका रहता है, वैसे ही यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणोंसे घिरा हुआ है—

''एतदण्डं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः।
तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः।
यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः॥''

(श्रीमद्भागवते ३.२६.५२)

''क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः।''

(श्रीमद्भागवते ६.१६.३७)

''वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः।
वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा॥
अव्यक्तेनावृतो ब्रह्मंस्तैः सर्वैः सहितो महान्।
एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम्।
नारिकेलफलस्यान्तर्बीजं बाह्यदलैरिव॥''

(विष्णुपुराणे १.२.५९, ६०)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यान रहे, श्रीमद्भागवतके अनुशीलनसे जहाँ जलमे अव्यक्त (प्रधान, प्रकृति) - पर्यन्त अथ वा पृथ्वीसे महत्-पर्यन्त सप्तावरणका पोषण प्राप्त होता है, वहाँ पृथ्वी सहित अव्यक्तपर्यन्त अष्टावरणका भी। जिस प्रकार जल पृथ्वीका आवरक है, उसी प्रकार पृथ्वी ब्रह्माण्डका आवरण करनेवाली है तथा प्रकृति महत्का आवरण करनेवाली है। अण्डको ब्रह्माण्ड इसलिये कहते हैं; क्योंकि अष्टावरणपरिवेष्टित अण्ड ब्रह्माका शरीर है।

''एतद् भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया।
महाद्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम्॥''

(भागवते २.१०.३३)

अष्टावरणका पोषक श्रीब्रह्माजीका मार्मिक वचन है—

''क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू-
संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम्॥''

(श्रीमद्भागवते १०.१४.११)

''हे प्रभो! प्रकृति, महत्, अहम्, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीरूप अष्टावरणोंसे घिरा हुआ यह ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है। आपके एक-एक रोमछिद्रमें ऐसे-ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड उसी प्रकार उडते-पड़ते रहते हैं, जैसे झरोखेकी जालीसे आनेवाली सूर्यकी किरणोंमें रजके छोटे-छोटे परमाणु उड़ते हुए दिखायी पड़ते हैं। कहाँ अपने परिमाणमें साढ़े तीन हाथके शरीरवाला अत्यन्त क्षुद्र मैं और कहाँ आपकी अनन्त महिमा!।''

पञ्चदशीकार श्रीमद्विद्यारण्यमहाभागने आवरणोंको पुराणोक्तरीतिसे स्वीकार किया है—

''भूमेर्दशांशतो न्यूनं ब्रह्माण्डं भूमिमध्यगम्॥
ब्रह्माण्डमध्ये तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश।
भुवनेषु वसन्त्येषु प्राणिदेहा यथायथम्॥''

(पञ्चदशी २.९५, ९६)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुराणोंमें अष्टधा प्रकृति (सात प्रकृति-विकृति और एक प्रकृति) को अष्टावरणके रूपमें स्वीकार किया गया है। ये आवरक आवरण हैं। पञ्चदर्शीमें षष्ठावरणोंका ही उल्लेख है। प्रकृति, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये आवरक पदार्थ ब्रह्माण्डके मूलभूत उपादान हैं। **'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'** (श्वेताश्वतरोपनिषत् ४.१०) के अनुसार प्रकृतिका उल्लेख मायाके रूपमें पञ्चदर्शीके प्रथम प्रकरणमें हुआ है। तैत्तिरीयोपनिषत्के अनुसार तथा **'वायुः प्रलीयते व्योम्नि तदव्यक्ते प्रलीयते'** आदि स्मृतियोंके अनुसार माया और आकाशके मध्य महत् और अहम्का उल्लेख नहीं हुआ है। महाप्रलयमें प्रकृति या माया शेष रहती है, अतः पञ्चभूतरूप आवरणका ही निषेध उस समय मान्य होता है। इसी अभिप्रायसे भाष्यकार महोदयने 'वियदादि भूतानि' लिखकर पञ्चावरणका निषेध किया है। श्वेताश्वतरके अनुसार मायाकी और तैत्तिरीयके अनुसार पञ्चभूतोंकी स्वीकृति प्राप्त है। छान्दोग्यशैलीमें वाक्, प्राण और मनसे उपलक्षित सूक्ष्मशरीर भौतिक सिद्ध होता है। वाक् कर्मेन्द्रियोंका और ज्ञानेन्द्रियोंका उपलक्षण है। वाक् और प्राणके योगसे प्राणमयकी सिद्धि होती है। 'मन'– **'केनेषितं पतति प्रेषितं मनः'** (केनोपनिषत् १.१) की शैलीमें अन्तःकरणका द्योतक होता है। तैत्तिरीयशैलीमें अन्तःकरणके मन और बुद्धि दो विभाग सिद्ध होते हैं। उनमें मनको लेकर मनोमयकोश और बुद्धिको लेकर विज्ञानमयकोशकी सिद्धि होती है। विज्ञानमयकोशमें ही पुराणोक्त अहम् और महत्का अन्तर्भाव हो जाता है। क्योंकि सूक्ष्मदेह छान्दोग्यशैलीमें भौतिक है; अतः अपञ्चीकृत पञ्चभूतों (सूक्ष्म भूतों या शब्दादि पञ्चतन्मात्राओं) से वर या पर अहम् और महत् इस प्रस्थानमें अमान्य हैं। यही कारण है कि आरोहक्रमसे छठे और सातवें आवरणके रूपमें अहम् और महत्की मान्यता यहाँ नहीं है। विवर्तवादकी सिद्धिके लिये ब्रह्म और जगत्के बीचमें ब्रह्माश्रिता (सदाश्रिता) मायाशक्ति अवश्य मान्य है। भूतका अर्थ तत्त्व करना उपयुक्त है।

अथ वा देहलीदीपन्यायसे वियदादि कहनेपर वियत् (आकाश) से अवर वायु आदि और वर अहम् आदिका ग्रहण हो जाता है।

अन्तिम आवार्य चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड महाप्रलयमें नहीं होता। पृथ्वीसे महत् - पर्यन्त प्रकृति-विकृतिरूप आवारक-आवार्य भी नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होते। ऐसी स्थितिमें अव्यक्त (माया, प्रकृति) अवशिष्ट रहनेपर भी उसकी आवरकसंज्ञा नहीं होती। 'आवर्यके अभावमें आवरक नहीं' इस कथनका अभिप्राय यह है कि 'कार्यकोटिका आवरक नहीं'; अथवा आरोहक्रमसे चरम आवर्य (ढकनेयोग्य) वियत् या महत्के अभावमें मायाकी आवरकसंज्ञा नहीं; वह उस समय कार्य-प्रपञ्चपर कारगर नहीं। मायाका आश्रय और विषय ब्रह्मातिरिक्त उस समय कोई नहीं। कार्यप्रपञ्चको मायासे समावृत कहने (३) का भी यही अभिप्राय है कि आवर्य पृथिव्यादि चतुर्दशभुवनगर्भ ब्रह्माण्डके तुल्य आवरक पृथिव्यादि महत्तत्त्वपर्यन्त उपादानात्मक तत्त्व भी कार्यकोटिके होनेसे महाप्रलयमें ब्रह्माधिष्ठिता मायारूपसे ही अवशिष्ट थे।

'आभूषणरूप आवर्यके न रहनेपर सुवर्णरूप आवरक नहीं रहता, यह कोई नियम तो नहीं' ऐसी आशङ्का न हो, इसलिये ऐसा अर्थ करना भी उपयुक्त है कि वह आवरक तत्त्व कौन था जो कि आवरण करता, कोई भी तो नहीं। कार्यकी अपेक्षा कारणमें निर्विशेषता, सूक्ष्मता, शुद्धता और विभुता अधिक होती है, यही कारण है कि कार्य आवर्य और कारण आवारक बन जाता है। कारणके बोधमें प्रतिबन्धक होनेसे कार्य आवरक माना जाता है, जैसे मृद्घट मृत्तिकादर्शनमें प्रतिबन्धक होनेसे आच्छादक मान्य है। कारण कार्यमें अनुगत होनेसे आच्छादक मान्य है, जैसे मृत्तिका अपनी व्याप्ति (अनुगति) से घटादिका आच्छादन करती है। **'ईशा वास्यमिदं सर्वम्'** (ईशा० १) की सहिष्णुता व्यक्त करनेके लिये कारणसे कार्यको आच्छादित बनाना उपयुक्त है। ध्यान रहे, जो जिसके ज्ञानसे विलीन होता है, वह उसका आवार्य (आच्छाद्य) होता है। जिसके ज्ञानसे जिसका विलय होता है, वह उसका आवारक (आच्छादक) होता है। मायाकार्य, माया और माया तथा शिवात्मसम्बन्धरूप काल शिवात्मतत्त्वके ज्ञानसे विलीन (बाधित) होते हैं। यही कारण है कि मायाकार्य, माया और कालको शिवसे समावृत माना गया है। जिस प्रकार काल कालसे अनवच्छिन्न है अर्थात् कवलित होनेवाला नहीं है; उसी प्रकार शिवात्मतत्त्व कालसे अनवच्छिन्न है, अर्थात् कवलित होनेवाला नहीं है। ऐसा होनेपर भी स्वप्रकाश शिवात्मतत्त्व सत्य होनेसे विलीन नहीं होता, जबकि काल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्वप्रकाश अत एव असत्य होनेसे मायाके साथ विलीन होता है। शिवतत्त्व जहाँ शिवात्ममायासम्बन्धरूप कालसामान्यसे अनवच्छिन्न है, वहाँ त्रिकालगर्भित जगत्को कवलित करनेवाला कालविशेषसे भी अनवच्छिन्न है—

''कालो माया च तत्कार्यं शिवेनैवाऽऽवृतं बुधाः।
शिवः कालानवच्छिन्नः कालतत्त्वं यथा तथा॥
तथापि कालोऽसत्यत्वान्मायया सह लीयते।
शिवो न विलयं याति द्विजाः सत्यस्वभावतः॥
उत्पन्नानां प्रनष्टानामुत्पाद्यानां तथैव च।
शिवः कालानवच्छिनः कारणं त्विति कीर्तितः॥''

(सूतसंहितायाम् १ शिवमाहात्म्यखण्डे ८.२४-२६)

ऐसा माननेपर **'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'** (छान्दोग्य ६.१.४) की शैलीमें कार्यके मिथ्यात्वनिश्चयका मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है। कार्य और कारणमें आवार्य-आवारकभाव मान लेनेपर दुग्धदधिन्यायसे कारणका कार्यके रूपमें परिणत होकर सर्वथा लोपरूप परिणामवाद शिथिल हो जाता है और विवर्तवाद जागरूक हो जाता है।

किसी कार्यकी विद्यमानता मानते ही काल और देशकी अभिमति (स्वीकृति) आवश्यक हो जाती है। उदाहरणार्थ लेखनी है तो 'अब है' और 'यहाँ' या 'वहाँ है' बताना आवश्यक हो जाता है। 'अब' के रूपमें कालका और 'यहाँ' या 'वहाँ' के रूपमें देशका स्फुरण होता है।

न्यायभूषणकार दिक्कालका अन्तर्भाव ईश्वरमें ही करते हैं– **'दिक्कालयोरीश्वरेण गतार्थता'**। वे समस्त कार्योंके निमित्तकारण ईश्वरातिरिक्त दिक्कालको पृथक् द्रव्य नहीं मानते।

श्रीमधुसूदनसरस्वती महाभाग 'आकाशातिरिक्त दिक् है', ऐसा नहीं मानते और 'ईश्वरातिरिक्त काल है' ऐसा नहीं मानते। कदाचित् ईश्वरातिरिक्त दिक् और कालको मानते हैं तो उपाधिविशेषप्रवृत्तिनिमित्तक होनेसे शब्दप्रवृत्तिके जातिरूप निमित्तसे युक्त ही **'आकाशातिरिक्ता च दिङ्नास्त्येव, कालश्च नेश्वरादतिरिच्यते, अतिरिक्ते वा दिक्कालशब्दा-**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वप्युपाधिविशेषप्रवृत्तिनिमित्तिकाविति जातिशब्दावेव।' (मधुसूदनगीता १३.१२)

सांख्यवादी दिक्का प्रदेशमें और कालका क्षणरूप उपाधिमें अन्तर्भाव मानते हैं।

यहाँ श्रुतिने **'कुह'** (कुत्र) = **कहाँ,** कहकर देशका उल्लेख किया है और उसका प्रलयमें वारणकर यह सिद्ध किया है कि मायातिरिक्त कोई ऐसा देश भी नहीं था, जिसमें अवस्थिति लाभकर आवरक पदार्थ आवर्यका आवरण करता। आकाशको प्रथम कार्य मानकर जिस प्रकार उसमें देशका अन्तर्भाव श्रीमधुसूदनसरस्वती महाभागने किया है, उसी प्रकार महत्को प्रथमकार्य माना जाय तो उसीको देश माना जा सकता है। जैसे आकाश आकाशरूप देशमें ही अवस्थिति लाभकर वायुको आवृत करता है, वैसे ही महत् महद्रूप देशमें ही अवस्थिति लाभकर अहम्को आवृत करता है।

कहा जा सकता है कि जब सर्गदशामें भी माया, अव्याकृत, अव्यक्त या प्रकृतिका सत्त्व है ही, तब आकाशरूप प्रथम कार्य या महद्रूप प्रथमकार्य मायारूप आश्रयमें स्थितिलाभकर वायु या अहम्को आवृत करता है अथवा माया अपनेमें ही स्थिति लाभकर आकाश या महत्को आवृत करती है; ऐसा माननेमें क्या आपत्ति है?

इस आक्षेपका उत्तर यह है कि महाप्रलयमें आकाश या महत्पर्यन्त आवर्यका अभाव होनेसे ही मायाकी विद्यमानता **'यथेमेऽविकृता भावाः'** (श्रीमद्भागवते १०.३.१५) = **'इमेऽविकृता भावा महदादयो यथा तथेति'** (श्रीधरी) = **'महदादयः सप्त महदहङ्कारपञ्चतन्मात्रारूपाः'** (श्रीवंशीधरी) इस न्यायसे होनेपर भी उसकी देशसंज्ञा प्रतिषिद्ध मानी जाती है।

अभिप्राय यह है कि कार्योत्पादन कारणध्वंसपूर्वक सांख्यपक्षमें अमान्य है। पूर्व-पूर्व उपादानके योगसे ही उत्तरोत्तर उपादान कार्योत्पादनमें समर्थ है। बुद्ध्यादि (महदादि) स्वतन्त्र नहीं हैं। बुद्धिको अहङ्कारात्मक कार्य पैदा करनेमें प्रकृतिकी सहायताकी अपेक्षा रहती है। त्रिगुणात्मिका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकृतिकी सहायतासे महत् अहङ्कारको उत्पन्न करता है। बुद्धिको उर्ज्जावित रखनेमें प्रकृतिकी विद्यमानता हेतु है। इसी प्रकार अहङ्कारादि भी अपने तन्मात्रा, इन्द्रियादि कार्योंको व्यक्त करनेमें बुद्ध्यादिकी अपेक्षा रखते हैं—

"बुद्ध्या स्वकार्येऽहङ्कारे जनयितव्ये प्रकृत्या पूरोऽपेक्ष्यते, अन्यथा क्षीणा सती नालमहङ्कारं जनयितुमिति स्थितिः। एवमहङ्कारादिभिरपि स्वकार्यजनने। इति सर्व स्वकार्येषु प्रकृत्यापूरमपेक्षते। तेन परां प्रकृतिमपेक्षमाणं कारणमपि स्वकार्यजनने परतन्त्रं व्यक्तम्॥"

(सांख्यतत्त्वकौमुदी १०)

इस प्रकार मायासे पृथ्वी (गन्धतन्मात्रा) पर्यन्त अष्टधा प्रकृतियोंकी विद्यमानता सर्गदशामें (संसारदशामें) मान्य है। ऐसी दशामें माया (प्रकृति) की देशसंज्ञा अमान्य है, न कि उसका सत्त्व।

'कार्योत्पत्तेःपुरा शक्तिर्निगूढा मृद्यवस्थिता।
कुलालादिसहायेन विकाराकारतां व्रजेत्॥'

(पञ्चदशी १३.३२)

'अव्यक्तत्वे शक्तिरुक्ता व्यक्तत्वे घटनामभृत्॥' (१३.३६) = "कार्योत्पित्तिसे पूर्व जिसकी शक्ति संज्ञा होती है, कालान्तरमें उसीकी कार्यसंज्ञा होती है। शक्ति अव्यक्त और कार्य व्यक्त है। दोनोंकी सहस्थिति अमान्य है॥" अथवा न्यायभूषणके अनुसार ईश्वरको ही देश मानकर प्रथमकार्य 'आकाश' या 'महत्' ईश्वररूप देशमें अवस्थिति लाभकर वायु या अहम्को आवृत कर सकता है। प्रलयदशामें तो आकाशादि कार्योंका ही अभाव होता है। अथवा **'तदैक्षत', तत्तेज ऐक्षत', 'ता आप ऐक्षन्त'** (छा० ६.२.३, ४) की शैलीमें सद्भावापन्न देश, कालसे अधिष्ठित ही माया, महत् या आकाशादिरूप कोई भी अनात्मप्रपञ्च किसीका उत्पादक और आच्छादक हो सकता है।

यह नामरूपात्मकप्रपञ्च जीवोंके उपभोगके लिये है। प्रकृति और प्रपञ्चकी परार्थ सत्ता है। **'पर'** पुरुष है। उसीके लिये प्रकृति भोग्यप्रपञ्चको प्रस्तुत करती है। सुख-दुःखसाक्षात्काररूप भोग तभी संभव है, जब जीव कार्य, करण (देहेन्द्रियादि)-संघातयुक्त हो। **'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' (कठोपनिषत् १.३.४) कार्य-करणकी विद्यमानतामें जब सुषुप्ति भी नहीं सधती, तब महाप्रलय कैसे सध सकता है? भोगके लिये कर्मरूप निमित्त चाहिये। महाप्रलयदशामें कर्म भी फलित नहीं होता। कर्म करनेकेलिये भी देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, कर्मानुकूल चेष्टा और अनुग्राहक अधिदैवमण्डल चाहिये। जब सुषुप्तिमें ही इन सबकी अविद्यमानता रहती है, तब महाप्रलयमें इनकी विद्यमानता भला कैसे सध सकती है?

"अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवञ्चैवात्र पञ्चमम्॥"
(भगवद्गीता १८.१४)

इस प्रकार कर्म, भोग, करण, भोग्यके विना जीवकी विद्यमानता प्रलयमें असङ्गत है। अभिव्यञ्जक और अवच्छेदक उपाधिके विना जीवभावकी अभिव्यक्ति असङ्गत है। साधिष्ठान, सबुद्धि चिदाभास जीव है। अथ वा बुद्ध्यवच्छिन्न चिदात्मा जीव है। दोनों ही दशाओंमें विना बुद्धिके जीवभावकी सिद्धि असङ्गत है।

"कूटस्थे कल्पिता बुद्धिस्तत्र चित्प्रतिबिम्बकः।
प्राणानां धारणाज्जीवः संसारेण स युज्यते॥
(पञ्चदशी ६.२३)

"भ्रमाधिष्ठानभूतात्मा कूटस्थासङ्गचिद्वपुः।
अन्योन्याध्यासतोऽसङ्गधीस्थजीवोऽत्र पूरुषः॥"
"साधिष्ठानो विमोक्षादौ जीवोऽधिक्रियते न तु।
केवलो निरधिष्ठानविभ्रान्तेः क्वाप्यसिद्धितः॥"
(पञ्चदशी ७.५, ६)

"लिङ्गदेहेन संयुतम्, चितिच्छायासमावेशाज्जीवः स्याद् व्यावहारिकः" (सरस्वतीरहस्योपनिषत् १६, २०), **'अन्तःकरणसम्भिन्नबोधः स त्वंपदाभिधः।'** (अध्यात्मोपनिषत् ३१)

'जीव अविद्योपाधिक है', ऐसा माननेपर भी मलिनसत्त्वात्मिका प्रकृति जिसे पञ्चदशीकारने अविद्या स्वीकार किया है, वह गुणक्षोभके पश्चात्प्रादुर्भूत तत्त्वान्तरपरिणामशून्य किन्तु कार्यकल्प अर्थात् कार्यकोटिकी है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मूलप्रकृतिको अविद्या या माया मानें तब तो महाप्रलयमें ईश्वरनिष्ठस्रष्टृत्व और जीवनिष्ठभोक्तृत्वकी सिद्धि नहीं होती, दोनोंकी बीजावस्था ही सिद्ध होती है।

माया (प्रधान) के प्रतिपादक श्लोकको श्रुतिमर्मज्ञ (नासदीयसूक्तके जानकार) श्रीविष्णुपुराणके अनुसार इस प्रकार पढ़ते हैं–

''वेदवाददिवदो विद्वन्नियता ब्रह्मवादिनः।
पठन्ति चैतमेवार्थं प्रधानप्रतिपादकम्॥''
''नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमिर्नासीत्तमो ज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्॥''
(श्रीविष्णुपुराणे १.२.२२, २३)

''उस समय न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथ्वी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था और न इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदिका अविषय एक प्राधानिक ब्रह्म पुरुष अर्थात् मायाश्रय पूर्णब्रह्म ही था॥''

ध्यान रहे, पुराणोंमें सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था-प्रलय, हेतु-ऊति, अपाश्रयरूप दशविध लक्षणोंमें 'हेतु' नामसे जिसका व्यवहार होता है, वह जीव ही है। वही सर्ग, विसर्ग आदिका हेतु है। वह अविद्यावश अनेकों प्रकारके कर्म-कलापोंमें उलझा रहता है। जो लोग उसे चित्प्रधानदृष्टिसे देखते हैं, वे उसे 'अनुशयी' (प्रकृतिमें शयन करनेवाला) कहते हैं और जो उपाधिप्रधान-दृष्टिसे देखते हैं, वे उसे अव्याकृत (अव्यक्त, प्रकृति) कहते हैं–

''हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः।
यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे॥''
(श्रीमद्भागवते १२.७.१८)

● **व्याख्येय :– 'अम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्'** = 'क्या उस समय दुष्प्रवेश और अत्यन्त अगाध जल था? नहीं, नहीं। जल तो केवल अवान्तर प्रलयमें ही रहता है, महाप्रलयमें उसका रहना सम्भव नहीं।'

● **सायणभाष्यम्– यद्यपि सावरणस्य ब्रह्माण्डस्य निषेधेन**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदन्तर्गतमप्सत्त्वमपि निराकृतं तथापि 'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्' (तै० सं० ७.१.५.१) इत्यादिश्रुत्या कश्चिदपां सद्भावमाशङ्केत, तं प्रत्याचष्टेऽम्भः किमासीदिति। गहनं दुष्प्रवेशं गभीरं दुःखस्थानमत्यगाधम् ईदृशमम्भः किमासीत्? तदपि नैवासीदित्यर्थः। श्रुतिस्त्ववान्तर-प्रलयविषया ॥१॥

● **व्याख्या** – **"आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्"** (तै० सं० ७.१.५.१), **'अपो वा इदमासीत्सलिलमेव'** (बृहज्जाबालोपनिषत् १) आदि स्थलोंमें प्रलयदशामें जलका अस्तित्व माना गया है। पुराणोक्तप्रक्रियाके अनुसार प्रलयार्णवकी प्रसिद्धि भी है।

श्रीमद्भागवतमें ब्राह्मनैमित्तिक प्रलयका वर्णन है। श्रीब्रह्माजीके शयनकालमें भूः, भुवः, स्वः – ये तीनों लोक समुद्रमग्न हो जाते हैं। हयग्रीव नामक दैत्य प्रलयार्णवमें सोते समय ब्रह्माजीके मुखसे निर्गत वेदको योगबलसे चुरा लेता है। मत्स्यावतार श्रीहरि वेदापहारी हयग्रीव नामक असुरको मारकर प्रलयान्तमें सोकर जगे हुए ब्रह्माजीको वेद सौंप देते हैं। यों तो भगवान् सबके एकमात्र प्रभु हैं, फिर भी वे गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षाके लिये शरीर धारण किया करते हैं–

"आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः।
समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप॥" ७॥
"कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली।
मुखतो निःसृतान् वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत्॥" ८॥
"ज्ञात्वा तद् दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम्।
दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः॥" ९॥
"नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम्॥" २७॥
"इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः
सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये।
विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवी-
च्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियः प्रियम्॥" ३१॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

''सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिन्दम।
निमङ्क्ष्यत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम्॥'' ३२॥
''अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे।
हत्वासुरं हयग्रीवं वेदान् प्रत्याहरद्धरिः॥'' ५७॥
''गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि॥'' ५॥
(श्रीमद्भागवते ८.२४)

प्रलयके चार भेद हैं – नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। तत्त्वज्ञ विद्वानोंने इन्हींको 'संस्था' कहा है —

''नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः॥''
(श्रीमद्भागवते १२.७.१७)

''नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः।
आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी॥''
(श्रीमद्भागवते १२.४.३८)

''प्रकृतौ तत्कार्यब्रह्माण्डस्य लयः प्राकृतिकः। ब्रह्मणो निद्रां निमित्तीकृत्य जायमानो लोकत्रयप्रलयो नैमित्तिकः। देहस्य प्रतिक्षणमवस्थाभेदेन वर्तमानो यः स नित्यः। ज्ञानेनाविद्यां सकार्यां छित्त्वा स्वरूपेणावस्थानमात्यन्तिक इति विवेकः।'' (वंशीधरी १०.१.१)

''नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको द्विज।
नित्यश्च सर्वभूतानां प्रलयोऽयं चतुर्विधः॥
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तत्र शेतेऽयं जगतीपतिः।
प्रयाति प्राकृते चैव ब्रह्माण्डं प्रकृतौ लयम्॥
ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनःपरमात्मनि।
नित्यःसदैव भूतानां यो विनाशो दिवानिशम्॥''
(विष्णुपुराणे १.७.४१-४३)

सूक्ष्मदर्शी तत्त्वज्ञोंकी दृष्टिमें ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त जितने प्राणी हैं, वे नित्य (हर समय) उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। पूर्वावस्थाका त्यागकर उत्तरावस्थाको प्राप्त होते रहना ही प्रतिक्षण मरते और जन्मते रहना है। उत्तर नवीन अवस्थाकी प्राप्ति जन्म और पूर्वावस्थाका वियोग नाश है।

कालयोगसे प्रत्येक सावयवपदार्थ प्रतिक्षण परिवर्तनशील है, भले ही वह स्वरूपसे क्षणिक न हो, परन्तु विक्रियायुक्त तो है ही। इसीका नाम **'नित्यप्रलय'** है।

सहस्र चतुर्युगी ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्माके इस दिनको ही कल्प कहते हैं। एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं। कल्पान्तमें उतने ही समय तक प्रलय रहता है। इसीको ब्राह्मीरात्रि कहते हैं। उस समय ये तीनों लोक लीन हो जाते हैं (इनका प्रलय हो जाता है)। इसका नाम **'नैमित्तिकप्रलय'** है। इस प्रलयके अवसरपर संपूर्ण विश्वको अपने अन्दर समेटकर ब्रह्मा और तत्पश्चात् शेषशायी भगवान् विष्णु अथवा नारायणस्वरूप ब्रह्मा शयन कर जाते हैं। ब्राह्मप्रलयके समय भूर्लोक, भुवोलोक और स्वर्लोक जलने लगते हैं। महर्लोकमें रहनेवाले सिद्धगण अतिसन्तप्त होकर जनोलोकमें चले जाते हैं। इस प्रकार त्रिलोकीके जलमग्न (जलमय) हो जानेपर एकार्णवके शेष रहनेपर नारायणात्मक ब्रह्मा त्रिलोकीके ग्राससे तृप्त होकर सहस्रचतुर्युगीकी अवधिवाली रात्रिमें शेषशय्यापर शयन करते हैं। अभिप्राय यह है कि ब्रह्मा विष्णुभावापन्न होकर शेषशायी होते हैं अथवा शेषशायी पद्मनाभ भगवान्के नाभिकमलपर शयन करनेके कारण परम्परासम्बन्धसे शेषशायी होते हैं अथवा एकार्णवरूप शेषपर शयन करनेके कारण ब्रह्मा शेषशायी होते हैं—

"ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसञ्चरः ॥
तदा हि दह्यते सर्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ।
जनं प्रयान्ति तापार्ता महर्लोकनिवासिनः ॥
एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
भोगिशय्यां गतः शेते त्रैलोक्यग्रासबृंहितः ॥
जनस्थैर्योगिभिर्देवश्चिन्त्यमानोऽब्जसम्भवः ।
तत्प्रमाणां हि तां रात्रिं तदन्ते सृजते पुनः ॥"

(विष्णुपुराणे १.३.२२-२५)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जहाँ रुद्ररूपसे भगवान विष्णु ही तमोगुणके उद्रेकसे सम्पूर्ण लोकोंका संहारकर एकार्णवमें नागपर्यङ्कपर शयन करते हैं, ऐसा वर्णन है; वहाँ भी नैमित्तिकप्रलयका वर्णन ही स्वीकार करना चाहिये। सम्पूर्ण भूतोंका अभिप्राय त्रिलोकीमें स्थित सम्पूर्ण भूतोंको समझना चाहिये।

"तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः।
मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः॥
भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते।
नागपर्यङ्कशयने शेते च परमेश्वरः॥"

(विष्णुपुराणे १.२.६३, ६४)

ऐसा मानना इसलिये आवश्यक है, क्यों कि श्रीमद्भागवतमें सुप्तशक्तियोंको जगानेके लिये कालशक्तिको जाग्रत् रखकर योगनिद्रा लाभ कर रहे भगवान् विष्णुके सहस्रचतुर्युगपर्यन्त निद्रा लाभ करनेके अनन्तर सृष्टिके लिये प्रवृत्त होनेका वर्णन है–

"सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः
कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः।
उवास तस्मिन् सलिले पदे स्वे
यथानलो दारुणि रुद्धवीर्यः॥
चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु
स्वपन् स्वयोदीरितया स्वशक्त्या।
कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतन्त्रो
लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे॥

(श्रीमद्भागवते ३.८.११, १२)

ध्यान रहे, उक्त स्थलोंमें ब्रह्माजीके प्रादुर्भावका वर्णन और सृष्टिरचनाका प्रकार महाप्रलयके पश्चात् होनेवाली सृष्टिको सूचित करते हैं, जबकि प्रलयार्णवमें एक सहस्रचतुर्युगपर्यन्त शयन प्रलयको सिद्ध करता है, न कि महाप्रलयको। महाप्रलयमें जलका निषेध प्रकृत श्रुतिसे सिद्ध है। साथ ही एक सहस्रचतुर्युगकी ब्रह्माजीकी एक रात्रि होती है। इस दृष्टिसे ३६० x १०० = ३६,००० सहस्रचतुर्युग ब्रह्माजीकी यावज्जीवन सुषुप्तिकी अवधि है। ३६,००० x २ = ७२,००० सहस्रचतुर्युग ब्रह्माजीकी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्णायु है। महाप्रलयकी इतनी ही अवधि माननेपर बहत्तर हजार सहस्र-चतुर्युग विष्णुभगवान्के शयनका वर्णन होना चाहिये न कि कुल एक सहस्रचतुर्युगपर्यन्त। अभिप्राय यह है कि श्रीब्रह्माजीकी पूर्णायु ३६० दिनोंका वर्ष माननेपर ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष होती है, जिसमें ७२ हजार सहस्रचतुर्युगका समावेश होता है। इतनी ही अवधि महाप्रलयकी होनी चाहिये। ऐसी स्थितिमें यह मानना चाहिये कि उक्त पौराणिकवर्णन प्राकृतसर्ग और नैमित्तिकसर्गके सांकर्यसे है। ऐसा इसलिये क्योंकि साकारनिष्ठोंकी निष्ठामें किसी प्रकारकी आँच न आवे। महाप्रलयके सर्वथा अनुरूप ही महाप्रलयका वर्णन करनेपर अव्याकृतका उपाधिभाग त्रिगुणात्मक अव्यक्त जलस्थानीय होगा और अवच्छिन्न चैतन्य या आभास शेषस्थानीय होगा तथा अधिष्ठान तुरीय विष्णु या ब्रह्मा या शिवरूप होगा।

कार्योपाधिक चेतन कर्मफलात्मक भौतिकविग्रहसम्पन्न हो सकता है, पर सर्वज्ञ नहीं। कारणोपाधिक सर्वज्ञ हो सकता है, पर मूर्तिमान् नहीं। परन्तु **'आकाशशरीरं ब्रह्म'** (तैत्तिरीय १.६.२), **'अजायमानो बहुधा विजायते'** (शुक्ल० य० ३१.१९), **'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'** (श्वेताश्वतरो० ४.१०) आदि श्रुतियोंके अनुसार कारणोपाधिक — अव्याकृतोपाधिक ब्रह्मविग्रहका माया अभिन्ननिमित्तोपादानकारण मान्य है, या माया निमित्त और चिद्व्योमात्मक ब्रह्म उपादानकारण मान्य है, या माया उपादान और ब्रह्म (मायी परमेश्वर) निमित्त मान्य है। इस प्रकार अवतारविग्रहकी नित्यता, अभौतिकता सध जाती है और अवतारीकी सर्वज्ञता भी चरितार्थ होती है। क्योंकि महाप्रलयमें माया शेष रहती है, अतः मायोपादानक और मायानिमित्तक विग्रह भी शेष रहता है। मायामें ही उसका सन्निवेश मानकर तदतिरिक्तका अभानात्मक अभाव माना गया है।

जैसे नानाच्छविधारी वैदूर्यनामक मणि नील, पीतादिरूपोंसे युक्त परिलक्षित होती है, उसी प्रकार भावनायोगसे निरुपाधिक साकार भगवान् अच्युत भी साकारनिष्ठोंको विष्णु, कृष्ण, राम, शिव, ब्रह्मा, शक्ति, गणेश, सूर्य आदि रूपोंमें परिलक्षित हों और भक्तोंके योगक्षेमके लिये मनीषिगण भी उसी प्रकारका प्रतिपादन करें, यह उपयुक्त ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। कहा भी है—

"मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाऽच्युतः॥"
(नारदपञ्चरात्रे)

"सर्वेषां भगवद्रूपाणामभिन्नत्वं चाभिप्रेतम्, एकस्यैव भगवद्विग्रहस्य स्वाभाविकाचिन्त्यशक्त्या नानारूपतासमावेशादुपासनाभेदेनैव दर्शनभेदाच्च यथोक्तं श्रीनारदपञ्चरात्रे - 'मणिर्यथेति'। मणिरत्र नानाच्छविधारी वैदूर्याख्यो ज्ञेयः।" (श्रीमज्जीवगोस्वामिकृता श्रीमद्भागवतवैष्णवतोषिणी १०.२.२८)।

"रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥ ६॥ चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः। उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥ ७॥" (रामपूर्वतापिन्युपनिषत् १), **'विश्वरूपं परं ज्योतिः स्वरूपं रूपवर्जितम्'** (गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् २)।

यद्यपि भगवद्विग्रह और आत्मार्था सृष्टि कर्मफलात्मक न होनेके कारण उन्हें उत्पत्ति और प्रलयशून्य माननेमें कोई आपत्ति नहीं आती। मानो **'न कदाचिदनीदृशं जगत्' यह मीमांसकोंकी मान्यता पूर्णरूपसे यहीं चरितार्थ होती है। काकभुशुण्डि आदिके विग्रहको महाप्रलयमें भी नष्ट न होनेवाला मानस आदिमें माना गया है। काशी आदि क्षेत्रोंका भी अनाश काशीखण्डादिमें स्वीकार किया गया है। भगवान्के मुख्य पार्षद भगवद्विग्रहके तुल्य ही अनादि अनन्त मान्य हैं। इस प्रकार साकार पदार्थ सादि-अनन्त और अनादि-अनन्त द्विविध माने गये हैं। तथापि 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** (ब्रह्मसूत्र २.१.३३) की रीतिसे विचार करें तो कोटि-कोटि ब्रह्माजीकी आयुके पश्चात् ही क्यों न सही, परन्तु साकार पदार्थोंकी अप्रतीतिरूप संहृति स्वीकार करनेमें लीलापुरुषोत्तम और उनकी लीलापर किसी प्रकारकी आँच नहीं आती। जिस प्रकार अग्निकी अव्यक्त रूपमें स्थिति या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिमकी जलरूपमें स्थिति स्वाभाविकी है, उसी प्रकार साकारकी निराकार तथा सगुणकी निर्गुण रूपमें प्रतिष्ठा स्वाभाविकी है। ऐसा माननेपर तात्त्विकपक्ष और तत्त्वोन्मुख तत्त्वचुम्बित भावपक्ष दोनोंमें सामञ्जस्य प्रस्थापित हो जाता है। अधिदैववादकी दृष्टिसे अनित्यपदार्थोंका आधिदैविकरूप अनित्य और नित्य पदार्थका आधिदैविकरूप नित्य मान्य है। यह मान्यता जहाँ पुराणोंकी अपूर्वता है, वहाँ श्रौतीभावनाके भी अनुरूप है। त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्के अनुसार नित्य, निराकार, विभु ब्रह्म आधिदैविक साकाररूपके विना आकाशतुल्य जड सिद्ध होगा–

> **''सर्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मणः परमार्थतः साकारं विना केवलनिराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवलनिराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्येत। तस्मात्परब्रह्मणः परमार्थतः साकारनिराकारौ स्वभावसिद्धौ॥''** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् २.१)।

सुषुप्तिमें प्राण और शरीरका भान न होनेसे माण्डूक्यादिमें जीवका एकोनविंशति (उन्नीस) मुख और सप्ताङ्ग (सात अङ्ग) व्यावहारिक सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीरविशिष्ट वैश्वानर तथा प्रातिभासिक देहद्वयविशिष्ट हिरण्यगर्भरूपसे वर्णन नहीं है। ऐसा होनेपर भी जिस प्रकार मृत्युसे विलक्षण सुषुप्तिको सिद्ध करनेके लिये प्राणयुक्त देहकी विद्यमानता मान्य है। इसी प्रकार प्रलयमें स्थूलोपाधिक विराट्-विग्रहकी अविद्यमानता और सूक्ष्मोपाधिक हिरण्यगर्भकी विद्यमानता मान्य है। ऐसा माननेपर ही महाप्रलयसे प्रलयकी विलक्षणता सम्भव है। महाप्रलयमें सूक्ष्मोपाधिक हिरण्यगर्भकी अविद्यमानता और कारणरूपा माया तथा मायानिमित्तक विग्रहयुक्त कारणोपाधिक ईश्वरकी विद्यमानता मान्य है, तभी मुक्तोपसृप्य ब्रह्म और कारणब्रह्ममें विलक्षणता संभव है। सिकता और शर्कराके सम्मिश्रणकी दशामें भी पिपीलिकाके प्रति शर्कराकी स्फूर्तिके तुल्य त्रिगुणकी साम्यावस्थाकी दशामें भी ईश्वरके प्रति विशुद्ध सत्त्वात्मिका माया और मायानिमित्तक श्रीविग्रहकी स्फूर्ति सम्भव है।

इस सन्दर्भमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ब्रह्माजीका शास्त्रोंमें विविधरूपसे वर्णन है। कहीं अव्यक्तात्मक अव्याकृतरूपसे, कहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महदात्मक हिरण्यगर्भरूपसे, कहीं अहमात्मक अहङ्काररूपसे तो कहीं विराट्-रूपसे ब्रह्माका वर्णन है। योगवाशिष्ठमें प्रायः ब्रह्माका ब्रह्मरूपसे ही वर्णन है। जहाँ शबलब्रह्मरूपसे उनका वर्णन है, वहाँ ब्रह्मसे अभिव्यक्त अव्यक्तरूप कमलासनपर विराजमान अव्याकृतरूप ब्रह्मा महदादिके स्रष्टा हैं।

''ततः प्रधानमसृजत्प्रकृतिं स शरीरिणाम्।
यया सर्वमिदं व्याप्तं या लोके परमां विदुः॥
शरीरमात्मनः कृत्वा सर्वलोकपितामहः।
त्रैलोक्यमसृजद्ब्रह्मा कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम्॥''

(महा० आश्वमेधिकपर्वणि १८.२६, २५)

''उन्होंने (ब्रह्माजीने) प्रधान नामक तत्त्वकी उत्पत्तिकी, जो देहधारी जीवोंकी प्रकृति कहलाती है। जिसने इस सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है तथा लोकमें जिसे मूलप्रकृतिके नामसे जानते हैं॥''

''सम्पूर्ण जगत्के पितामह ब्रह्माजीने सबसे पहले स्वयं ही शरीरधारण करके स्थावर-जङ्गमरूप समस्त त्रिलोकीकी (कर्मानुसार) रचना की॥''

''सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥
प्रतिबुद्धो विकुरुते ब्रह्माक्षय्यं क्षपाक्षये।
सृजते च महद्भूतं तस्माद् व्यक्तात्मकं मनः॥''

(महाभारतशान्तिपर्वणि २३१.३१, ३२)

''एक हजार चतुर्युगका जो ब्रह्माका एक दिन बताया गया है और उतनी ही बड़ी जो उनकी रात्रि कही गयी है, उसको जो लोग ठीक-ठीक जानते हैं, वे ही दिन और रात्रिरूप कालको जाननेवाले हैं॥''

''रात्रि समाप्त होनेपर प्रतिबुद्ध ब्रह्माजी पहले अपने अक्षय्यस्वरूपको मायासे विकारयुक्त बनाते हैं, फिर महत्तत्त्वको उत्पन्न करते हैं। फिर उससे स्थूल जगत्को उत्पन्न करनेवाले मनको उत्पन्न करते हैं॥''

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

''अहर्मुखे विबुद्धः सन् सृजतेऽविद्यया जगत्।
अग्र एव महद्भूतमाशु व्यक्तात्मकं मनः॥
अभिभूयेह चार्चिष्मद् व्यसृजत् सप्त मानसान्।
दूरगं बहुधागामि प्रार्थनासंशयात्मकम्॥''
(महाभारतशान्तिपर्वणि २३२.२, ३)

''ब्रह्माजी अपने दिनके आरम्भमें जागकर अविद्या (त्रिगुणात्मिका प्रकृति) द्वारा सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं। सबसे पहले महत्तत्त्व प्रकट होता है। उससे सृष्टिका आधारभूत मन (अहम्) उत्पन्न होता है। उस मनकी दूरतक गति है, वह अनेक प्रकारसे गमनागमन करता है। प्रार्थना और संशयवृत्तिवाला वह मन चैतन्यसे संयुक्त होकर सम्पूर्ण पदार्थोंको अभिभूत करके सात मानस ऋषियों (मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ) की सृष्टि करता है॥''

महत्से उत्पन्न होने और **'आकाशं जायते तस्मात्'** (४) के अनुसार आकाशको उत्पन्न करनेके कारण मन अहङ्कारात्मक समझने योग्य है। उसे (अहम्को) मनका कारण होनेसे (मनोगर्भित होनेसे) संशयात्मक माना गया है।

''प्रत्याहारं तु वक्ष्यामि
शर्वर्यादौ गतेऽहनि।
यथेदं कुरुतेऽध्यात्मं
सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः॥''
(महा० शान्तिपर्वणि २३३.१)

''अब मैं यह बता रहा हूँ कि ब्रह्माजीका दिन बीतनेपर उनकी रात्रि आरम्भ होनेके पहले ही किस प्रकार इस सृष्टिका लय होता है तथा लोकेश्वर ब्रह्माजी स्थूलजगत्को अंत्यन्त सूक्ष्म करके इसे कैसे अपने भीतर लीन करते हैं।''

जहाँ ब्रह्माजीका हिरण्यगर्भरूपसे वर्णन है, वहाँ महद्रूप कमलपर विराजमान महदवच्छिन्न चैतन्यरूप ब्रह्मा अहमादिके स्रष्टा होते हैं। जहाँ उनका रुद्रात्मक अहङ्काररूपसे वर्णन है, वहाँ अहमरूप पद्मासनपर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विराजमान अहमवच्छिन्न चैतन्यरूप ब्रह्मा शब्दादि-तन्मात्राओंके स्रष्टा होते हैं।

''ततो ब्रह्माणमसृजद्धिरण्याण्डसमुद्भवम्।
सा मूर्तिः सर्वभूतानामित्येवमनुशुश्रुम॥
संवत्सरमुषित्वाण्डे निष्क्रम्य च महामुनिः।
संदधे स महीं कृत्स्नां दिवमूर्ध्वं प्रजापतिः॥''
(महाभारतशान्तिपर्वणि ३११.३, ४)

''हमने सुना है कि परमात्माने औषधिकी सृष्टिके बाद ब्रह्माजीकी सृष्टि की थी ('औषधि' पदसे अन्न विवक्षित है। 'अन्न' मुण्डकके अनुसार अव्याकृतरूप है।) वे सुवर्णमय अण्डके भीतर प्रकट हुए थे। वे ही सम्पूर्ण भूतोंके उद्‌गमस्थान हैं॥ वे महामुनि प्रजापति ब्रह्मा उस सुवर्णमय अण्डके भीतर एक वर्षतक निवास करके उससे बाहर निकल आये। फिर उन्होंने संपूर्ण पृथ्वी, आकाश और ऊर्ध्वलोक (स्वर्ग) की सृष्टिके लिये विचार आरम्भ किया॥''

''यथा संहरते जन्तून् ससर्ज च पुनःपुनः।
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षर एव च।
अहःक्षयमथो बुद्ध्वा निशि स्वप्नमनास्तथा।
चोदयामास भगवानव्यक्तोऽहंकृतं नरम्॥
ततः समभवत् सर्वमक्षयाव्ययमव्रणम्।
भूतभव्यभविष्याणां स्रष्टारमनघं तथा॥''
(महा० शान्तिपर्वणि ३१२.२, ३, १६)

''आदि और अन्तसे रहित नित्य अक्षरस्वरूप ब्रह्माजी किस प्रकार बारंबार प्राणियोंकी सृष्टि और संहार करते हैं–यह बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनो॥''

''भगवान्ब्रह्माजी जब देखते हैं कि मेरे दिनका अन्त हो गया, तब उनके मनमें रातमें शयन करनेकी इंच्छा होती है, इसलिये वे अहंकारके अभिमानी देवता रुद्रको संहारके लिये प्रेरित करते हैं॥''

''तदनन्तर ह्रास और वृद्धिसे रहित, अविनाशी और निर्विकार,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वस्वरूप परब्रह्म ही शेष रहता है। उसीने भूत, भविष्य और वर्तमानकी सृष्टि करनेवाले निष्पाप ब्रह्माकी भी सृष्टि की है॥''

''ततस्तेजोमयं दिव्यं
पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा।
तस्मात् पद्मात् समभवद्
ब्रह्मा वेदमयो निधिः॥''

''अहङ्कार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत्।
ब्रह्मा वै स महातेजा य एते पञ्च धातवः॥''
(महा० शान्तिपर्वणि १८२.१५, १६)

''उसके बाद उस स्वयम्भू मानसदेवने पहले एक तेजोमय दिव्य कमल उत्पन्न किया। उसी कमलसे वेदमय निधिरूप ब्रह्माजी प्रकट हुए॥''

''वे अहङ्कार नामसे भी विख्यात हैं और समस्त भूतोंके आत्मा तथा भूतोंके स्रष्टा हैं। ये जो पञ्चमहाभूत हैं, इनके रूपमें महातेजस्वी ब्रह्मा ही प्रकट हुए हैं॥''

जहाँ उनका विराट्-रूपसे वर्णन है, वहाँ वे पञ्चीकृत (स्थूल) पृथ्वीरूपपद्मके सुमेरुरूपकर्णिकापर विराजमान होकर अण्डजादि चतुर्विध प्राणियोंके स्रष्टा होते हैं–

''ततः पुष्करतः सृष्टः सर्वज्ञो मूर्तिमान् प्रभुः।
ब्रह्मा धर्ममयः पूर्वः प्रजापतिरनुत्तमः॥
मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते॥
कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान् सृजते जगतः प्रभुः॥''
(महाभारतशान्तिपर्वणि १८२.३५, ३७, ३८)

''तदनन्तर पूर्वोक्त कमलसे सर्वज्ञ, मूर्तिमान्, प्रभावशाली, परम उत्तम तथा प्रथम प्रजापति धर्ममय ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ॥''

''मानसदेवका जो स्वरूप बताया गया है, वही ब्रह्मरूपमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकट है। उन्हीं ब्रह्माजीके आसनके लिये इस पृथ्वीको पद्म कहते हैं।''

''इस कमलकी कर्णिका मेरुपर्वत है, जो आकाशमें बहुत ऊंचे तक गया है। उसी पर्वतके मध्यभागमें स्थित होकर जगदीश्वर ब्रह्मा सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करते हैं॥''

ध्यान रहे, उक्त स्थलोंमें ब्रह्माजीकी रात्रि बीतनेपर उनके द्वारा अहङ्कारादिकी रचनाका तथा रात्रिके आरम्भमें इनके संहारका जो वर्णन है, वह स्वेतरके संहार (वारण)के अभिप्रायसे है। महाप्रलयमें ब्रह्माजीका वारण होता है, जबकि प्रलयमें उनके अतिरिक्तका संहार (वारण) होता है।

जहाँ ब्रह्माजी जरायुजादि चतुर्विध शरीरोंके स्रष्टा हैं, वहाँ उनकी सुप्तिदशामें उन प्राणियों और उनके लोकोंका संहार हो जाता है। जहाँ प्रलयमें महः, जनः, तपः, सत्यम् इन चारों लोकोंकी स्थितिका वर्णन है, वहाँ यह समझना चाहिये कि मैथुनप्रधानप्राणियोंके सहित उनके लोक नष्ट हो जाते हैं। मानसप्रधान महर्षिगण और उनके लोक शेष रहते हैं। हमारे स्वप्नमें जिस प्रकार मैथुनसर्गका ही हमें अभान रहता है एवं मानससर्गका ही हमें भान रहता है, उसी प्रकार ब्रह्माजीकी निद्रामें मानससर्गका ही उन्हें भान रहता है। उनकी निद्रा स्वप्नतुल्य योगनिद्रा सिद्ध होती है।

'भूः' लोक मैथुनसर्ग है ही। 'भुवः' लोकमें स्थित गन्धर्वादिकोंमें विवाहादिकी प्रथा है। 'भूः' लोकके क्षत्रियोंमें गन्धर्वविवाहकी विधा और प्रथा उक्त तथ्यका पोषक है। 'स्वः' लोकस्थ इन्द्रादिकोंके जयन्तादि पुत्रोंका वर्णन महाभारतादिमें है। इन्द्रादिदेवोंकी कश्यप और अदितिसे तथा हिरण्याक्षादि दैत्योंकी कश्यप तथा दितिसे उत्पत्ति भी देवोंमें मैथुनसर्गका पोषक है। पुण्यके प्रभावसे **'भुवः'** और **'स्वः'** लोकोंमें उत्क्रमण करनेवाले अयोनिज मान्य होनेपर भी इन लोकोंके अधिपतियोंको मैथुनसर्गान्तर्गत मानना उपयुक्त है। अप्सराओंसे सन्तानोत्पत्ति भी उक्त तथ्यकी पुष्टिमें हेतु है।

प्रकारान्तरसे यह कथन भी उपयुक्त है कि ब्राह्मप्रलयमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(नैमित्तिकप्रलयमें) लीन होनेवाले 'भूः', 'भुवः' और 'स्वः' इन तीन लोकोंकी प्राप्ति काम्यकर्मियोंको होती है और ब्राह्मप्रलयमें लीन न होनेवाले 'महः', 'जनः', 'तपः' और 'सत्यम्' इन चार लोकोंकी प्राप्ति निष्कामकर्मियोंको होती है। काम्यकर्म निष्कामकर्मकी अपेक्षा अवर है–

"दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥"
(भगवद्गीता २.४९)

यही कारण है कि काम्यकर्मकि फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले लोकोंका क्षय ब्राह्मप्रलयमें होता है और निष्कामकर्मकि फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले लोकोंका क्षय 'महाप्रलय'में होता है।

"पद्मकोशं तदाऽऽविश्य भगवत्कर्मचोदितः।
एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा॥
एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः।
धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ॥"
(श्रीमद्भागवते ३.१०. ८, ९)

"एष दैनन्दिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः।
तिर्यङ्नृपितृदेवानां सम्भवो यत्र कर्मभिः॥"
(श्रीमद्भागवते ३.११, २५)

● **अव्यक्तादिकी कालसंख्या**– महाभारत शान्तिपर्वकि ३११वें अध्यायमें **'अव्यक्तस्य नरश्रेष्ठ कालसंख्यां निबोध मे। पञ्चकल्पसहस्राणि द्विगुणान्यहरुच्यते'** (१) की उक्तिसे अव्यक्तके दिन-दिनकी कालसंख्या दस हजार कल्प मानी गयी है। **'रात्रिरेतावती'** (२)कहकर रात्रि भी उतनी ही बड़ी कही गयी है। **'दसकल्पसहस्राणि पादोनान्यहरुच्यते'** (६), **'रात्रिमेतावतीं चास्य'** (७) की उक्तिसे महदात्मक हिरण्यगर्भकि दिन-दिनकी कालसंख्या पादोन दश हजार कल्प कही गयी है। उनकी रात्रि भी इतनी ही बड़ी कही गयी है। **'निशामाहुः... ... ... पञ्चकल्पसहस्राणि तावदेवाहरुच्यते'** (११) की उक्तिसे अहम्की रात्रि पाँच हजार कल्पोंकी कही गयी है, उसका दिन भी उतना ही बड़ा कहा गया है। **'त्रीणि कल्पसहस्राणि एतेषामहरुच्यते'** (१५) की उक्तिसे मन और शब्दादि तन्मात्राओंके दिन-दिनकी कालसंख्या तीन हजार कल्पोंकी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहीं गयी है। 'रात्रिरेतावती चैव' (१६) की उक्तिमें रात्रि भी इतनी ही बड़ी कही गयी है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि उक्त स्थलोंमें प्रयुक्त कल्पका अर्थ क्या किया जाय तथा अव्यक्तको भी कार्यकोटिका किस प्रमाणसे माना जाय। **'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'** (शुक्लयजु० २५.१०; ऋ० १०.१२१.१), **'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव'** (मुण्डकोप० १.१.१) के अनुसार अधिदैवपक्षमें (उपहितदृष्टिसे) हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्माको प्रथम कार्य मानना आवश्यक है। **'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम'** (महाभा० शान्तिपर्व० ३३४.३१), **'अव्यक्तं निष्कले ब्रह्मन् ब्रह्मणि प्रविलीयते'** आदि वचनोंके अनुसार अध्यात्मपक्षमें (उपाधिदृष्टिसे) अव्यक्तको प्रथम कार्य मानना उपयुक्त है। कालयोगसे उच्छूनावस्था प्राप्त प्रकृति (प्रधान, माया) **अव्यक्त** है अथवा कार्योन्मुखता ही प्रकृति, प्रधान, माया या अव्यक्तकी उत्पत्ति है। ऐसी स्थितिमें हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा और उनकी प्रथम-उपाधि अव्यक्तकी कालसंख्या समान होनी चाहिये। ब्रह्माजीके दिन-दिनकी कालसंख्या १ हजार चतुर्युग अर्थात् १० हजार **कलि** युग प्रसिद्ध है। यहाँ अव्यक्तके दिन-दिनकी आयु १० हजार कल्प मानी गयी है। ऐसी स्थितिमें कलियुगको कल्प मानना उपयुक्त है। परन्तु महत्, अहम् और मनके प्रसंगमें यदि कलिको ही कल्प माना जाय तो इन तत्त्वोंकी आयुमें महान् अन्तर प्राप्त होता है। पूर्वोक्तरीतिसे अव्यक्तके दिन-दिनकी आयु ४ अरब, ३२ करोड़ वर्षोंकी सिद्ध होती है। 'दश कल्प सहस्रका पादोन अर्थात् एक चौथाई कम' मानकर महत्के दिन-दिनकी आयु यदि ७½ (साढ़े सात) हजार कल्प मानें तो ३ अरब, २४ करोड़ वर्षोंकी सिद्ध होती है। पाँच हजार कल्पका दिन मानकर अहम्के दिन-दिनकी आयु २ अरब, १६ करोड़ वर्षोंकी सिद्ध होती है। ३ हजार कल्पका दिन मानकर मन आदिके दिन-दिनकी आयु १ अरब, २९ करोड़, ६० लाख वर्षोंकी सिद्ध होती है। परन्तु **'तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधःस्विदासीत्'** (५) वक्ष्यमाण मन्त्रके अनुसार **'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः'** (तैत्तिरीयोप० २.१), **'ब्रह्मणोऽव्यक्तम्। अव्यक्तान्महत्। महतोऽहंकारः। अहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि। पञ्चतन्मात्रेभ्यः पञ्चमहाभूतानि। पञ्चमहाभूतेभ्योऽखिलं जगत्'** (त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् १)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदि श्रुतियोंकी रीतिसे क्रम विवक्षित होनेपर भी कालका अन्तराल युगपत् शतपत्रबेधनवत्, रविरश्मिप्रसारवत् नगण्य होनेसे उक्त तत्त्वोंकी अभिव्यक्ति युगपत् ही परिलक्षित होती है। ऐसी स्थितिमें कूटभेदप्रक्रियाका आलम्बन अनिवार्य है। महाभारतमें कूटश्लोकोंकी भरमार है। विशेषकर कालगणना कूटप्रक्रियामें ही लिखी गयी है।

ध्यान रहे; कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलिकी आयुका अनुपात क्रमशः चार, तीन, दो और एक (४:३:२:१) है। एक चतुर्युग १० (दस) कलिके तुल्य है। १ द्वापर २ कलिके तुल्य है। १ कृतयुग ४ कलिके तुल्य है। १ त्रेता ३ कलिके तुल्य है। उक्त रीतिसे १० हजार कल्प = १० हजार कलि अव्यक्तके दिन-दिनकी आयु कल्पको कलि मानकर सिद्ध है। ५ हजार कल्प = १० हजार कलि अहम्के दिन-दिनकी आयु कल्पको द्वापर मानकर सिद्ध है।

अब कूटभेदप्रक्रियासे **'दशकल्पसहस्राणि पादोनानि'** वाक्यान्तर्गत **'पादोनानि'** पदकी **'पादः'** अर्थमें लक्षणापूर्वक **'दशकल्पसहस्राणाम् पादः'** षष्ठी मानकर दश सहस्र कल्प पादोनका अर्थ दश हजार कल्पका चौथाई अर्थात् २$\frac{१}{२}$ हजार कल्प किया जाय तथा कल्पका अर्थ कृतयुग माना जाय तो २$\frac{१}{२}$ हजार कल्प = २$\frac{१}{२}$ हजार कृत = १० हजार कलि महत्के दिन-दिनकी आयु सिद्ध होती है। अथवा **'दशकल्पसहस्राणि पादोनानि'** का अर्थ **'दशसहस्रकल्पसे चौथाई न्यून'** अर्थात् $\frac{१०}{४}$ सहस्रकल्प = २$\frac{१}{२}$ हजार कल्प = २$\frac{१}{२}$ हजार कृतयुग = १० हजार कलियुग करना चाहिये।

इसी प्रकार मन और तन्मात्राओंकी आयु निर्धारणके प्रसङ्गमें यदि ३ सहस्र कल्पका अभिप्राय ३$\frac{१}{३}$ सहस्र कल्प माना जाय तथा कल्पका अर्थ त्रेता किया जाय तो ३$\frac{१}{३}$ हजार कल्प = ३$\frac{१}{३}$ हजारत्रेता = १० हजार कलियुग मन और तन्मात्राओंकी दिन-दिनकी आयु सिद्ध है। किन्तु इस प्रकार गणना करनेपर वैयाकरणोंकी ओरसे आपत्ति प्राप्त होती है। वैयाकरणोंके **'अक्तपरिमाणग्रहणे नैकदेशविकृतमनन्यवत्'** (पारिभाषेन्दुशेखरे ३७) न्यायानुसार वस्तु, परिमाण और संख्याके विषयमें एकदेशविकृतिसे वस्तुकी अविकृतिका सिद्धान्त चरितार्थ नहीं होता अर्थात् एकदेशविकृतिसे वस्तुमें न्यूनाधिककी प्रसक्ति अवश्य होती है। उदाहरणार्थ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पौन मीटरको अथ वा सवा मीटरको एक (?) मीटर नहीं कहा जा सकता तथा ९९ अथ वा १०१ रुपयेको १०० रुपया नहीं कहा जा सकता। तथापि महाभारत आदिमें वैयाकरणोंके उक्त नियमकी सर्वतोभावेन स्वीकृति नहीं है। महाभारतके अनुसार महाभारत शतसाहस्री संहिता है अर्थात् इसमें १ लाख श्लोक हैं, जबकि महाभारतके आदिपर्व-अनुक्रमणिकाध्यायानुसार आदिपर्वसे खिलपर्व (हरिवंशपुराण) पर्यन्त सन्निहिताध्यायान्तर्गत श्लोकसंख्या मात्र ९६ (छियानवे) हजार, ६ (छह) सौ, ३९ (उनतालीस) सिद्ध होती है। अतः प्रकृत प्रकरणमें कूटभेदप्रक्रिया द्वारा 'त्रीणि कल्पसहस्राणि' वाक्यका अर्थ प्राप्तविसंगतिके वारणके लिये **'तिरश्चीनः'** (ना० सू० ५) इस वक्ष्यमाणश्रुतिके अनुरोधसे अव्यक्तादिकी समानायुरूपविवक्षावशात् तीन हजार कल्पके समीप ३$\frac{१}{३}$ हजार कल्प ग्राह्य है।

इस प्रकार उपर्युक्त गणना उपयुक्त है एवं मन और तन्मात्राओंकी दिन-दिनकी आयु १० हजार कलियुग मानना समीचीन है। अथवा 'त्रीणि कल्पसहस्राणि' वाक्यमें अव्यक्त और महत्तत्त्वके आयुनिर्धारक श्लोकसे 'दशकल्पसहस्राणि' पदानुवर्त्तन कर अर्थवशात् षष्ठयन्तत्वेन विपरिणामपूर्वक त्रीणि पदको पूरणार्थक मानकर $\frac{१०}{३}$ अर्थात् ३$\frac{१}{३}$ सहस्र अर्थ होता है।

यहाँ यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि उक्त गणनाके अनुसार अव्यक्त, महत्, अहम्, मन और पञ्चविषयोंकी पूर्णायुमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। ३६० दिनोंका वर्ष मानकर इन सबकी आयु ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष सिद्ध होती है। ३६० दिनोंका वर्ष मानकर १०० वर्षोंकी आयु ७२ सहस्र-सहस्र चतुर्युगी होती है।

जब ब्रह्माजीकी सौ वर्षोंकी द्विपरार्ध आयु समाप्त हो जाती है; तब महत्तत्त्व, अहम् और पञ्च तन्मात्राओंका आरोहक्रमसे मूलप्रकृतिमें लय हो जाता है। इसीका नाम **'प्राकृतप्रलय'** है।

ध्यान रहे, संस्कृतमें परार्द्धसंख्या ब्रह्माजीकी आयुसे बहुत अधिक है। **'तत्परार्द्धं तदर्द्धं वा परार्द्धमभिधीयते'** (कूर्मपुराणपूर्वार्द्धे ५.५ $\frac{१}{२}$) के अनुसार ब्रह्माजीकी सम्पूर्ण आयुको 'परार्द्ध' कहते हैं, अथवा उनकी आधी आयु (५० वर्ष) को परार्द्ध और पूर्णायुको द्विपरार्द्ध कहते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते।
पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते॥
पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत्।
कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः॥
तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद् यं पाद्ममभिचक्षते।
यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम्॥
अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत।
वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः॥
कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते।
अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः॥"
(श्रीमद्भागवते ३.११.३३-३७)

"ब्रह्माजीकी आयुके आधे भागको परार्ध कहते हैं। अब तक पहला परार्ध बीत चुका है, दूसरा चल रहा है॥ पूर्व परार्धके आरम्भमें ब्राह्मनामक महान् कल्प हुआ था। उसीमें ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई थी। विद्वान् मनीषी इन्हें शब्दब्रह्म कहते हैं॥ उसी परार्धके अन्तमें जो कल्प हुआ था, उसे पाद्मकल्प कहते हैं। इसमें भगवान्के नाभिसरोवरसे सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ था। विदुरजी! इस समय जो कल्प चल रहा है, वह दूसरे परार्धका आरम्भक बतलाया जाता है। यह वाराहकल्प नामसे विख्यात है, इसमें भगवान्ने सूकररूप धारण किया था॥ यह दो परार्धका काल अव्यक्त, अनन्त, अनादि, विश्वात्मा श्रीहरिका एक निमेष माना जाता है॥"

ब्रह्माजीकी द्विपरार्द्ध आयुका समावेश 'जलधि' नामक संख्यामें हो जाता है। जलधिको हिन्दीमें 'दसनील' कहते हैं। जलधिके आगे अन्त्य (पद्म), पुनः मध्य (दस पद्म) और परार्द्ध (शंख) है।

"एकं दश शतं चैव सहस्रायुतलक्षकम्॥
प्रयुतं कोटिसंज्ञां चार्बुदमब्जं च खर्वकम्।
निखर्वं च महापद्मं शङ्कुर्जलधिरेव च॥
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संज्ञा दशगुणोत्तराः।
क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योऽन्तरं तथा॥"
(बृहन्नारदीयपुराणे २.५४.१२-१४)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'प्राकृतप्रलय' यह नाम अन्वर्थ है। बीते हुए प्रलयमें यह कार्यात्मक प्रपञ्च प्रकृतिमें लीन था, इसलिये कार्यप्रपञ्चके इस प्रलयको प्राकृत प्रलय कहते हैं—

"प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलये तु यत्।
तस्मात् प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसञ्चरः॥"
(विष्णुपुराणे १.२.२५)

इस प्राकृत प्रलयका वर्णन उक्त मन्त्रमें किया गया है। जिस समय कालकी प्रेरणासे अव्याकृत (मूल-प्रकृति) गुणोंको ग्रस लेता है, उस समय प्रकृति ही शेष रह जाती है। वही चराचर जगत्का मूलकारण है। वह अव्यक्त, अनादि, अनन्त, नित्य, अविनाशी है। जब वह अपने कार्योंको लीन करके महाप्रलयके समय साम्यावस्थाको प्राप्त हो जाती है, तब कालके अवयव वर्ष, मास, दिन, रात, क्षण आदिके कारण उसमें परिणाम, क्षय, वृद्धि आदि किसी प्रकारके विकार नहीं होते। उस समय प्रकृतिमें स्थूल अथ वा सूक्ष्मरूपसे वाणी, मन, सत्त्व, रजस्, तमस् आदि विकार, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और उनके देवता आदि कुछ भी नहीं रहते। सृष्टिके समय रहनेवाले लोकोंकी कल्पना और उनकी स्थिति भी नहीं रहती। आकाश, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि और सूर्य भी नहीं रहते। सब कुछ सोये हुएके समान शून्य-में रहते हैं। उस अवस्थाका तर्कके द्वारा अनुमान करना भी असम्भव है। उस अव्यक्तको ही जगत्का मूलभूत तत्त्व कहते हैं। उसी अवस्थाका नाम 'प्राकृतप्रलय' है। उस समय पुरुष और प्रकृति दोनोंकी शक्तियाँ कालके प्रभावसे क्षीण हो जाती हैं और विवश होकर वे अपने मूलरूपमें लीन हो जाती हैं—

"ग्रसतेऽव्याकृतं राजन् गुणान् कालेन चोदितम्॥
न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः।
अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम्॥
न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं
तमो रजो वा महदादयोऽमी।
न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा
न सन्निवेशः खलु लोककल्पः॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न स्वप्नजाग्रन्न च तत् सुषुप्तं
न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः।
संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं
तन्मूलभूतं पदमामनन्ति॥
लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा।
शक्तयः सम्प्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः॥"
(श्रीमद्भागवते १२.४.१८-२२)

सूतसंहितामें महाप्रलयके अनुरूप ही महाप्रलयका वर्णन है। उसके अनुसार श्रीब्रह्माजीके दिन-दिनका नाम **कल्प** है। दिनके तुल्य ही उनकी रात्रि है। इकहत्तर (७१) चतुर्युगीका एक मन्वन्तर होता है। श्रीब्रह्माजीके दिन-दिनमें चौदह (१४) मनु होते हैं। त्रिलोकीके बाहर महर्लोकसे ब्रह्मलोकपर्यन्त मर्त्यलोककी एक चतुर्युगीका एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि होती है। उस रात्रिका अन्त होनेपर इस लोकका कल्प आरम्भ होता है। उसका क्रम जबतक ब्रह्माजीका दिन रहता है, तबतक चलता रहता है। उस एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं। सत्ययुगमें चार हजार (४०००) दिव्यवर्ष युगके और आठ सौ (८००) सन्ध्या एवम् सन्ध्यांशके–इस प्रकार चार हजार आठ सौ (४८००) वर्ष होते हैं। त्रेतामें तीन हजार (३०००) दिव्यवर्ष युगके और छह सौ (६००) सन्ध्या एवम् सन्ध्यांशके–इस प्रकार तीन हजार छह सौ (३६००) वर्ष होते हैं। द्वापरमें दो हजार (२०००) दिव्यवर्ष युगके और चार सौ (४००) सन्ध्या एवम् सन्ध्यांशके–इस प्रकार दो हजार चार सौ (२४००) वर्ष होते हैं। कलिमें एक हजार (१०००) दिव्यवर्ष युगके और दो सौ (२००) सन्ध्या और सन्ध्यांशके–इस प्रकार एक हजार दो सौ (१२००) वर्ष होते हैं। इस प्रकार सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि–ये चार युग अपनी संध्या और सन्ध्यांशके सहित देवताओंके बारह सहस्र वर्षोतक रहते हैं। मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन होता है। देवताओंका एक वर्ष मनुष्योंके तीन सौ साठ (३६०) वर्षके बराबर होता है। इस प्रकार मानवीय गणनासे कलियुगके चार लाख बत्तीस हजार (४,३२,०००) वर्ष होते हैं। इससे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुगुने द्वापरमें, तिगुने त्रेतामें और चौगुने सत्ययुगमें वर्ष होते हैं। अभिप्राय यह है कि कृतयुग (सत्ययुग) से पादोन (३/४) त्रेता, आधा (१/२)द्वापर और चतुर्थांश (१/४) कलि होता है। कल्पके आरम्भमें एक सन्धि होती है। मन्वन्तरके अवसानमें एक-एक सन्धि होती है। इस प्रकार पन्द्रह सन्धियोंका योग कृतयुगके वर्षतुल्य है। एक सहस्र (१०००) चतुर्युगका एक कल्प होता है। एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं। एक हजार चतुर्युग तक मनु राज्य करते हैं। इस प्रकार १४ x ७१ =९९४ चतुर्युगकी सिद्धि होती है। शेष १००० – ९९४ = ६ चतुर्युगकी सिद्धि सन्धिदशाको लेकर की जाती है। कल्पके आरम्भमें एवम् अन्तमें होनेवाली पन्द्रह सन्धियोंमें पन्द्रह कृतयुग अर्थात् १५ x ४ = ६० (साठ) कलियुगकी सिद्धि होती है। क्योंकि दस कलियुगका एक चतुर्युग होता है; अतः साठ कलियुगमें छह चतुर्युगका समावेश हो जाता है। इस प्रकार छह चतुर्युगकी पूर्ति सन्धिदशाको लेकर होती है। इसी अभिप्रायसे श्रीमद्भागवतमें एक मनुका काल इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक माना गया है। अर्थात् $\frac{१०००}{१४} = ७१\frac{६}{१४} = ७१\frac{३}{७}$ चतुर्युग एक मनुकाल है।

उक्त रीतिसे सहस्र चतुर्युगपर्यन्त ब्रह्माजीका दिन होता है। दिनके तुल्य ही उनकी रात्रि होती है। तीन सौ साठ दिनों (दिन-रात्रि) का वर्ष होता है। सौ वर्षोंकी ब्रह्माजीकी पूर्णायु होती है। उसीको द्विपरार्ध कहते हैं। ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होते ही पञ्चभूतात्मक जगत् ब्रह्माजीके साथ ही मायामें लीन होता है। ब्रह्माजीके तुल्य ही श्रीविष्णु और रुद्रमूर्तियाँ भी माया (प्रकृति) में लीन होती हैं। उत्तरसर्गमें हेतुभूता माया प्रलयकालमें सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मादिसंज्ञक परमेश्वरमें अभेदेन स्थिति लाभ करती है। अन्यथा भानमें हेतु होनेसे उसे माया कहते हैं। आत्मतत्त्वके तिरस्कारसे तम कहते हैं। विद्याके द्वारा नाश्य होनेसे अविद्या कहते हैं। तत्कारण (मोहक) होनेसे मोह कहते हैं। सद्विलक्षण होनेसे असत् कहते हैं। कार्यनिष्पत्तिहेतु होनेसे कारण कहते हैं। कार्यतुल्य व्यक्त न होनेसे अव्यक्त कहते हैं। ऐसी यह विविध नामोंसे प्रथित मायानामकी माहेश्वरीशक्ति शिवस्वरूप परमात्मतुल्य स्वतन्त्र नहीं है। कहा भी है–

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैर्वर्षैः प्रोक्तं चतुर्युगम्।
कृतं तत्र युगं विप्राःसहस्राणां चतुष्टयम्॥
तस्य संध्या च संध्यांशःप्रोक्तश्चाष्टशताऽनघाः।
त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु त्रेता दिव्यैःप्रकीर्तिता (तः)॥
कृतार्धं द्वापरःप्रोक्तस्तदर्धं कलिरुच्यते।
क्रमात्सन्ध्या च सन्ध्यांशस्तुरीयांशविवर्जितः॥
त्रेताद्वापरतिष्याणां युगानां मुनिपुङ्गवाः।
एवं द्वादशसाहस्रं प्रोक्तं विप्राश्चतुर्युगम्॥
युगानामेकसप्तत्या मन्वन्तरमिहोच्यते।
मनवो ब्रह्मणः प्रोक्ता दिवसे च चतुर्दश॥
ब्राह्ममेकमहर्विप्राः कल्प इत्युच्यते बुधैः।
तावती रात्रिरप्युक्ता ब्रह्मणःपण्डितोत्तमाः॥
त्रिशतैःषष्टिभिः कल्पैर्ब्रह्मणो वर्षमीरितम्।
वर्षाणां यच्छतं तस्य द्विपरार्धमिहोच्यते॥
ब्रह्मणोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा मायायां लीयते जगत्।
तथा विष्णुश्च रुद्रश्च प्रकृतौ विलयं गतौ॥
ब्रह्मणश्च तथा विष्णोस्तथा रुद्रस्य सुव्रताः।
मूर्तयो विविधाःस्वेषु कारणेषु लयं ययुः॥
माया च प्रलये काले परस्मिन्परमेश्वरे।
सत्यबोधसुखानन्ते (न्दे) ब्रह्मरुद्रादिसंज्ञिते॥
अभेदेन स्थितिं याति हेतुस्तत्र सुदुर्गमः।
अन्यथाभानहेतुत्वादियं मायेति कीर्तिता॥
आत्मतत्त्वतिरस्कारात्तम इत्युच्यते बुधैः।
विद्यानाश्यत्वतोऽविद्या मोहस्तत्कारणत्वतः॥
सद्वैलक्षण्यदृष्ट्येयमसदित्युदिता बुधैः।
कार्यनिष्पत्तिहेतुत्वात्कारणं प्रोच्यते बुधैः॥
कार्यवद्व्यक्तताभावादव्यक्तमिति गीयते।
एषा माहेश्वरी शक्तिर्न स्वतन्त्रा परात्मवत्॥"

(सूतसंहितायाम् १ शिवमाहात्म्यखण्डे ८.८-२१)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम्।
तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक्॥
निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते।
यावद्दिनं भगवतो मनून् भुञ्जंश्चतुर्दश॥
स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम्॥"
(श्रीमद्भागवते ३.११.२२-२३ ½)

जब जीव ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वबोधसे माया और मायिक-प्रपञ्चके मिथ्यात्वका अनुभव कर सर्वथा अद्वितीय ब्रह्मात्मरूपसे स्थितिलाभ करता है, तत्त्वज्ञानके अमोघ प्रभावसे जगत् बाधित हो जाता है, तब उस स्थितिको **'आत्यन्तिकप्रलय'** कहते हैं।

अग्निपुराणके अनुसार भी प्रलय चार प्रकारका होता है–नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक। जगत्में उत्पन्न हुए प्राणियोंकी जो सदा ही मृत्यु होती रहती है, उसका नाम 'नित्यप्रलय' है। एक हजार चतुर्युग बीतनेपर जब ब्रह्माजीका दिन समाप्त हो जाता है, उस समय जो सृष्टिका लय होता है, वह 'ब्राह्मप्रलय'के नामसे प्रसिद्ध है। इसीको 'नैमित्तिकप्रलय' भी कहते हैं। पाँचों भूतोंका प्रकृतिमें लीन होना 'प्राकृतप्रलय' कहलाता है तथा ज्ञान हो जानेपर जब आत्मा परमात्माके स्वरूपमें स्थित होता है, उस अवस्थाका नाम **'आत्यन्तिकप्रलय'** है।

जब ब्रह्माजीके दो परार्द्धकी आयु समाप्त हो जाती है, तब यह सारा स्थूल-प्रपञ्च प्रकृतिमें लीन हो जाता है। इकाई, दहाईके क्रमसे एकके बाद दसगुने स्थान नियत करके यदि गुणा करते चले जायँ तो अठारहवें स्थानतक पहुँचनेपर जो संख्या बनती है, उसे 'परार्द्ध' कहते हैं। परार्द्धका दूना समय व्यतीत हो जानेपर **'प्राकृतप्रलय'** होता है–

**"कल्पं शेते प्रबुद्धोऽथ ब्रह्मरूपी सृजत्यसौ।
द्विपरार्धं ततो व्यक्तं प्रकृतौ लीयते द्विज॥
स्थानात्स्थानं दशगुणमेकस्माद् गुण्यते स्थले।
ततोऽष्टादशमे भागे परार्धमभिधीयते॥
परार्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतःप्रलयः स्मृतः।"**
(अग्निपुराणे ३६८.१५-१७)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन अठारह संख्याओंमें यदि एकको भी गिन लें, अर्थात एकके बाद सत्रह शून्य लगावें तो वर्तमान हिन्दीगणनाके अनुसार यह संख्या एक शंखके बराबर होती है। यदि एकके बाद अठारह शून्य लगाये जायँ तो यह संख्या दशशंखके बराबर होती है। यह शंख या दशशंख ही 'परार्ध' है। पूर्वोक्त **'एकं दश शतं चैव'** इस बृहन्नारदीयपुराणके अनुसार अठारहवीं संख्या **परार्ध** है; अतः एकके आगे सत्रहशून्य रखनेपर सिद्ध **शंखको परार्ध मानना उपयुक्त है।**

ध्यान रहे, उक्त परार्धसंख्या ब्रह्माजीकी आयुकी अपेक्षा अवश्य ही अधिक है। ३६५ दिनोंका वर्ष माननेपर भी ३२ नील, ९७ खरब, ४० अरब वर्षोंकी सिद्धि होती है। ऐसी स्थितिमें कूर्मपुराण और श्रीमद्भागवतके अनुसार ब्रह्माजीकी आधी आयुको परार्ध मानना उपयुक्त है।

'नासीद्रजो व्योमा परो यत्.......' – प्रश्नोपनिषत्के अनुसार पुरुषकी षोडश (१६) कलाएँ हैं–

"स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः
पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म
लोकालोकेषु च नाम च॥"

(प्रश्नोपनिषत् ६.४)

प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, नाम—ये सोलह कलाएँ हैं। निष्कल (निरवयव) पुरुषकी आविद्यक-औपाधिक कलाओंका यहाँ वर्णन है। **'नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्, किमावरीवः, अम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्'** कहकर श्रुतिने लोक, दिक्, सप्तावरण या पञ्चावरणका निषेधकर लोक, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश–इन छह कलाओंका जहाँ निषेध किया है; वहाँ उपलक्षणविधया प्राण, श्रद्धा, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और नामरूप अवशिष्ट दश कलाओंका भी निषेध कर दिया है। सूक्ष्मभूतोंसे ही इन्द्रियसहित मनकी रचना होती है। प्राण, श्रद्धा, मन्त्र, नाम, कर्म, तपकी प्रतिष्ठा सूक्ष्म देहमें ही होती है। स्थूलभूतोंसे ही अन्न, वीर्यक्रमसे शरीर बनता है। स्थूलदेह उक्त भावोंका अभिव्यञ्जक है॥ १॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● २. मायाश्रयस्वप्रकाशपरब्रह्मशेषसन्दर्भ

● २. **सङ्गति :—** महाप्रलयमें भूत-भौतिकप्रपञ्च और आभूतसंप्लव अमरणधर्मा प्राणसंयुक्त जीव और प्राणापहारक दिन-रात्रि, मृत्यु, काल और इनका ज्ञान तथा जीवनसूचक प्राणसे विरहित ब्रह्माधिष्ठिता स्वधासंज्ञक मायाकी विद्यमानता —

● **मन्त्र :—**

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ॥ २॥

● **पदच्छेद :— न मृत्युः, आसीत्, अमृतम्, न तर्हि, न रात्र्याः, अह्नः, आसीत्, प्रकेतः। आनीत्, अवातम्, स्वधया, तत्, एकम्, तस्मात्, ह, अन्यत्, न, परः, किञ्चन, आस॥ २॥**

● **मन्त्रार्थ :— तर्हि** - उस प्रतिहारसमय (महाप्रलय) में **मृत्युः** - प्रतिहर्ता (संहर्ता) मृत्यु **न** - नहीं **आसीत्** - था और **न** - न **अमृतम्** - मृत्युके अभावसे सिद्ध अमरणस्वभाव कोई प्राणी ही था। **रात्र्या अह्नः प्रकेतः (= प्रज्ञानम्) न आसीत्** - रात्रि-दिन और इनसे उपलक्षित मास, ऋतु, संवत्सरप्रभृति सर्वकाल और इनके साधक सूर्य-चन्द्र नहीं थे, न इनका भान ही था। मृत्युसाधक काल और कालज्ञानके न रहनेसे 'मृत्यु नहीं था' यह कथन सर्वथा चरितार्थ ही है। जब भोग्य और भोगप्रद काल नहीं था तथा भोक्ता-कर्त्ता भी नहीं था, तब कौन था? क्या शून्य ही तो नहीं था? नहीं, **आनीत् (= प्राणितवत् - अननं प्राणनं कुर्वत्) अवातम् (= अप्राणं शुद्धं ब्रह्म) आसीत्** - प्राणनकर्त्ता अर्थात् सम्पूर्ण प्राणिसमूहको आत्मसात् किये स्वयम् विना वायु (प्राण)के ही वह प्राणका भी प्राण परब्रह्म प्रतिष्ठित था। ऐसा भी नहीं कि मायासंयुक्त होनेपर भी शुद्धब्रह्मकी महाप्रलयमें असम्भावना सांख्यसम्मत प्रकृति अर्थात् त्रिगुणात्मिका स्वतन्त्रा मायाको ही सिद्ध करती है; क्यों कि नित्य असङ्गता और अद्वितीयताको न त्यागे हुए अर्थात् साधे हुए ही जलनिष्ठ शैत्यको आत्मसात् किये हुए जलके तुल्य वह परब्रह्म मायाको आत्मसात् किये अर्थात् सर्वथा एकीभूत किये स्थित था। स्थूणानिखननन्यायसे इसकी परिपुष्टि की जाती है— **तस्मात् ह परः अन्यत् किञ्चन न आस** - उस परब्रह्ममे पर निःसन्देह कुछ भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं था। सर्गकालिक द्वैत उस समय नहीं था। द्वैतबीज मायाको परब्रह्म अपनेमें अध्यस्त बनाये आत्मसात् किये हुए था। जब भूत-भौतिकद्वैतबीज माया भी उसमें अध्यस्त ही थी, तब किसको लेकर द्वैत होता!

● **भावार्थ :–** संहारके लिये संहर्ताकी अपेक्षा होती है। संहारकर्ता मृत्युकी सम्भावना तो महाप्रलयमें हो ही जाती है। परन्तु उस समय मृत्युका भी अभाव ही था। 'मृत्युके न रहनेपर भी अमृत-अमरणधर्मा प्राणी रहे होंगे' ऐसा भी नहीं। भोगप्रदानके उन्मुख परिपक्वकर्मोका जीवोंद्वारा भोग कर लिये जानेपर जब भोग न होनेपर भोग्यप्रपञ्चका होना निष्प्रयोजन हो जाता है, तब परमेश्वरमें संहारकी इच्छा उदित होती है। उस समय मृत्यु या उसके अभावके कारण होनेवाले अमरणकी प्राप्ति नहीं है।

पृथिव्यादिका अधिकरण काल भी नहीं था। रात-दिन और इनका प्रकेत - प्रज्ञान नहीं था। सूर्य, चन्द्र और उनसे सिद्ध मास, ऋतु, संवत्सर आदि भी उस समय नहीं थे। ऐसा होनेपर भी कालवाचक **'तर्हि'**-**'तदानीम्'** (उस समय) शब्दका प्रयोग गौण है। कालवासनावासित जिज्ञासुके प्रति वस्तुस्थितिका केवल प्रबोधनमात्र ही है। अथवा वाग्व्यवहार देश, कालके आलम्बनके विना सम्भव नहीं है, इसलिये **'तदानीम्'** शब्दका प्रयोग है। जैसे प्रलयमें अविद्यमान पदार्थोका प्रतिपादन निषेधमुखसे **'इदानीम्'** (इस समय) किया जाता है; वैसे ही **'तदानीम्'** (उस समय) मायाके द्वारा उपस्थापित है। अभिप्राय यह है कि महाप्रलयमें माया कालगर्भित पृथिव्यादिके निषेधका अवच्छेदक अर्थात् उपादानरूपसे अवशिष्ट रहती है।

उस समय ब्रह्मतत्त्व ही विना वायुके श्वास ले रहा था। अभिप्राय यह है कि वही सम्यग्रूपसे विद्यमान था। उसका प्राणसे भी कोई सम्बन्ध नहीं था। 'आनीत्' इस क्रियाके द्वारा **'प्राणनक्रिया'** अथवा उसका कर्त्ता विवक्षित नहीं है।

उस समय ब्रह्म स्वधासे युक्त था। जो अपने स्वरूपमें – ब्रह्ममें धारण की जाय – स्वरूपके आश्रित रहे, उसे स्वधा-माया कहते हैं। सांख्योक्त प्रधान, प्रकृति या अव्यक्तसे वह माया निःसन्देह विलक्षण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। सांख्योक्त प्रधान स्वतन्त्र है, जब कि वेदोक्त माया ब्रह्माश्रिता। ब्रह्माश्रिता रहती हुई भी माया अनिर्वचनीया है।

यद्यपि माया दृश्य और ब्रह्म द्रष्टा है, फिर भी अन्यका प्रतिषेध होनेके कारण निषेध सार्थक है। भूत, भौतिक दोनोंका महाप्रलयमें अभाव ही था; केवल ब्रह्माश्रिता अनिर्वचनीया माया थी या अनिर्वचनीया मायासहित ब्रह्म ही था॥

● **व्याख्येय :–** 'न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि' = 'उस समय मृत्यु नहीं था। उसके अभावको सिद्ध करनेवाला अमृत-अमरण स्वभाव कोई प्राणी नहीं था।'

● **सायणभाष्यम् – ननूक्तस्य प्रतिसंहारस्य संहर्त्रपेक्षत्वात् स एव संहर्ता मृत्युर्विद्यत इत्यत आह–'न मृत्युरासीत्' इति। ननु यदि स नासीत् तर्हि तदभावकृतममृतममरणं प्राणिनामवस्थानं तदानीमपि स्यात्तत्राह– 'अमृतं न तर्हि' इति। तर्हि तस्मिन् प्रतिहारसमये। अयं भावः-सर्वेषां प्राणिनां परिपक्वं भोगहेतुभूतं सर्वं कर्म यदोपभुक्तमासीत् तदा भोगाभावान्निष्प्रयोजनमिदं जगदिति परमेश्वरस्य मनसि संजिहीर्षा जायते। तथैव स मृत्युः सर्वं जगत्संहरत इति किमनेन मृत्युना संहर्त्रा तदभावकृतं वा कथममरणं स्यादिति। एतदेवाभिप्रेत्य कठैराम्नायते। 'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः। मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥'** (कठोपनिषत् १.२.२५) इति।

● **व्याख्या –** 'संहार क्रिया है। क्रिया कर्तृसापेक्ष होती है। संहाररूप क्रियाको संहारकरूप कर्त्ताकी अपेक्षा है। इससे यही ध्वनित होता है कि प्रलयमें संहारक मृत्यु था। संभावित मृत्युका निषेध करनेके लिये श्रुति कहती है - **'न मृत्युरासीत्'** - 'उस समय मृत्यु नहीं था।'

अब प्रश्न उठता है कि मृत्यु न सही, पर उसके अभावको सिद्ध करनेवाला अमृत-अमरण प्राणिविशेषोंका अवस्थान (स्थिति) तो था ही। संभावित अमृतका निषेध करती हुई श्रुति कहती है **'अमृतं न तर्हि'** = उस समय सापेक्ष अमृत - अमरणस्वभाव कोई नहीं था।

इस कथनके पीछे दार्शनिकता यह है कि भोगका हेतु

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्म है। फलोन्मुख परिपक्व-कर्माधीन ही भोग है। विना कर्मके भोग असम्भव है। इस तथ्यको न माननेवालोंके मतमें अकृताभ्यागमदोष अनिवार्य है। कर्मफलोपभोगके अनन्तर फलोन्मुख कर्मके अभावमें प्रयोजन शेष न होनेसे भोग्यप्रपञ्चका अवस्थान अनुपयुक्त है। परम कृपालु भगवान् समस्त जीवोंको सर्गके अनुरूप समयतक विश्राम प्रदान करनेके लिये महाप्रलयका संकल्प करते हैं। संहारक मृत्यु भी संहारके अनन्तर परमेश्वरका ग्रास बन जाता है। उस समय परमेश्वरके अतिरिक्त कोई भी मृत्युञ्जय नहीं होता। कर्मफलोपभोगके लिये अथवा प्रलयका द्रष्टा होनेके लिये कोई भी कार्यकरणसंघातात्मा अमरणधर्मा प्राणी उस समय अवशिष्ट नहीं रहता। न तो उस समय सृष्टि होती है, न उसका संहार होता है, न संहर्ता (मृत्यु) होता है, न संहारसे अवशिष्ट कोई प्राणी ही रहता है।

श्रुत्यन्तर **'मृत्युर्यस्योपसेचनम्'** (कठ० १.२.२५) ब्रह्म, क्षत्रसे उपलक्षित सम्पूर्ण प्रजाको परमेश्वरके भोजनके लिये ओदन (चावल, भात) स्थानीय और मृत्युको दाल, चटनी आदिके स्थानपर मानती है। जैसे दाह्यकाष्ठके दग्ध हो जानेपर दहनक्रिया (दाह) के सहित दाहक होता हुआ स्वतः अदाह्य अग्नि भी शमित हो जाता है; वैसे ही संहार्य भूत-भौतिकप्रपञ्चके संहृत हो जानेपर संहरणक्रिया (संहार) सहित संहारक होता हुआ स्वतः असंहार्य काल (मृत्यु) भी शमित हो जाता है। इस प्रकार महाप्रलयमें संहारक मृत्यु और असंहार्य अमृतसंज्ञक आभूतसंप्लवस्थान ब्रह्मादि नहीं होते। अथवा सर्वसंहारक मृत्युसंज्ञक काल तथा उसका लयस्थान मायामय (ज्ञानमय) अमृतसंज्ञक जीव भी महाप्रलयमें शेष नहीं रहता।

● **व्याख्येय :– 'न रात्र्या अह्नः (अह्न) आसीत्प्रकेतः'** = 'उस समय दिन और रात्रि तथा उनका प्रकेत (प्रज्ञान) भी नहीं था।'

● **सायणभाष्यम्** – नन्वेतस्य सर्वस्याधिकरणभूतः कालो विद्यत इत्यत आह। न रात्र्या इति। रात्र्या अह्नः च प्रकेतः प्रज्ञानं नासीत्। तद्धेतुभूतयोः सूर्याचन्द्रमसोरभावात्। एतेनाहोरात्रनिषेधेन तदात्मको मासर्तुसंवत्सरप्रभृतिकः सर्वः कालः प्रत्याख्यातः। कथं तर्हि नो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सदासीत्तदानीमिति कालवाची प्रत्ययः। उपचारादिति ब्रूमः। यथेदानीन्तननिषेधस्य कालोऽवच्छेदकस्तथा मायापि तदवच्छेदहेतुरित्य-वच्छेदकत्वसाम्येनाकालेऽपि कालवाची प्रत्ययः।

● **व्याख्या** – प्रश्न उठता है कि मृत्यु न सही, किन्तु जन्योंका जनक काल जो कि सर्वाधिकरण – सर्वाधार है, वह प्रलयमें था या नहीं? उस समय दिन, रात और उनका प्रकेत (प्रज्ञान) भी नहीं था। दिन, रात और उनका बोध तो सूर्य, चन्द्रसापेक्ष है। जब सूर्य, चन्द्र ही नहीं थे तो दिन, रात और उनसे उपलक्षित मास, ऋतु, अयन, संवत्सरप्रभृतिरूप सर्वकाल भी नहीं थे तथा उनका प्रकेत (प्रज्ञान) भी नहीं था।

कालको यदि कलनात्मिकाशक्त्यवच्छिन्नचैतन्य मानें **'कालः कलयतामहम्'** (भगवद्गीता १०.३०) तो कल्य (कलनायोग्य) पदार्थोंके अभावमें चैतन्यकी कालसंज्ञा सम्भव नहीं। जैसे आवर्यके अभावमें आवरण या आवरक नहीं, वैसे ही कल्यके अभावमें काल नहीं।

'कलयति प्रकाशयति यः सः कालः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार यदि जगत्के निमित्तकारणरूप चैतन्यको काल मानें तो प्रकाश्य और कार्यरूप नैमित्तिकका अभाव हो जानेके कारण उस समय चैतन्यकी कालसंज्ञा भी नहीं सध सकती। जैसे आवर्यके अभावमें आवरण नहीं, वैसे ही कार्यके अभावमें कारण नहीं। कहा जा सकता है कि "कारण कार्यसे विविक्त होता है। कार्यके विना भी कारण रहता ही है। कारणके विना कार्य नहीं रहता। लोकमें कुलालके न रहनेपर भी घट रह जाता है, क्योंकि घट बननेमें कुलालकी आवश्यकता है न कि घटके विद्यमान रहनेमें। निमित्तकारणका कार्यमें अनुबेध नहीं होता। ऐसा होनेपर भी जगत्कारण निमित्त हो या उपादान वह शाश्वतिक होता है। लोकरचनामें वेदान्तनयानुसार सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा ही अभिन्ननिमित्तोपादान मान्य है। लोकरचनासे पूर्व, लोकस्थितिदशामें और लोकनाशदशामें तथा लोकनाशके बाद भी उसका रहना अनिवार्य है। कारणकी विद्यमानता प्रलयदशामें इसलिये भी अनिवार्य है; क्योंकि उत्तरसंसारके प्रति कारण भी परमात्माको ही होना है। महाप्रलयमें परमात्माका सत्त्व न माननेपर शून्यवादका विन्यास भी अनिवार्य है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उक्त शङ्काका परिहार यह है कि जहाँ ईश्वरको कालरूप माना गया है, वहाँ संसारके अभावमें भी उनका होना अभीष्ट ही है। सूर्यादिसापेक्ष कालके निषेधमें तथा ब्रह्म और मायाके अतिरिक्त पदार्थोंकि निषेधमें ही श्रुतिकी प्रवृत्ति हुई है, शून्यकी सिद्धिमें नहीं। 'तरङ्ग, आभूषणके भङ्ग हो जानेपर और सर्पकि घनान्धकारसे आच्छादित हो जानेपर जिस प्रकार जल, सुवर्ण और रज्जुकी तथा वायु, स्वर्णकार, दर्शककी कारणसंज्ञा नहीं सधती,' ऐसा कहनेका तात्पर्य यह नहीं होता कि उनका अस्तित्व नहीं होता; उसी प्रकार 'जगत् न रहनेपर ईश्वरकी कारणसंज्ञा नहीं सधती' ऐसा कहनेका तात्पर्य यह नहीं होता कि ईश्वरका अस्तित्व नहीं रहता। भविष्यत् कार्योंकि प्रति या भूतपूर्वगतिसे उसे कारण कहनेमें भी आपत्ति नहीं। यों तो सत्कार्यवादके अनुसार कार्यकी विद्यमानता माननेमें भी कोई आपत्ति नहीं, परन्तु कार्यरूपसे कार्य और कारणरूपसे कारणकी विद्यमानताका ही वारण अभीष्ट है।

ध्यान रहे, परमपुरुष विष्णु (नारायण, वासुदेव, परमात्मा, पुरुषोत्तम, ब्रह्म) से प्रधान और पुरुष दो तत्त्वोंकी स्फूर्ति हुई। उनके (परमात्माके) जिस रूपान्तर (तीसरे रूप)से सर्गदशामें प्रधान और पुरुष संयुक्त होते हैं और प्रलयदशामें वियुक्त होते हैं, जो अनादि, अनन्त और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयप्रवाहका नियामक है, उसका नाम काल है।। प्रलयदशामें प्रधानके साम्यावस्थामें स्थित हो जानेपर और पुरुषके प्रकृतिसे वियुक्त हो जानेपर परमेश्वरका जो रूपान्तर इन्हें धारण करनेके लिये प्रवृत्त होता है, वह काल है।। पुनः सर्गकाल समुपस्थित हो जानेपर सर्वात्मा, सर्वभूतेश सर्वगत परमेश्वर विकारों (महदादि) और गुणों (सुख-दु:खादि) की जननी प्रकृतिमें और निर्विकार पुरुषमें जिस रूपसे प्रविष्ट-सरीखे होकर गन्धवत् अक्षुब्ध रहते हुए सन्निधिमात्रसे नासिका और मनस्तुल्य इन्हें क्षुब्ध करते हैं, वह काल है—

''विष्णोः स्वरूपात्परतो हि ते द्वे
रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र।
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते
रूपान्तरं तद् द्विज कालसंज्ञम्।।'' २४।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

''अनादिर्भगवान्कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते।
अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः ॥'' २६॥
''गुणसाम्ये ततस्तस्मिन्पृथक्पुंसि व्यवस्थिते।
कालस्वरूपं तद्विष्णोर्मैत्रेय परिवर्त्तते॥'' २७॥
''ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः।
सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वात्मा परमेश्वरः॥'' २८॥
''प्रधानपुरुषौ चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः।
क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ॥'' २९॥
''यथा सन्निधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते।
मनसो नोपकर्तृत्वात्तथाऽसौ परमेश्वरः॥'' ३०॥
(विष्णुपुराणे १.२)

उक्त स्थलोंमें (कहे हुए और कहे हुएके तुल्य स्थलोंमें) उपाधिरूप प्रधान, उपाधिपरवश पुरुष, उपाधिनियामक उपहित काल तथा अनुपहित पुरुषोत्तमका प्रतिपादन किया गया है। साथ ही **''नित्येश्वरत्वादीश्वरस्य तत्प्रकृत्योरपि युक्तं नित्यत्वेन भवितुम्। प्रकृतिद्वयवत्त्वमेव हि ईश्वरस्येश्वरत्वम्॥''** (भगवद्गीताशाङ्करभाष्ये १३.१९) इस स्थलमें भगवत्पाद शङ्करने भी ईश्वरके समान ही नियम्य प्रकृति और पुरुष (परा प्रकृति, क्षेत्रज्ञ) को भी नित्य माना है। ईशितव्यके विना ईश्वरकी ईश्वरता ही असिद्ध होगी। ऐसी स्थितिमें प्रलयदशामें भी प्रकृति और पुरुषका मानना तो उचित ही है। ऐसा न माननेपर निर्निमित्तकसृष्टि सिद्ध होगी। फिर तो शास्त्रीयमार्गका ही उच्छेद हो जायगा। इस प्रकार प्रलयदशामें भी उक्त चारों या तीनोंकी स्थिति सिद्ध होती है। ऐसा होनेपर भी प्रधान और पुरुषोत्तम दो की ही मुख्यस्थिति मान्य है; क्योंकि पुरुषोत्तमका प्रधानप्रयुक्त रूपान्तर ही पुरुष और काल है।

अन्यत्र विशुद्ध चित् (ब्रह्म), ईश्वर, जीव, जीवेश्वरका भेद, माया (अविद्या) और अविद्या एवं चिति (ब्रह्म)का योग ये छह अनादि पदार्थ कहे गये हैं—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

''जीव ईशो विशुद्धा चित्तथा जीवेशयोर्भिदा।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥''

इनमें चित्के अन्तर्गत ही जीव, ईश्वर दोनों प्रकारके चेतनोंका अन्तर्भाव हो जाता है। सुतरां जीवेश्वरभेदका अन्तर्भाव भी चित्के अन्तर्गत ही हो जाता है। अविद्या प्रसङ्गानुसार प्रकृति, माया, अव्यक्त, तम आदि नामोंसे कही जाती है। अविद्या और चित्के योगका अन्तर्भाव भी अविद्या और चित्में ही हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति, पुरुष या प्रकृति, पुरुषोत्तम ही दो मुख्य अनादि पदार्थ सिद्ध होते हैं। इनमें प्रकृति विकारों और गुणोंकी जननी होनेसे अनादि होती हुई भी नितान्त अव्यय (अबाध्य) नहीं सिद्ध होती। पुरुष अनादि होता हुआ निर्गुण होनेसे नितान्त अव्यय (अबाध्य) सिद्ध होता है—

''प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥''
''अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥''
(भगवद्गीता १३.१९, ३१)

माया और आत्माका संयोग काल है; **'कालो मायात्मसम्बन्धः'** (सूतसंहिता २, ज्ञानयोगखण्ड २.१०) इस मतके अनुसार चित्प्रधान कालका अन्तर्भाव भी आत्मामें ही हो जाता है, अथवा माया और आत्मा दोनोंमें ही होता है।

कालकी सिद्धि सूर्य, चन्द्रसापेक्ष है। कालावयवकी रीतिसे यह तथ्य स्पष्ट ही है। कालावयवका महाप्रलयमें वारण उपयुक्त ही है। कहा भी है—

''न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः।
अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥
न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं
तमो रजो वा महदादयोऽमी।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा
न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥
न स्वप्नजाग्रन्न च तत् सुषुप्तं
न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ।
संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं
तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥''
(श्रीमद्भागवते १२.४.१९-२१)

''जगत्का मूलकारण परब्रह्माश्रिता माया है। वह अव्यक्त, अनादि और अविनाशी है। जब वह अपने कार्योंको लीन करके प्रलयके समय साम्यावस्थाको प्राप्त होती है, तब कालके अवयव वर्ष, मास, दिन, रात, क्षण आदिके कारण उसमें परिणाम, क्षय, वृद्धि आदि किसी प्रकारके विकार नहीं होते। उस समय प्रकृतिमें स्थूल अथवा सूक्ष्मरूपसे वाणी, मन, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, महत्तत्त्व आदि विकार प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और उनके देवता आदि कुछ नहीं रहते। सृष्टिके समय रहनेवाले लोकोंकी कल्पना और उनकी स्थिति भी नहीं रहती। उस समय स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ नहीं रहतीं। आकाश, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि और सूर्य भी नहीं रहते। सब कुछ सोये हुएके समान शून्य-सा रहता है। उस अवस्थाका तर्कके द्वारा अनुमान करना भी असम्भव है। उस अव्यक्तको ही जगत्का मूलभूत तत्त्व कहते हैं॥''

मनुष्यों तथा देवताओंके दिन-रातका विभाग सूर्य करता है, उनमें जीवोंके सोनेके लिये रात तथा काम करनेके लिये दिन होता है—

''अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके।
रात्रिःस्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥''
(मनुस्मृतिः १.६५)

''अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके।
रात्रिःस्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥''
(महाभारतशान्तिपर्वणि २३१.१५)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद्यपि महाप्रलयमें काल नहीं था, परन्तु **'तदानीम्'** (उस समय) यह कालवाचक प्रयोग उपचार (गौण)से किया गया है। जैसे प्रलयमें अविद्यमान पदार्थोंका प्रतिपादन निषेधमुखसे **'इदानीम्'** (इस समय) किया जाता है, वैसे ही **'तदानीम्'** — 'उस समय' मायाके द्वारा उपस्थापित है। अभिप्राय यह है कि 'इस समय' निषेधका अवच्छेदक काल है और 'उस समय' निषेधकी अवच्छेदिका माया है। अवच्छेदकत्वसाम्यसे अकालमें भी कालवाची प्रत्ययका प्रयोग सम्भव है। **'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्'** (छान्दो० ६.२.१) इस स्थलमें **'अग्रे'** - **'पुरा'** - 'पहले' शब्दका प्रयोग जैसे कालाभाव होनेपर भी कालवासनायुक्त अधिकारियोंके प्रति है, इसलिये कालके योगसे द्वैत सम्भव नहीं, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये।

"कालाभावे पुरेत्युक्तिः कालवासनया युतम्।
शिष्यं प्रत्येव तेनात्र द्वितीयं न हि शङ्क्यते॥
चोद्यं वा परिहारो वा क्रियतां द्वैतभाषया।
अद्वैतभाषया चोद्यं नास्ति नापि तदुत्तरम्॥"
(पञ्चदशी २.३८.३९)

वस्तुस्थिति यह है कि प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान, यह सब व्यवहारदशामें ही संभव है, तत्त्वदर्शी व्यावहारिक मान्यताओंको ताकपर रखकर ही तत्त्वविचारमें अग्रसर होते हैं–

"अकोविदः कोविदवादवादान् वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः।
न सूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति॥"
(भागवते ५.११.१)

"काल न सही या काल ईश्वरात्मक ही है, ऐसा ही सही। मायाके योगसे भी तो द्वैत सिद्ध होता ही है। प्रलयमें ईश्वरातिरिक्त जीव न माननेपर अनायास ईश्वरको ही जीवभावकी प्राप्ति होगी। जीवको माननेपर द्वैत सिद्ध होगा ही।" ऐसा मानना भी उपयुक्त नहीं। उस समय माया गुणोंकी साम्यावस्था प्रकृतिरूपा थी। जीवेश्वरविभाग उस समय असिद्ध था। भ्रमस्थलमें अन्यथाग्रहणसे पूर्व अग्रहणदशामें जैसे अद्वैत होता है, वैसे ही महाप्रलयमें भी अद्वैत था। जैसे सर्पादिके भानसे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्व अग्रहणदशामें रज्जुयुक्त अज्ञान होता है, वहीं अवान्तर हेतुओंसे सर्पादिका रूप धारण करता है; वैसे ही प्रपञ्च (द्वैत) भानसे पूर्व मायायुक्त ब्रह्म होता है, वहीं विशुद्ध सत्त्व और मलिन सत्त्वादि हेतुओंसे जगदीश्वर, जीव और जगद् भावको प्राप्त होता है।

● **व्याख्येय :–** **'आनीदवातम्'** = 'ब्रह्मतत्त्व विना वायुके श्वास ले रहा था, अर्थात् वह सन्मात्ररूपसे विद्यमान था।'

● **सायणभाष्यम्– यदवादिष्म ब्रह्मणः परमार्थसत्त्वमग्रे वक्ष्यत इति तदिदानीं दर्शयत्यानीदिति। तत्सकलवेदान्तप्रसिद्धं ब्रह्मतत्त्वमानीत्प्राणितवत्। नन्वेवं प्राणनकर्तुर्जीवभावापन्नस्यैव ब्रह्मणः सत्त्वं स्यात् न विवक्षितस्य निरुपाधिकस्य ब्रह्मणः। 'अप्राणो ह्यमनाः शुद्धः' इति तस्य प्राणसम्बन्धाभावात् तत्राह आनीदवातमिति। अयमाशयः। आनीदित्यत्र धात्वर्थक्रिया तत्कर्ता तस्य च भूतकालसम्बन्ध इति त्रयोऽर्थाः प्रतीयन्ते। तत्र समुदायो न विधीयते यथाग्नेयोऽष्टाकपाल इति येन ब्रह्मणः सत्त्वं न स्यात्। किं तर्ह्यनेन कर्तृत्वमनूद्य भूतकालसत्तालक्षणो गुणो विधीयते दध्ना जुहोतीति वाक्यान्तरविहिताग्निहोत्रानुवादेन तत्र गुणविधानम्। तत्राप्यनेन कर्तृत्वविशिष्टस्य न पूर्वकालसत्ता विधीयते। तन्निषेधानुपपत्तिप्रसङ्गात् अतोऽनेन कर्तृत्वेनेदानीन्तनेनोपलक्षितं यन्निरुपाधिकं परं ब्रह्म तस्यैव भूतकालसत्ता विधीयत इति न कश्चिद्दोष इति।**

● **व्याख्या–** उस समय सर्ववेदान्तप्रसिद्ध स्वतःसिद्ध ब्रह्मतत्त्व विना वायुके श्वास ले रहा था, अर्थात् वह सन्मात्ररूपसे विद्यमान था। उस अप्राण, अमना, शुद्ध ब्रह्मतत्त्वका प्राणसे कोई सम्बन्ध नहीं था। 'आनीत्' इस क्रियाके द्वारा प्राणनक्रिया अथवा उसका कर्त्ता विवक्षित नहीं है। जो निर्विशेष ब्रह्म इस समय है, वही उस समय था, यह अभिप्राय है। सत्ता विवक्षित है, भूतकाल नहीं।

अभिप्राय यह है कि **'अन प्राणने'** (दि० अ०) से निष्पन्न 'आनीत्' धात्वर्थ यहां प्राणनक्रिया है। उसका कर्त्ता और उसका भूतकालसम्बन्ध इस प्रकार तीनकी प्रतीति होती है। **'आग्नेयोष्टाकपालः'** के तुल्य यहां इनका समुदाय अभीष्ट नहीं है। इस प्रकार ब्रह्मका असत्त्व सिद्ध नहीं होता। तो क्या आनीत्के द्वारा कर्तृत्वका अनुवाद करके भूतकालसत्तारूप

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुणका 'दध्ना जुहोति' इस वाक्यान्तरविहित अग्निहोत्रानुवादसे इस गुणविधानके तुल्य विधान किया जाता है? ऐसा माननेपर भी कर्तृत्वविशिष्टकी पूर्वकालसत्ताका विधान नहीं किया जाता; क्योंकि उसके निषेधकी असिद्धि होगी। इसलिये ऐसा मानना ही उपयुक्त है कि अबतकके इस कर्तृत्वसे उपलक्षित जो निरुपाधिक परब्रह्म है, उसीकी भूतकालसत्ताका विधान है; अतः किसी प्रकारका दोष नहीं है। श्रुति आत्माको दिव्य, अमूर्त, पुरुष, अज, अप्राण, अमना, शुभ्र, अक्षरसे भी अत्यन्त पर और प्राण, मन, सर्वेन्द्रिय, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीका कारण बताती है; अतः वह प्राणनक्रियाका कर्त्ता नहीं, अपितु **'प्राणस्य प्राणः'** (केनोपनिषत् १.२) श्रुतिसिद्ध प्राणोंका भी प्राण है।

> **"दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः। एतस्माज्जायते प्राणो मनःसर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥"** (मुण्डक २.१.२, ३)

ध्यान रहे, **'आग्नेयोऽष्टाकपालो भवति'** - **"अग्निर्देवतास्येत्याग्नेयः। अग्निशब्दात्तास्यदेवतेत्यर्थेऽग्नेर्ढक्** (पा० सू० ४.२.३३) **इति सूत्रेण ढक्प्रत्ययः। अष्टसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशोऽष्टाकपालः। अत्र च अग्निदेवतायाः पुरोडाशरूपद्रव्यस्य च निर्देशात्तद् व्यतिरिक्तस्य कस्यचिदनिर्देशादस्य वाक्यस्योत्पत्तिविधित्वं स्पष्टमेव। अयमाग्नेयो यागः। आग्नेयोऽष्टाकपाल इत्याद्युत्पत्तिवाक्यविहितवाक्यनिरूपितव्रीहीणामङ्गत्वम्।"**

'आग्नेयोऽष्टाकपालो भवति' (मै० स० १.१०.१) अग्नि देवतासम्बन्धी याग–आग्नेय याग कहलाता है। आठ कपालों (पात्रों)में संस्कृत पुरोडाश अष्टाकपाल कहा जाता है। अग्निदेवता और पुरोडाशरूप द्रव्यका निर्देश होनेसे यहाँ उत्पत्तिविधि स्पष्ट ही चरितार्थ है।

'कर्मस्वरूपमात्रबोधकस्यैव विधेरुत्पत्तिविधित्वं व्यवह्रियते। उत्पत्तिविधिविहितस्य कर्मणः फलविशेषेण सह सम्बन्धमात्रमधिकारविधिः करोति। उत्पत्तिः-साधनरूपं तद्बोधको विधिः उत्पत्तिविधिः। यथा-'अग्निहोत्रं जुहोति' (तैत्तिरीयसंहिता १.५.९), **'सोमेन यजेत'** (तै०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३.२.२) अधिकारःफलसम्बन्धः तद् बोधको विधिः, अधिकारबिधिः ; यथा 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' (मैत्रायण्युपनिषत् ६.३६), 'ज्योतिष्टोमेन (स्वर्गकामो) यजेत' (आप० श्रौत० १०.२.१)।

फलश्रवण न होनेसे 'आग्नेयोऽष्टाकपालो भवति' (मै० सं० १.१०.१) यह उत्पत्तिविधि मान्य है। 'अग्निहोत्रं जुहोति' (तैत्तिरीयसंहिता १.५.९) इस वाक्यमें द्रव्य और देवताका उल्लेख नहीं है, तथापि इसकी और 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इस अधिकारवाक्यकी सार्थकताके लिये 'अग्निहोत्रं जुहोति' को उत्पत्तिविधिवाक्य मानना ही उपयुक्त है। 'अग्निहोत्रं जुहोति' को उत्पत्तिविधिवाक्य मान लेनेपर 'दध्ना जुहोति' (आपः श्रौत० ६.२५) यह अग्निहोत्रप्रकरणमें प्रथमश्रुत है; फिरभी इसे उत्पत्तिविधि न मानकर गुणविधि मानना ही उपयुक्त है। 'अग्निहोत्रं जुहोति' को उत्पत्तिविधिवाक्य मान लेनेपर 'दध्ना जुहोति' से दधिरूप द्रव्यात्मक गुणकी सिद्धि तथा 'अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा' (शुक्लयजुर्वेदसंहिता ३.९) से अभीष्ट अग्निरूप देवताकी सिद्धि हो जायगी। इस प्रकार 'दध्ना जुहोति' यह गुणविधि या विनियोगविधि ही मान्य है।

● **व्याख्येय :–** 'स्वधया तदेकम्' = 'उस समय अपने स्वरूप (ब्रह्म)में धारण की जानेवाली मायासे एकीभूत ब्रह्म था।'

● **सायणभाष्यम् –** नन्वीदृशस्य ब्रह्मणो मायया सह सम्बन्धासम्भवात् सांख्याभिमता स्वतन्त्रा सद्रूपा सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका मूलप्रकृतिरेवाभिमतेति कथं नो सदिति निषेधः? तत्राह स्वधयेति। स्वस्मिन्धीयते ध्रियत आश्रित्य वर्तत इति स्वधा माया। तया तद्ब्रह्मैकमविभागापन्नमासीत्। 'सहयुक्तेऽप्रधाने' (पा० सू० २.३.१९)। इति तृतीया सहशब्दयोगाभावेऽपि सहार्थयोगे भवति 'वृद्धो यूना' (पा० सू० १.२.६५) इति निपातनाल्लिङ्गात्। अत्र प्रकृतिप्रत्ययाभ्यां तस्याःस्वातन्त्र्यं निवार्यते। यद्यप्यसङ्गस्य ब्रह्मणस्तया सह सम्बन्धो न सम्भवति तथापि तस्मिन्नविद्यया तत्स्वरूपमिव सम्बन्धोऽप्यध्यस्यते यथा शुक्तिकायां रजतस्य। एतेन सद्रूपत्वमपि तस्याःप्रत्याख्यातम्। ननु यदि माया ब्रह्मणा सहाविभागापन्ना तर्हि तस्या अनिर्वाच्यत्वाद् ब्रह्मणोऽपि तत्प्रसङ्ग इति कथं तस्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्त्वमुक्तमानीदवातमिति। ब्रह्मणो वा सत्त्वात्तस्या अपि सत्त्वप्रसङ्ग इति कथं नो सदासीदिति सत्त्वप्रतिषेधः। मैवम्। अयुक्तिदृष्ट्यैक्यावभासेऽपि युक्त्या विविच्य मायांशस्यानिर्वाच्यत्वं ब्रह्मणः सत्त्वं च प्रतिपादितम्।

● **व्याख्या**— उस समय माया थी। सांख्यसम्मत सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका मूलप्रकृति नहीं थी, क्योंकि स्वधा थी। जो अपने स्वरूपमें धारण की जाय—ब्रह्मके आश्रित रहे, उसे स्वधा कहते हैं। उससे वह ब्रह्म एकीभूत था। वह स्वतन्त्र सत्य नहीं थी। ब्रह्म उससे अविभागापन्न-सा था। यद्यपि आकाशतुल्य निरवयव ब्रह्मका मायाके साथ रस्सीसे घड़ेके तुल्य अवयवोंके संसर्गसे होनेवाला संयोगरूप सम्बन्ध नहीं हो सकता, तन्तुपटके तुल्य दोनोंमें कारणकार्यभाव न होनेसे समवायसम्बन्ध भी नहीं सध सकता, तथापि अविद्यासे माया और उसके सम्बन्धका अध्यास था। 'मायासे युक्त ब्रह्म था' इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रह्म मायातुल्य अनिर्वचनीय (मिथ्या) था। 'ब्रह्मके समाश्रित माया थी' इसका अर्थ यह नहीं कि वह ब्रह्मतुल्य सत्य थी। मायासे अभिन्न ब्रह्म और ब्रह्मसे अभिन्न माया होनेपर भी ब्रह्म और माया पर्याय न होनेके कारण अविभागयुक्त होनेपर भी स्वरूपत: दोनोंमें भेद था ही।

कहा जा सकता है कि "असङ्ग, अकर्त्ता, स्वप्रकाश, सर्वविचित्रताशून्य ब्रह्मका मायाके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं सिद्ध होता। स्वगतभेदशून्य ब्रह्ममें माया स्वगत होकर समवायसम्बन्धसे नहीं रह सकती। चिद्रूप ब्रह्मके विरूप होनेसे माया सजातीय (अनुरूप) होकर ब्रह्मसे संयुक्त नहीं हो सकती। अजा होती हुई विजातीय (विरूप) होनेपर भी स्वप्रकाश असङ्ग ब्रह्मसे संयुक्त नहीं हो सकती। ऐसी दशामें आगमसिद्ध त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही महाप्रलयमें रहती है। पूर्वोक्त ब्रह्मका पुरुषपरक अर्थ कर लेनेपर उसका सहभावमात्र सिद्ध होता है न कि जगत्कारणरूपसे अवस्थान। जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण होनेकी योग्यता होनेके कारण जगद्बीज सांख्योक्त प्रधान ही हो सकता है, वेदान्तोक्त पुरुष या परब्रह्म नहीं।"

उक्त आशङ्काका समाधान यह है कि यद्यपि ब्रह्म असङ्ग है, तथापि रज्जुमें सर्पतुल्य ब्रह्ममें माया और उसके आविद्यक सम्बन्धका अध्यास सम्भव है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महाप्रलयमें ब्रह्मसे तादात्म्यापन्न या अविभागापन्न होकर ही स्वधा (माया) विद्यमान थी। वृक्षाश्रित अमरबेलके तुल्य ब्रह्माण्डपुष्पोत्पादिनी विचित्रशक्तियोंसे सम्पन्न माया स्वतन्त्रसत्ताशून्य होती हुई भी विद्यमान थी। वह ब्रह्मसे पृथक्-गणनाके योग्य नहीं थी। सर्वथा शक्तिमात्रकी पृथक् गणना नहीं होती। शक्तिकार्य तो उस समय था ही नहीं, फिर मायासहित सत्तत्त्व सद्वितीय हो, ऐसा सम्भव ही नहीं—

"सर्वथा शक्तिमात्रस्य न पृथग्गणना क्वचित्।
शक्तिकार्यं तु नैवास्ति द्वितीयं शङ्क्यते कथम्॥
(पञ्चदशी २.५३)

इस प्रकार अनिर्वचनीया मायाके योगसे भी ब्रह्म वस्तुतः अनिर्वाच्य न होनेके कारण ही **'आनीदवात'** (स्वतन्त्र सत्य) सिद्ध होता है। ब्रह्मके योगसे माया सत् (निर्वाच्य) नहीं होती, इसलिये **'नो सदासीत्'** यह पूर्वोक्ति चरितार्थ होती है। वायुके योगसे जैसे आकाश चञ्चल नहीं होता और आकाशके योगसे वायु स्थिर नहीं होता, अग्निके योगसे वायु मूर्त नहीं होता और वायुके योगसे अग्नि अमूर्त (नीरूप) नहीं होता; रज्जुसर्पके योगसे रज्जुतत्त्व अनिर्वाच्य नहीं होता और रज्जुयोगसे सर्प अबाध्य नहीं होता, वैसे ही मायाके योगसे ब्रह्म अनिर्वाच्य नहीं होता और ब्रह्मके योगसे माया सत् नहीं होती।

● **व्याख्येय :– 'तस्माद्धान्यन्नपरः किञ्चनास'** = 'सृष्टिसे पूर्व सबीज ब्रह्म (मायोपहित)के अतिरिक्त सर्गदशामें प्राप्त भूत-भौतिकप्रपञ्च कुछ भी नहीं था।'

● **सायणभाष्यम् – ननु दृग्दृश्याविति द्वावेव पदार्थावानीदवातं स्वधयेति तौ चेदङ्गीक्रियेते तत्किमपरमवशिष्यते यन्नासीद्रजः इत्यादिना प्रतिषिध्येत तत्राह तस्मादिति। तस्माद्ध तस्मात्खलु पूर्वोक्तान्मायासहिताद् ब्रह्मणोऽन्यत्किंचन किमपि वस्तु भूतभौतिकात्मकं जगन्नास-न बभूव। छन्दस्युभयथेति लिटः सार्वधातुकत्वादस्तेर्भूभावाभावः। ननु तदानीमन्यस्य सत्त्वनिषेधो न शंक्यः। असत्त्वे चाप्रसक्तत्वान्न निषेधोपयोग इत्यत आह पर इति। परः परस्तात् सृष्टेरूर्ध्वं वर्तमानमिदं जगत्तदानीं न बभूवेत्यर्थः। अन्यथोक्तरीत्या क्वचिदपि निषेधो न स्यादिति भावः॥२॥**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **व्याख्या** – अब प्रश्न उठता है कि "दृक् और दृश्य इन दोनोंको जब क्रमशः सत् और माया नामसे स्वीकार किया जा रहा है, तब तो सबकी विद्यमानता अपने आप ही सिद्ध हो गयी। निषेधसे क्या सिद्ध हुआ? निषेध्यके अभावमें निषेध किसका सिद्ध हुआ?"

इस शंकाका समाधान यह है कि उस समय भूत-भौतिक जगत् नहीं था, केवल मायासहित ब्रह्म था।

माना कि **'आनीदवातम्'** कहकर द्रष्टा जो कि सत् है, उसकी और **'स्वधयेति'** से माया जो कि दृश्य है, उसकी विद्यमानता प्रलयमें स्वीकार की गयी है; परन्तु इतने मात्रसे कार्यात्मक भोग्य और उसके भोक्ताकी विद्यमानता नहीं सिद्ध होती। कार्यात्मक प्रपञ्च भी वेदान्तोंमें भूत और भौतिक दो प्रकारका है। प्रथम मन्त्रमें **'नासीद्रजः'** की उक्तिसे भौतिकप्रपञ्चका और **'किमावरीवः'** की उक्तिसे आवरणस्वभाव भूतप्रपञ्चका तथा **'कुह कस्य शर्मन्'** से देश एवं भोक्ताका निषेध किया गया है। प्रकृतमन्त्रमें उक्त तथ्यकी दृढताके लिये श्रुति कहती है **'तस्माद्ध अन्यन्न किञ्चन आस'** = 'पूर्वोक्त मायासहित ब्रह्मसे (ब्रह्माधिष्ठिता मायासे) भिन्न कोई भी भूत-भौतिकरूप दृष्टिगोचर जगत् नहीं था। यद्यपि ब्रह्मसे भिन्न प्रलयदशामें ही नहीं, सर्ग (सृष्टि)दशामें भी कुछ नहीं होता; परन्तु भूत-भौतिक जगत् प्रलयदशामें न होता हुआ ही परिलक्षित नहीं होता, जबकि सर्गदशामें न होता हुआ भी परिलक्षित होता है।

फिर भी कहा जाता है कि 'प्रसक्त (प्राप्त)का प्रतिषेध होता है, अप्रसक्त (अप्राप्त)का नहीं' इस नियमके अनुसार जब प्रलयमें जगत् प्राप्त ही नहीं था, तब उसके निषेधका महत्त्व भी क्या?' इस शङ्काका परिहार करनेके लिये श्रुतिने **'परः'** पदका प्रयोग किया है। (परः = परस्तात्, सृष्टेः ऊर्ध्वम्) वर्तमान यह जगत् उस समय नहीं था। यदि कहीं भी प्राप्तका कहीं भी निषेध हो ही नहीं, या किसी भी प्राप्तका किसीमें भी निषेध हो ही नहीं, तब तो निषेधमुखसे वर्णन ही असंगत हो जायगा। अन्यत्र और अन्यरूप (व्यावहारिकरूप)से प्राप्त सर्पादिका रज्जु आदिमें निषेध मान्य ही है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभिप्राय यह है कि माया दृश्य अवश्य है; साथ ही कार्य और कारण दोनोंके लिये प्रसङ्गानुसार मायाशब्दका प्रयोग विहित है। **'माया ह्येषा मया सृष्टा'** (महा० शान्तिपर्वणि ३३९.४५, ४५$\frac{१}{२}$) की उक्तिसे कार्यकोटिकी मायाका प्रतिपादन किया गया है। **'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'** (श्वेताश्वतरोपनिषत् ४.१०) की उक्तिसे कारणकोटिकी मायाका प्रतिपादन किया गया है। तथापि कार्यकोटिकी मायाका प्रतिषेध प्रलयदशामें अभीष्ट होनेसे कारणभूता 'मूलमाया'के अतिरिक्त कोई भी दृश्यरूप कार्यात्मक प्रपञ्च नहीं था।

अनात्मप्रपञ्चके भूत, भौतिक, प्राकृत और प्रकृति ये चार विभाग सांख्यसम्मत हैं। महत्, अहम्, ज्ञानेन्द्रियपञ्चक, कर्मेन्द्रियपञ्चक और मन ये तेरह तत्त्व सांख्यसिद्धान्तमें न तो भूत हैं और न भौतिक, ये प्राकृत अवश्य हैं। इनमें प्रकृतिका प्रथम कार्य (परिणाम) होनेसे महत् साक्षात् (मुख्य) प्राकृत है। 'अहम्' महत्का कार्य है। मन और इन्द्रियाँ आहङ्कारिक हैं। पञ्च तन्मात्राएँ आहंकारिक होती हुई भूत हैं। पञ्च महाभूत भूत होते हुए भौतिक हैं। स्थूल जगत् पञ्च भूतोंके संस्थानविशेष या तारतम्यज संघातमात्र (न कि विजातीयपरिणाम) होनेसे भौतिक हैं। वेदान्तमतमें महत् और अहम्की माया और पञ्चभूतोंके मध्य स्वीकृति नहीं है। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन ये भौतिक मान्य हैं। इस प्रकार वेदान्तमतमें भूत, भौतिक और माया ये तीन प्रभेद ही अनात्मप्रपञ्चके सिद्ध होते हैं। इन तीनोंके मिथ्यात्वका अचञ्चल निश्चय हो जानेपर सत्तत्त्व सर्वथा अद्वैत ही सिद्ध होता है—

"भूतभौतिकमायानामसत्त्वेऽत्यन्तवासिते।
सद्वस्त्वद्वैतमित्येषा धीर्विपर्येति न क्वचित्॥"
(पञ्चदशी २.९८)

पूर्वोक्त विभागोंका भी सांख्यनयानुसार प्रकृति तथा प्राकृत और वेदान्तनयानुसार माया और मायिक दो विभाग कर देनेपर समस्त अनात्मवस्तुओंका ग्रहण हो जाता है। **'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'** (श्वेता० ४.१०) इस श्रुतिके अनुसार मायाके लिये प्रकृति शब्दका प्रयोग संगत है।

वेदार्थपारिजातकार श्रीसद्गुरुदेवके अनुसार—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

- "महाकारणे मृत्योरपि लयःश्रूयते। 'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः। मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥' (कठोप० १.२.२५) प्राणिनामवस्थानरूपममृतं तु कुतस्त्यम् ?"

- "ननु तर्हि कथं तदानीमिति कालवाची प्रत्ययः? इति चेन्न, तादृक्प्रत्ययस्योपचारात्। यथेदानीन्तननिषेधस्य कालोऽवच्छेदकस्तथा मायापि तदवच्छेदहेतुरित्यवच्छेदकसाम्येनाकालेऽपि कालवाचि-प्रत्ययोपपत्तेः।"

- "यथा वह्निशक्तिर्वह्निविलक्षणा भवति, तथैव सतःशक्तिरपि सद्विलक्षणैव। तत एव तस्याः सद्रूपता प्रत्याख्याता। यथा भेदो भेद्यं भिन्दन् स्वमपि ततो भिनत्ति, यथा वा नैयायिकानामात्मा प्रमेयजातमिव स्वमपि प्रमिणोति, तथैव सा माया विश्वप्रपञ्चं कल्पयन्ती स्वमपि कल्पयति, स्वपरनिर्वाहकानां भावानां बहुलमुपलब्धेः।"

- "ननु तदानीमन्यस्य सत्त्वे निषेधो न शक्यः, असत्त्वे चाप्रसक्तत्वान्न निषेधोपयोगः, इत्यत आह—परः सृष्टेः परस्तात् सृष्टेरूर्ध्वं वर्तमानमिदं जगत् तदानीं न बभूव। अन्यथोक्तरीत्या क्वचिदपि निषेधो न स्यादिति भावः।" (पृ० १२२१-१२२३)

"महाकारणमें मृत्युका भी लय माना जाता है। **'यस्य ब्रह्म च'** इस कठश्रुतिके अनुसार उक्त तथ्य सिद्ध है। जब मृत्युकी कोई स्थिति नहीं है और मृत्युसहित सभी प्राणियोंका उपसंहार भी उस महाप्रलयमें हो चुका है, उस अमृतकी स्थिति कैसे रह सकती है, जो कि प्राणियोंके रहनेपर ही बन सकती है॥"

"तो फिर **'तदानीम्'** (उस समय) इस कालवाची शब्दका प्रयोग ही क्यों किया गया है? इस आक्षेपका समाधान यह है कि इस तरहका प्रयोग उपचारमात्र है। जैसे इदानीन्तन (इस समय) निषेधका अवच्छेदक काल है, उसी तरह माया भी उसकी अवच्छेदिका है। इसी अवच्छेदककी समानताके आधारपर अकालमें भी कालवाचक शब्दका प्रयोग हो सकता है।"

"जैसे अग्निकी शक्ति उससे विलक्षण होती है; वैसे ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत् की शक्ति भी सतसे विलक्षण होती है। इसीलिये उसकी सद्रूपताका निषेध किया जाता है। जैसे भेद, जिसका भेद दिखाना है, उसको अलग करते हुए स्वयं भी उससे अलग हो जाता है; अथवा जैसे नैयायिकोंका आत्मा प्रमेयका ज्ञान करनेके साथ अपने स्वरूपको भी जान लेता है, वैसे ही वह माया विश्वप्रपञ्चकी कल्पनाके साथ स्वयं अपनी भी कल्पना कर लेती है। प्रदीपादि अनेक ऐसे पदार्थ हैं, जो कि दूसरेके साथ अपना भी प्रकाश करते हैं।''

''यदि कहा जाय कि उस प्रलयावस्थामें किसी अन्यकी सत्ता है, तब उसका निषेध नहीं किया जा सकता और यदि किसीकी सत्ता नहीं है तो निषेध्य न होनेसे निषेध व्यर्थ हो जायगा तो इसका उत्तर यह है कि सृष्टि होनेके बाद जो जगत् सत्तामें आवेगा, उस जगत्की स्थिति प्रलयावस्थामें नहीं रहती। यदि ऐसा अर्थ न किया जाय तो ऊपरकी पद्धतिसे किसी निषेधकी प्रसक्ति ही न हो सकेगी।'' ॥ २ ॥

३. स्रष्टव्यपर्यालोचनसन्दर्भ

● ३. सङ्गति :– क्षीरसे एकीभूत और समाच्छादित नीरतुल्य तमस्संज्ञक अनिर्वचनीया मायासे एकीभूत और समाच्छादित नामरूपात्मक जगत्का परमेश्वरके स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तपके अमोघ प्रभावसे अभिव्यक्ति —

● मन्त्र :–

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम्।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॒त्तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑य॒तैक॑म् ॥ ३ ॥

● पदच्छेद :– तमः, आसीत्, तमसा, गूळ्हम्, अग्रे, अप्रकेतम्, सलिलम्, सर्वम्, आः, इदम्। तुच्छ्येन, आभु, अपिहितम्, यत्, आसीत्, तपसः, तत्, महिना, अजायत, एकम् ॥ ३ ॥

● मन्त्रार्थ :– अग्रे - सृष्टिके पूर्व महाप्रलयमें तमः - कार्यात्मक प्रपञ्चरूपजगत् अनिर्वचनीया मायासंज्ञक भावरूप अज्ञानान्धकारसे एकीभूत आसीत् - था। उस समय स्रष्टव्य संसार तमसा - उस अज्ञानान्धकारसे गूळ्हम् (= निगूढम्) - समाच्छादित था। इदं सर्वं सलिलम् अप्रकेतम् आः (=आसीत्) - यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् सलिल अर्थात् कारणसे सङ्गत (अविभागापन्न)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अज्ञायमान था। क्षीरसे एकीभूत नीरके तुल्य ब्रह्माधिष्ठिता प्रकृतिसे एकीभूत कार्यात्मकप्रपञ्च दुर्विज्ञेय था। **तुच्छ्येन आभु** (आसमन्ताद्भवतीति) **अपिहितम् एकम् यत् आसीत्** - तमोरूप असत्कल्प अपने उपादानकारणसे समावृत और उससे सर्वथा एकीभूत जो कार्यात्मक प्रपञ्च था **तत्** - वह **तपसः महिना** - स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप परमेश्वरके तपके अद्भुत माहात्म्यसे **अजायत** - उत्पन्न (अभिव्यक्त) हुआ॥

● **भावार्थः**— सृष्टिके पूर्व तमस् ही था। जगत्कारण तमस्से नामरूपात्मकप्रपञ्च ढका था। जैसे रात्रिका अन्धकार सब पदार्थोंको ढक लेता है, वैसे ही उस तमस्ने सबको अपने अन्दर गूढ कर रखा था। व्यवहारदशाके समान महाप्रलयदशामें आवरक (आवरण करनेवाला) तमोरूप कर्त्ता और आवर्य (आवृत होनेवाला) जगत्-रूप कर्मकी स्पष्ट पृथक्ता ज्ञात नहीं थी; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् सलिल अर्थात् कारणसे सङ्गत – पूर्णरूपसे अविभागापन्न था अथवा दुग्धमिश्रित जलतुल्य पृथक्-विज्ञानका अविषय था। वह क्षीरतुल्य तमस् यद्यपि नीरतुल्य जगत्से प्रबल-सा सिद्ध होता है; परन्तु विचारकोंकी दृष्टिमें तुच्छ अर्थात् अनिर्वचनीय ही है, केवल आवरण करनेका ही इसका स्वभाव है, कालक्रमसे लीन प्रपञ्चको प्रादुर्भूत न होने देनेका स्वभाव नहीं है। फिर तमस् प्रबल हो भी तो परमेश्वरके स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तपके अमोघ प्रभावसे तमस्से आवृत और एकीभूत विविध विचित्रताओंसे भरपूर प्रपञ्चका भी यथापूर्व व्यक्त हो जाना सम्भव है। आच्छादकका ही सर्गदशामें आच्छादन हो जाना और प्रलयदशामें लयस्थान हो जाना परमेश्वरके अमोघ माहात्म्यका द्योतक है।

जिन पदार्थोंका प्रलयमें निषेध किया गया है, वे ही पदार्थ सर्गकालमें परमात्मासे अधिष्ठित मायासे अभिव्यक्त होते हैं। उन पदार्थोंको परिपूर्ण प्रकाशस्वरूप मायाधिष्ठान निमेषादियुक्त सम्पूर्ण विश्वके स्वामी परमात्माने **'तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत'** (तै० आ० ८.६), **'यस्य ज्ञानमयं तपः'** (मु० उ० १.१.९) आदि श्रुतियोंके अनुसार स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तपसे रचा। परमात्माने मानस यथार्थसंकल्परूप ऋत, वाचिक यथार्थभाषणरूप सत्य तथा इनसे उपलक्षित धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रहादि शास्त्रीयधर्मोंको रचा। इसी प्रकार उसने रात्रि, दिन और जलसे भरपूर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समुद्रोंको उत्पन्न किया। उसने सम्वत्सरोपलक्षित सर्वकाल उत्पन्न किया – **'सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि कला मुहूर्ताः काष्ठाश्च'** (तै० आ० १०.१.२)। अहोरात्र (दिन-रात) से उपलक्षित सर्वभूतोंको व्यक्त किया। उस विधाताने पूर्वकालके अनुरूप ही कालके ध्वजरूप सूर्य, चन्द्रको तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सुखरूप द्युलोक-त्रिभुवनको रचा।

उक्त तथ्यका प्रकाश ऋतनामक म० १०, अ० १२, सू० १९०; अ० ८, व० ४७ के ३९वें सूक्तकी तीन ऋचाओंके द्वारा किया गया है —

"ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥"

● **व्याख्येय :–** 'तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे' = 'सृष्टिके पूर्व तमस् था। उससे यह जगत् आवृत था।'

● **सायणभाष्यम् — ननूक्तप्रकारेण यदि पूर्वमिदं जगन्नासीत्कथं तर्हि तस्य जन्म। जायमानस्य जनिक्रियायां कर्तृत्वेन कारकत्वात् कारकञ्च कारणावान्तरविशेष इति कारकस्य सतो नियतपूर्वक्षणवर्तित्व-स्यावश्यंभावात्। अथैतद्दोषपरिजिहीर्षया जनिक्रियायाः प्रागपि तद्विद्यत इत्युच्यते। कथं तस्य जन्म। अत आह - तमसा गूळ्हमग्र इति। अग्रे सृष्टेः प्राक् प्रलयदशायां भूतभौतिकं सर्वं जगत्तमसा गूळ्हम्। यथा नैशं तमः सर्वपदार्थजातमावृणोति तद्वत्। आत्मतत्त्वस्यावरकत्वान्मायापरसंज्ञं भावरूपाज्ञानमत्र तम इत्युच्यते। तेन तमसा निगूढं संवृतं कारणभूतेन तेनाच्छादितं भवति। आच्छादकात्तस्मात्तमसो नामरूपाभ्यां यदाविर्भवनं तदेव तस्य जन्मेत्युच्यते। एतेन कारणावस्थायामसदेव कार्यमुत्पद्यते इत्यसद्वादिनोऽसत्कार्यवादिनो ये मन्यन्ते ते प्रत्याख्याताः। ननु कारणे तमसि तज्जगदात्मकं कार्यं विद्यते चेत्कथं नासीद्रज इत्यादिनिषेधः। तत्राह - तम आसीदिति। तमो भावरूपाज्ञानं मूलकारणम्। तद्रूपता तदात्मनाम्। यतःसर्वं जगत्प्राक् तम आसीदतो निषिध्यते इत्यर्थः।**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **व्याख्या**– "यदि सृष्टिके पूर्व यह जगत् सर्वथा नहीं था तो इसका जन्म कैसे हुआ? क्योंकि **'जायते'** इस जनिक्रियाका कर्त्ता जायमान ही होता है। वह एक प्रकारका अवान्तरकारण ही होता है। ऐसी दशामें वह सृष्टिके नियतपूर्ववर्ती क्षणमें अवश्य ही रहा होगा। फिर 'कुछ नहीं था' ऐसा कहना नहीं बनता।" इस आपत्तिका वारण करनेके लिये कहते हैं—"सृष्टिके पूर्व तमस् था। उससे यह जगत् आवृत था। जैसे नैशतमस् (रात्रिका अन्धकार) सब पदार्थोंको ढक लेता है, वैसे ही उस तमस्ने सबको अपने अन्दर छिपा रखा था। वह कोई अभाव पदार्थ नहीं था। भावपदार्थ अज्ञान ही तमस् था। उसी तमस्ने जगत्को आवृत-संवृत कर रखा था। उस तमस्से नाम-रूपका आविर्भाव ही जन्म है। तात्पर्य यह है कि जो सृष्टिके पूर्व केवल असत् स्वीकार करनेवाले असद्वादी तथा असत्कार्यवादी हैं, उनका मत उक्त रीतिसे असङ्गत मान्य है।"

पूर्वोक्त प्रकारसे यदि जगत् था ही नहीं, तब तो उसका जन्म भी असङ्गत ही सिद्ध होता है। जो जायमान (जन्म लेनेवाला) होता है, वह तो जनिक्रियामें कर्तृत्वरूप होनेसे कारक होता है। जो कारक होता है वह कारणका अवान्तर विशेष होता है। ऐसी स्थितिमें कारकका सत् होना–नियत (निश्चितरूपसे) पूर्वक्षणवर्ती होना आवश्यक है। प्राप्तदोषके वारणके लिये यह माना गया है कि जन्मके पहले भी जायमान विद्यमान ही रहता है। अब प्रश्न उठता है कि पूर्व विद्यमानका जन्म कैसे होता है? इस पर श्रुति कहती है कि **'तमसागूळ्हमग्रे'** सर्व जगत् तमस्से गूढ था। जैसे रात्रिका अन्धकार सर्वपदार्थोंका आवरण करनेवाला होता है, वैसे ही वह तमस्से आच्छादित था। आत्मतत्त्वका आवरक होनेसे माया जिसका दूसरा नाम है, वह अज्ञान भावरूप ही था, उसीको तमस् कहते हैं। ज्ञानाभावरूप अज्ञान आवरक नहीं हो सकता।

'माया च तमोरूपा' (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ९), **'निरस्ताविद्या तमोमोहः'** (नृसिंह० २), **'तमः शब्देनाविद्या'** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ४.१), **'योनिः कारणमव्याकृतमाकाशं**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमव्योम माया प्रकृतिः शक्तिस्तमोऽविद्या छायाज्ञानमनृतमव्यक्त-मित्येवमादिशब्दैरभिलप्यमानैका कारणावस्था नेमिरिव नेमिः सर्वाधारो यस्याधिष्ठातुरद्वितीयस्य परमात्मनस्तमेकनेमिम्।' (श्वेताश्वतरोपनिषत् १.४, शाङ्करभाष्यम्) = **'सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं परंज्योतिस्तमसः उपरि विभागे।', 'सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिस्तमसः परमुच्यते', 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्'** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ४.१) आदि स्थलोंमें प्रयुक्त तमःशब्दसे अविद्या कही गयी है। जो योनि, कारण, अव्याकृत, आकाश, परव्योम, माया, प्रकृति, शक्ति, तमस्, अविद्या, छाया, अज्ञान, अनृत और अव्यक्त आदि नामोंसे कही जाती हैं, वह एक कारणावस्था ही जिस अधिष्ठाता अद्वितीय परमात्माकी नेमिके समान नेमि अर्थात् सम्पूर्णका आधार है -----।

ध्यान रहे, मायाको ही कहीं-कहीं अविद्या, तमस् और अज्ञान शब्दसे भी कहा गया है। यहाँ अज्ञान ज्ञानका अभावरूप नहीं, किन्तु ज्ञाननिवर्त्त्य, भावरूप, अनिर्वचनीय पदार्थ है। **'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्'** (भगवद्गीता ५.१५) इस वचनमें अज्ञानको ब्रह्मस्वरूप ज्ञानका आवरक कहा गया है। ऐसा तभी सम्भव है जब अज्ञान भावरूप हो; अभाव किसीका आवरक नहीं हो सकता।

जैसे अज्ञानको आवरक कहा गया है; वैसे ही मायाको भी आवरक कहा गया है– **'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः'** (भगवद्गीता ७.२५)।

"मैं (अस्मत्पदलक्ष्य परब्रह्म) योगमायासे आवृत हूँ। यही कारण है कि स्वप्रकाश होनेपर भी लोग मुझे नहीं जानते।"

'अहमज्ञः', 'मामहं न जानामि' इस रूपसे अज्ञानका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। 'त्वामहं न जानामि' इस रूपसे भी अज्ञानका अनुभव होता है। यदि अज्ञान, ज्ञानाभाव ही हो, तब तो उसका ऐसा अनुभव ही न सध सकेगा; क्योंकि अभावके ग्रहणमें प्रतियोगी-अनुयोगी दोनोंके ग्रहणकी अपेक्षा होती है। जैसे घट (प्रतियोगी) और भूतल (अनुयोगी) के ज्ञानके विना घटाभावका ज्ञान संभव नहीं; वैसे ही अज्ञान (प्रतियोगी) और अहमादि (अनुयोगी) के विना ज्ञानाभावका बोध संभव नहीं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि अनुयोगी-प्रतियोगीको स्वीकार न किया जाय तो ज्ञानाभावका ज्ञान नहीं हो सकता और यदि स्वीकार किया जाय तो भी ज्ञानाभावका ज्ञान नहीं हो सकता। जैसे भूतलमें एक भी घट होनेपर घटाभाव नहीं कहा जा सकता, वैसे ही एक भी ज्ञान रहनेपर ज्ञानाभाव नहीं कहा जा सकता। भावरूप अज्ञान माननेपर साक्षीसे उसका बोध हो जाता है। फिर अनुयोगी-प्रतियोगीके ग्रहणाग्रहणका कोई भी विकल्प नहीं उठता; क्योंकि भावरूप अज्ञान साक्षीके द्वारा प्रकाशित हो सकता है। यद्यपि भावरूप अज्ञानके प्रत्यक्षमें भी विशेषण या निरूपकरूपसे घटादिविषयका भान होना आवश्यक होता है, फिर उसका भी ज्ञान रहनेपर उसका अज्ञान नहीं कहा जा सकता और उसका ज्ञान न रहनेपर विशेषण ज्ञानके विना विशिष्टाज्ञानका अनुभव भी नहीं हो सकता, तथापि साक्षीके द्वारा ही अज्ञान और उसके विशेषण घटादिका भी भान होनेसे किसी भी दोषकी प्रसक्ति नहीं होती। ज्ञानरूपसे सर्ववस्तु साक्षिभास्य होती है, यह वेदान्तविदोंका सिद्धान्त (राद्धान्त, कृतान्त) है—

"ज्ञाततया अज्ञाततया वा सर्वं वस्तु साक्षिभाष्यम्"- **'घटोज्ञातः'** यहाँ जैसे ज्ञानका विषय होकर साक्षीद्वारा घट भासित होता है; वैसे ही **'घटो न ज्ञायते'** यहाँ भी अज्ञानका विषयरूपसे घट साक्षी द्वारा भासित होता है। योगनिद्रा, जडशक्ति, अचित्, अज्ञान, अविद्या, माया, प्रकृति, तमस् इत्यादि शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं।

तत्त्वज्ञाननिवर्त्य प्रपञ्च जीवाश्रित अज्ञानका कार्य सिद्ध होता है। तत्त्वज्ञानसे अज्ञान और तत्कार्य दोनोंकी निवृत्ति होती है। 'तत्त्वज्ञाननिवर्त्यत्वं बोधयितुं प्रपञ्चस्य जीवाश्रिता ज्ञानकल्पितत्वं दर्शयति' (वेदान्तपरिभाषार्थदीपिकामङ्गलाचरणे १)

'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (श्वेताश्वतरोपनिषत् ६.८) 'परमात्माकी परा शक्ति विविध प्रकारकी सुनी जाती है।' इत्यादि स्थलोंमें शक्तिरूपसे मायाका वर्णन है। कुछ महानुभाव इस शक्तिको अन्तरङ्ग और माया, प्रकृति आदिको बहिरङ्ग मानते हैं। वे भगवल्लोक, भगवद्विग्रहादिमें अन्तरङ्गा दिव्यशक्तिका उपयोग मानते हैं। वे जगन्निर्माणमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माया, अविद्यादि बहिरङ्गशक्तिका उपयोग मानते हैं। कुछ महानुभाव अचित्को प्राकृत-अप्राकृत भेदसे दो प्रकारका मानते हैं। प्राकृत अचित्से जगत्की और अप्राकृत अचित्से भगवल्लीलादिकी रचना मानते हैं। कुछ महानुभाव जगन्निर्माण अथवा लीलामयके लीलोपयोगी पदार्थोंकी सृष्टिके लिये भगवत्स्वरूपभूत ही अघटितघटनापटीयान् स्वात्मवैभव स्वीकार करते हैं। परमात्मा अविकृतपरिणाम द्वारा सर्वरूपमें व्यक्त होता है। जैसे कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, कामधेनु आदिसे तत्तत् अभीष्ट पदार्थकी सृष्टि होनेपर भी वे निर्विकार रहते हैं, वैसे ही परमात्मासे विविध विश्व बननेपर भी परमात्मा निर्विकार ही रहते हैं। विचार करनेसे विदित होता है कि स्वात्मवैभव (आत्मयोग) यदि भगवत्स्वरूप ही है, तब तो पृथक् नाम-रूप-कल्पनाकी अपेक्षा नहीं हो सकती। ऐसी स्थितिमें कृत्स्नप्रसक्ति, निरवयवत्वव्याकोपादिसूत्रगत शंकाओंका समाधान भी नहीं सध सकेगा। सम्पूर्ण ब्रह्म यदि प्रपञ्च (जगत्) बन जायगा तो मुक्तोपास्य या मुक्तोपसृप्य ब्रह्म अवशिष्ट नहीं रहेगा। यदि एकदेशेन ब्रह्म विश्व बनेगा, तब तो सावयवत्व, विकारित्वादि दोष अनिवार्य होंगे। कल्पवृक्षादिकी विलक्षणशक्तिकी महिमासे ही विलक्षण कार्य्यकारिता सिद्ध होती है।

अभिप्राय यह है कि अघटितघटनापटीयान् अचिन्त्य आत्मवैभव हम (विवर्तोपादानवादी शाङ्करवेदान्ती) भी मानते हैं। परन्तु उसे न केवल अचिन्त्य अपितु अनिर्वाच्यस्वभाव भी मानते हैं। यदि उसे परमात्मतत्त्वसे व्यतिरिक्त परमार्थसत्य मानें तो अद्वैतप्रतिपादिका श्रुतियाँ विरुद्ध होती हैं। असत् खपुष्पवत् मानें तो प्रपञ्चनिर्माणपटीयादित्व नहीं बनता (उससे प्रपञ्चोत्पत्ति नहीं सधती)। परमार्थ सत्-परमतत्त्वसे अत्यन्त अभिन्न मानें तो ब्रह्मतुल्य अविकारी-कूटस्थ होनेसे उसमें सुख-दुःख-मोहात्मक प्रपञ्चकी हेतुता नहीं बनती। फिर भेदाभेद, सत्त्वासत्त्व, विकृतत्वाविकृतत्व समान-सत्तासे एकस्थलमें हो भी नहीं सकते। श्रुतिप्रमाणके अनुरोधसे भी ऐसा मानना उपयुक्त नहीं; क्योंकि शास्त्र अज्ञातज्ञापक होते हैं, अकृतकारी नहीं। जो वस्तु जैसी है, शास्त्र उसके स्वरूपको वैसा ही बतलाते हैं, वस्तुस्वभावको अन्यथा नहीं करते। यद्यपि अन्वय-व्यतिरेकादि युक्तियों तथा वाचारम्भणादि श्रुतियोंके विचारसे 'पट' तन्तुव्यतिरिक्त नहीं होता,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किन्तु आतान-वितानात्मक तन्तुमात्र होता है; तथापि अङ्गप्रावरणादि कार्य तन्तुओंसे नहीं सधता, पटसे ही सधता है। इस प्रकार विलक्षण-अर्थक्रियानिर्वाहक होनेसे पटको तन्तुओंसे सर्वथा अभिन्न भी नहीं कह सकते। ठीक इसी प्रकार 'अघटितघटनापटीयान्' आत्मवैभव या आत्मयोगको भी परमतत्त्वापेक्षया न्यूनसत्ताक अनिर्वाच्य मानना चाहिये। ऐसा माननेपर विषमसत्ता होनेसे द्वैत और अद्वैतका विरोध भी नहीं होगा। यह नियम है कि समान सत्तावाले भावाभावोंका ही परस्पर विरोध होता है; न कि विषमसत्तावालोंका। जिस प्रकार व्यावहारिकसत्ताके रजताभाववान् शुक्तितत्त्वमें प्रातिभासिकसत्तासे रजतका सद्भाव होनेमें कोई आपत्ति नहीं। उसी प्रकार परमार्थसत्ता अद्वैत और उसकी अपेक्षासे न्यून (परमतत्त्वापेक्षया किंचिन्न्यूनसत्ताक) अर्थात् व्यावहारिकसत्तासे द्वैत होनेमें कोई विरोध नहीं। इस पक्षमें द्वैत व्यावहारिक सत्य है। व्यवहारकालमें आकाशादिवत् अबाध्य है। अर्थक्रियाकारी है। उससे समस्त लौकिक-वैदिक व्यवहार सम्पन्न होना सम्भव है। द्वैत श्रुतियोंका परम तात्पर्य्य नहीं; वह प्रमाणान्तरसिद्ध है। यदि प्रमाणान्तरसिद्धका साधक ही वेद हों तो उनका स्वतन्त्र प्रामाण्य सम्भव नहीं। क्योंकि अनुवादकका स्वतन्त्र प्रामाण्य संभव नहीं। इतर प्रमाणसे अनधिगत रूपादिमें चक्षुरादिका प्रामाण्य मान्य होता है। द्वैतमें श्रुतियोंका अवान्तर तात्पर्य मानना ही उपयुक्त है। त्रिकालाबाध्य व्यवहारातीत परमार्थसत्य स्वप्रकाशात्मक परमार्थतत्त्वके अभिप्रायसे अद्वैतवादिनी ही नहीं, अपितु समस्त श्रुतियाँ भी अपने महातात्पर्यके विषयभूत अनन्तानन्दात्मक तत्त्वमें पर्यवसित हो जाती हैं।

यदि स्वात्मवैभव अथवा अचित् किंवा अन्तरङ्गाशक्ति अधिष्ठानसे पृथक् होकर सत् है, तब तो **'सदेव सत्यम्'** (पैङ्गीरहस्यो०) यह श्रुतिसिद्धान्त बाधित होगा। यदि अत्यन्त असत् है तो कार्यकारिता न बन सकेगी। विरुद्ध होनेसे सदसद्रूपता भी नहीं कही जा सकती। फिर तो पारिशेष्यात् अनिर्वचनीय मानना होगा। इस तरह अवान्तर चाहे कितने भी भेद मान लिये जायँ, परन्तु अनिर्वचनीयरूपसे उन सबकी एकता ही है।

मिथ्याज्ञानरूप क्षणिक भ्रान्ति और उसके संस्कारके उपादानरूप 'मैं अज्ञ हूँ' इस अनुभवसिद्ध संसारका बीजभूत अनादि, अनिर्वाच्य अभावव्यतिरिक्त अज्ञान अग्रहणकी निवृत्तिरूप ज्ञानसे दाह्य है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"नन्वनाद्यनिर्वाच्यमज्ञानं संसारस्य बीजभूतं नास्त्येव। यद्-ब्रह्मणो विशेषणं भवति। अग्रहणमिथ्याज्ञानतत्संस्काराणामज्ञानशब्दवाच्य-त्वात्तत्राऽऽह ज्ञानेति। ज्ञानदाह्यबीजाभावे च ज्ञानानर्थक्यप्रसङ्गः। अज्ञोऽ-हमित्यज्ञानमपरोक्षमग्रहणस्य च ग्रहणप्रागभावस्य नापरोक्षत्वमिन्द्रियसन्नि-कर्षाभावादनुपलब्धिगम्यत्वाच्च भ्रान्तितत्संस्कारयोश्चाभावेतरकार्यत्वादु-पादानापेक्षणादात्मनश्च केवलस्यातद्धेतुत्वात्तदुपादानत्वेनानाद्यज्ञानसिद्धिः। किञ्च 'देवदत्तप्रमा, तन्निष्ठप्रमाप्रागभावातिरिक्ताऽनादिप्रध्वंसिनी, प्रमात्वाद्यज्ञदत्तप्रमावत्।' न च तदभावे सम्यग्ज्ञानार्थवत्त्वम्। क्षणिकत्वेन भ्रान्तेस्तदनिवर्त्यत्वात्संस्कारस्य च सत्यपि सम्यग्ज्ञाने क्वचिदनुवृत्तिदर्शनान्न चाग्रहणस्य तन्निवर्त्यत्वम्। ज्ञानस्य तन्निवृत्तित्वात्। अतो ज्ञानदाह्यं संसारबीजभूतमनाद्यनिर्वाच्यमज्ञानं ज्ञानस्यार्थवत्त्वायाऽऽस्थेयम्। अन्यथा तदानर्थक्यप्रसङ्गादित्यर्थः।" (आनन्दगिरिः, माण्डूक्यकारिका १.२)

'ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः' (भगवद्गीता ५.१६), **'भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः'** (नारदपरिव्राजकोपनिषत् ९.९), **'एवं त्रिधा नश्यति चात्ममाया'** (वराहोपनिषत् २.६९), **'माया तत्कार्यविलयेनेश्वरत्वं न जीवता'** (वराहोपनिषत् २.५२) इत्यादि वचनोंके अनुसार माया, अज्ञान ज्ञाननिवर्त्य हैं; अतः अनिर्वचनीय सिद्ध हैं। **'मूलाविद्या सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या'** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३), **'अनिर्वचनीया सैव माया'** (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् ४) आदि वचनोंसे माया या अविद्या अनिर्वचनीया सिद्ध होती है; सत्यकी शक्ति होनेसे भी मायाकी अनिर्वचनीयता सिद्ध होती है। क्योंकि जैसे वह्निकी शक्ति वह्निरूप नहीं होती, किन्तु वह्निसे विलक्षण होती है, वैसे ही सत्की शक्ति सद्रूप नहीं होती, किन्तु सत्से विलक्षण होती है। वह सद्विलक्षणता भी अनिर्वचनीयता ही है। **'ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृतिः'** (निरालम्बोपनिषत्), **'परास्य शक्तिः'** (श्वेताश्वतरोपनिषत् ६.८), **'साक्षाच्छक्तिर्भगवतः'** (सीतोपनिषत् ६) आदि वचनोंके अनुसार माया (प्रकृति) सत् या ब्रह्मकी शक्ति सिद्ध होती है।

इस प्रकार **'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्'** (गी० ५.१५) आदि स्थलोंमें अज्ञानको आवरक माना गया है। जिस ज्ञानका आवरक वह अज्ञान है, यदि उसीका अभाव हो तो भला सहावस्थान (सहस्थिति) के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभावमें आच्छादक कैसे हो? भावाभावका युगपत् अवस्थान असङ्गत है। **'न किञ्चिदवेदिषम्'** (मैंने कुछ नहीं जाना) सुषुप्तिसे व्युत्थानदशामें इस प्रकारका बोध सौषुप्ततमस्का परामर्श (स्मरण) ही सिद्ध होता है; क्योंकि स्मरण अनुभवपूर्वक होता है, अतः सुप्तिमें अज्ञानका अनुभव मान्य है। अनुभवको ज्ञान कहते हैं। इससे सिद्ध है कि अज्ञान और ज्ञानकी एककालावच्छेदेन सहस्थिति अज्ञानको ज्ञानाभाव नहीं सिद्ध होने देती —

"सुप्तोत्थितस्य सौषुप्ततमोबोधो भवेत्स्मृतिः।
सा चावबुद्धविषयाऽवबुद्धं तत्तदा तमः॥"
(पञ्चदशी १.५)

इस प्रकार प्रलयकालिक तमस्से नामरूपात्मक जगत् आच्छादित होता है। आच्छादक उस तमस्से नामरूपात्मक जगत्का जो आविर्भाव है, वही उसका जन्म है। इसी रीतिसे तिरोभाव ही नाश है। कारणव्यापारकी सार्थकता सांख्यसिद्धान्तानुसार अनभिव्यक्तकी अभिव्यक्तिमें है और प्रलयदशामें अभिव्यक्तकी अनभिव्यक्तिमें है; जबकि वेदान्तानुसार सर्गदशामें अनिर्वचनीय तमस् (माया, अज्ञान) से अनिर्वचनीय कार्योत्पत्तिमें है और प्रलयदशामें अनिर्वचनीय कार्यकी अनिर्वचनीय कारणरूपताकी प्राप्तिमें है। इस तरह असत्कार्यवाद और असद्वादका निराकरण (प्रत्याख्यान) कर दिया गया।

यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये कि "शून्यवाद न सही पर असत्कार्यपर्यवसायी सत्कार्यवाद और असत्कारणवादपर्यवसायी असत्कार्यवाद तो अवश्य ही सिद्ध होता है; क्योंकि अनभिव्यक्ति स्वीकार कर लेने मात्रसे अभिव्यक्तिके अभावसे अभिव्यक्तिकी स्वीकृति असत्कार्यपर्यवसायी सत्कार्यवादको सिद्ध करती है। पुनः अभिव्यक्तिकी अनभिव्यक्ति प्रध्वंसाभावको सिद्ध करती है। इस प्रकार अभिव्यक्तिका प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव मान्य होनेके कारण सत्कार्यवाद असत्कार्यवादके रूपमें परिणत हो जाता है। **'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा'** (माण्डूक्यकारिका ४.३१) = 'आदि और अन्तमें जो नहीं है, मध्यमें भी वह नहीं है' **'आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात्। पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत्॥'**, **'आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां यद्ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि॥'** (भागवते ११.१९.१६; ६.१६.३६) - 'आदि-अन्त और मध्यमें रहनेवाला अमृत (सत्य) है।' इस न्यायके अनुसार आदि, अन्तमें अभावरूप पदार्थ मध्यमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी अभावसम्पन्न ही सिद्ध होता है; अतः असद्वाद ही वैदिकदर्शनका विश्रामस्थान है।'' उक्त पक्षका परिहार प्रस्तुत करते हुए पहले ही मायाको अनिर्वचनीय मानते हुए असत्के व्यावर्तनके लिये उसे भावरूप माना गया है। यहाँ वास्तविक उत्पत्तिका मण्डन नहीं किया जा रहा है। सत् या असत् दोनोंमें किसीका भी तात्त्विक जन्म सम्भव नहीं है। अन्तर इतना है कि असत्का तो तात्त्विक और अतात्त्विक (मायासे) दोनों प्रकारका जन्म सम्भव नहीं है; जबकि सत्का मायासे (मायिक) जन्म ही सम्भव है। अतः सदद्वैतपर्यवसायी अजातवाद वैदिकदर्शनका विश्रामस्थल है। कहा भी है –

''सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः।
तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते॥
असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव जायते।
वन्ध्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वापि जायते॥''
(माण्डूक्यकारिका ३.२७, २८)

यदि कारण तमस्में कार्यात्मक जगत् विद्यमान ही था तो 'रजस् (लोक) नहीं था' इस प्रकार उसका निषेध क्यों किया गया? इसका उत्तर देते हैं–रजस् नहीं था, पर तमस् था। तमस्से सांख्यसम्मत तमोगुणका ग्रहण नहीं है; किन्तु वेदान्तसम्मत भावरूप अज्ञानको ही तमस् बताया गया है। सम्पूर्ण जगत् पहले अज्ञानरूप था; अतः उसका निषेध किया गया है।

सांख्यशैलीमें तमस्को मोहात्मक, अज्ञानात्मक, अज्ञानज, ज्ञानावरक और अधोगतिमें हेतु तथा अज्ञानप्रद माना गया है—

''तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥'' ८॥
''ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥'' ९॥
''अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥'' १३॥
''तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥'' १५॥
''अज्ञानं तमसः फलम्॥'' १६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥" १७॥
"जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥" १८॥
(भगवद्गीता १४)

तमोगुण भी दो प्रकारका होता है–एक व्यवहारदशाका और दूसरा सुषुप्ति या प्रलयदशाका। सुषुप्ति या प्रलयको तथा प्रलयकर्ता रुद्रको तामस माना गया है। इस दृष्टिसे 'प्रलयमें तमस् था' यह कहना भी उपयुक्त है। ऐसी स्थितिमें तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाके लिये 'तमस्का प्रयोग रूढ है। वेदान्तप्रस्थानमें वह साम्यावस्थारूप तमस् ब्रह्माश्रित था। ब्रह्मकी शक्तिरूप था। इतना विशेष है।

'तम आसीत्' कहनेपर जो तमस्का सद्भाव (अस्तित्व) सिद्ध होता है, वह सत् (निर्वाच्य) परमात्माके योगसे ही, न कि स्वतः। मायारूप तमस्के स्वतः सत्त्वका **'न सदासीत्'** (१) की उक्तिसे निषेध किया गया है।

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं किन्त्वभूत्तमः।
सद्योगात्तमसः सत्त्वं न स्वतस्तन्निषेधनात्॥"
(पञ्चदशी २.५०)

"उस समय 'रजस्'नहीं था" अर्थात् सर्गदशामें सुलभ व्यवहार, व्यवहारोपयुक्त क्रिया, कारक और फलात्मक संसार नहीं था; क्योंकि रजस्से क्रिया, कर्म, कर्मोपयुक्त राग या तृष्णाकी सिद्धि होती है,उसके न रहने पर सुषुप्ति आदिमें व्यवहारका लोप हो जाता है। उपष्टम्भात्मक (विक्षेपात्मक) रजस्के कारण ही व्यवहार सम्भव है। अवष्टम्भात्मक तमस्के कारण व्यवहारलोप सम्भव है। प्रकाशात्मक सत्त्वके योगसे समाधि सम्भव है अथवा बाध सम्भव है। 'तमस्' रजस्के (प्रपञ्चके) विलयमें तथा सत्त्व उसके विस्मरण या बाधमें हेतु है।

समाधिमें सत्त्वगुणका उत्कर्ष होता है। उसमें वृत्तिका विस्मरण मान्य है। दूसरे शब्दोंमें अहम्का बाध तत्त्वज्ञानसे, विस्मरण समाधिसे और विलय सुषुप्तिसे संभव है। अथवा समाधि और सुषुप्ति दोनों लयप्रधान होनेपर भी सत्त्वके उत्कर्षके कारण समाधि विस्मरणप्रधान है। समाधिमें प्राणस्पन्दनसहित चित्तवृतियोंका निरोध होता है। सुषुप्तिमें प्राणस्पन्दनसहित निद्रावृत्तिकी विद्यमानता रहती है। ब्रह्मात्मविज्ञानसे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अद्वैतस्फुरणदशामें अहम्सहित द्वैतका विस्मरण (अस्फुरण) समाधि है—

'अज्ञाने बुद्धिविलये निद्रा सा भण्यते बुधैः।'
(वराहोपनिषत् २.५९)

'समाधिः संविदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति।'
(श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् १०१, अन्नपूर्णो० ५.७५)

'समाहिता नित्यतृप्ता यथाभूतार्थदर्शिनी।
ब्रह्मन् समाधिशब्देन परा प्रज्ञोच्यते बुधैः।'
(अन्नपूर्णोपनिषत् १.४८)

'तत्त्वावबोध एवासौ वासनातृणपावकः।
प्रोक्तः समाधिशब्देन न तु तूष्णीमवस्थितिः।'
(महोपनिषत् ४.१२)

'सुषुप्तिसमाध्योर्मनोलयाविशेषेऽपि महदस्त्युभयोर्भेदः। तमसि लीनत्वान्मुक्तिहेतुत्वाभावाच्च। समाधौ मृदित-तमोविकारस्य तदाकाराकारिताखण्डाकारवृत्त्यात्मक-साक्षिचैतन्ये प्रपञ्चलयः संपद्यते। प्रपञ्चस्य मनःक-ल्पितत्वात्। ततो भेदाभावात् कदाचिद्बहिर्गतेऽपि मिथ्यात्वभानात्।'
(मण्डलब्राह्मणोपनिषत् २.३)

'समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः'
(योगतत्त्वोपनिषत् १०७)

'निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते॥'
(तेजोबिन्दूपनिषत् १.३७)

'यावद्यावदहंकारो विस्मृतोऽभ्यासयोगतः।
तावत्तावत्सूक्ष्मदृष्टेर्निजानन्दोऽनुमीयते॥
सर्वात्मना विस्मृतः सन्सूक्ष्मतां परमां व्रजेत्।
अलीनत्वान्न निद्रैषा ततो देहोऽपि नो पतेत्॥'
(पञ्चदशी ११.९८,९९)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रुत्यन्तरमें **'न तमः'** कहकर तमस्का प्रतिषेध 'सत्' की विद्यमानताके अभिप्रायसे है अथवा तेजस् और तमस् दोनोंका प्रतिषेध प्राप्त होनेसे कार्यात्मक तमस्का प्रतिषेध है तथा **'सत्किञ्चिदवशिष्यते'** की उक्ति सत्की प्रधानतासे है—

> **''ततः स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम्।**
> **अनाख्यमनभिव्यक्तं सत्किञ्चिदवशिष्यते॥'**
> (योगकुण्डल्युपनिषत् ३, २४–२४ $\frac{१}{२}$, महोपनिषत् २.६५,
> योगवाशिष्ठः ३.१.११, पञ्चदशी २.४० पाठा० 'तदा')

पञ्चदशीश्रीरामकृष्णटीकाके अनुसार श्लोकका अर्थ इस प्रकार है– ''तदेति। **स्तिमितं** निश्चलम्, **गम्भीरं** दुरवगाहं मनसा विषयीकर्तुमशक्यम्, न **तेजः** तेजस्त्वानधिकरणम्, न **तमः** तमसो विलक्षणं अनावरणस्वभावम्, **ततं** व्याप्तम्, **अनाख्यं** व्याख्यातुमशक्यम्, **अनभिव्यक्तं** चक्षुरादिभिरप्यविषयीकृतम्, **सत्** शून्यविलक्षणम्, अतएव **किञ्चित्** इदन्तया निर्देष्टुमशक्यम्, **अवशिष्यते** द्वैतनिषेधावधित्वेनावतिष्ठत इत्यर्थः।''

प्रलयदशामें निश्चल, दुरवगाह, मनका भी अविषय, चन्द्रादि अधिदैवसे भी अतीत, आवरक तमस्से सुदूर, अनभिव्यक्त, अनाख्य-निरूपणका अविषय; शून्यसे सुदूर अशेषविशेषातीत व्यापक स्वप्रकाश सत् ही अवशिष्ट था। विष्णुपुराणमें भी **'नासीत्तमोज्योतिः'** (१.२.२३) उक्त अभिप्रायसे ही कहा गया है।

उक्त वचन असत्कारणवाद, असत्कार्यवाद, अनीश्वरवाद या अब्रह्मवाद, परमाणुवाद, आरम्भवाद, परिणामवाद, जडवाद, क्षणिक विज्ञानवाद, खण्डप्रलयवाद या 'न कदाचिदनीदृशजगद्वाद' के व्यावर्तनके अभिप्रायसे है।

यद्यपि मायायुक्त ब्रह्म ही प्रलयदशामें अवशिष्ट था, निर्बीज ब्रह्मसे जगत्की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं, निर्बीजमें लय भी सम्भव नहीं, फिर भी माया या तमस्को ही शेष माननेपर प्रस्थानान्तरसिद्ध प्रधानकी सिद्धि होती है; अतः माया, तमस् या प्रकृतिसे भी अतीत ब्रह्मका बोध श्रुतिको अभीष्ट है। उस ब्रह्मका जगत्को विवर्त मानना उपयुक्त ही है। इस तरह जगत्कारणरूपसे भी उसका वर्णन अभीष्ट ही है। नैरात्म्यवाद और जडवादके उच्छेदके लिये ब्रह्मवादका महत्त्व है तथा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिणामवाद और आरम्भवादके उच्छेदके लिये मायावादका महत्त्व है। वस्तुस्थितिको हृदयङ्गम करनेके लिये दोनों विधाएँ आवश्यक हैं। सर्वथा निर्धर्मक, निरीह, निर्गुण, सकलविचित्रताशून्य ब्रह्मसे सृष्टि सम्भव नहीं। लोकमें शुद्ध सोनासे निर्मित आभूषण टिकाऊ (स्थिर) नहीं रह पाता, किञ्चित् ताम्रका योग उसके साथ अपेक्षित होता है। सृष्टिके उपयुक्त ब्रह्मके साथ स्वात्मवैभव या स्वात्ममायाके रूपमें शक्तिका योग अपेक्षित है। वह शक्ति भी सर्वथा ब्रह्मरूप हो तो द्वैत अनिवार्य है और सृष्टि असम्भव है। ऐसी स्थितिमें शक्तिको बन्ध्यापुत्र और ब्रह्म- दोनोंसे विलक्षण स्वीकार करते ही मायावादकी प्राप्ति होती है। इसी अभिप्रायसे कहा गया है—

"मनोजृम्भणराहित्ये यथा साक्षी निराकुलः।
मायाजृम्भणतः पूर्वं सत्तथैव निराकुलम्॥
निस्तत्त्वा कार्यगम्याऽस्य शक्तिर्मायाग्निशक्तिवत्।
न हि शक्तिः क्वचित् कैश्चिद् बुध्यते कार्यतःपुरा॥"

(पञ्चदशी २.४६, ४७)

मन जब कलनाशून्य होता है, तब साक्षी निराकुल (शान्त) होता है। माया जब कलनाशून्य होती है, तब ब्रह्म शान्त (प्रपञ्चरूप विक्षेपरहित) होता है। वह्निशक्तिवत् मायाशक्ति कार्यानुमेया है। शक्ति किसी प्रकारकी क्यों न हो, कार्यानुमेया ही होती है।

● **व्याख्येय :— 'अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्'** = आवरण करनेवाला तमस् कर्त्ता है। आवृत होनेवाला जगत् कर्म है। यद्यपि दोनोंका एक होना असङ्गत है, तथापि व्यवहारदशाके समान महाप्रलयमें दोनोंकी स्पष्ट पृथक्ता विदित नहीं होती, क्योंकि उस समय यह सम्पूर्ण जगत् सलिल अर्थात् कारणसे सङ्गत पूर्णरूपसे अविभागापन्न था। अथवा जैसे दुग्धमिश्रित जलका पृथक्विज्ञान कठिन है, वैसे ही तमस्से मिले हुए जगत्का ज्ञान कठिन था।

● **सायणभाष्यम् — नन्वावरकत्वादावरकं तमः कर्तृ आवर्यत्वाज्जगत्कर्म। कथं तयोः कर्मकर्त्रोस्तादात्म्यम्! तत्राह - अप्रकेतमिति। अप्रकेतम-प्रज्ञायमानम्। अयमर्थः। यद्यपि जगतस्तमसश्च कर्मकर्तृभावो यौक्तिको विद्यते तथापि व्यवहारदशायामिव तस्यां दशायां नामरूपाभ्यां विस्पष्टं**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न ज्ञायत इति तादात्म्यवर्णनम्। अत एव मनुना स्मर्यते ''आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥'' (मनु० १.५) **इति। कुतो वा न प्रज्ञायते तत्राह - सलिलम्। षल गतौ। औणादिक इलच्। इदं दृश्यमानं सर्वं जगत् सलिलं कारणेन संगतमविभागापन्नमाः आसीत्। अस्तेर्लङि तिपि बहुलं छन्दसीतीडभावे 'हल्ङ्याब्भ्यः' इति तिलोपे तिप्यनस्तेः** (पा० ८.२.७३) **इति पर्युदासाद्दकाराभावः। यद्वा सलिलमिति लुप्तोपमं सलिलमिव। यथा क्षीरेणाविभागापन्नं नीरं दुर्विज्ञानं तथा तमसाविभागापन्नं जगन्न शक्यविज्ञानमित्यर्थः।**

● **व्याख्या -** अब प्रश्न उठता है कि आवरण करनेवाला होनेके कारण तमस् कर्त्ता है, आवृत होनेवाला होनेके कारण जगत् कर्म है, कर्म और कर्त्ता दोनों महाप्रलयमें एक कैसे हो सकते हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें कहा गया है - **'अप्रकेतम्'** अप्रकेत शब्दका अर्थ है विशेषरूपसे ज्ञायमान न होना। ठीक है, जगत् और तमस्में युक्तिसे कर्म और कर्तृभावकी सिद्धि होती है; तथापि व्यवहारदशाके समान महाप्रलयमें दोनोंकी स्पष्ट पृथक्ता ज्ञात नहीं होती; क्योंकि जगत् सलिल है। 'षल' धातु गत्यर्थक है, 'इलच्' प्रत्यय है। यह संपूर्ण जगत् सलिल अर्थात् कारणसे सङ्गत-पूर्णरूपसे अविभागापन्न था। अथवा जैसे दुग्धमिश्रित जलका विज्ञान कठिन है; वैसे ही तमस्से मिले हुए जगत्का ज्ञान कठिन था।

परसमवेतक्रियाफलशालि कर्म होता है, जबकि स्वसमवेत-क्रियाफलशालि कर्त्ता। **'चैत्रो नगरं गच्छति'** यहाँ चैत्र समवेत (समवाय सम्बन्धसे वृत्त = स्थित) गमनरूप क्रियासे जनित चैत्र और नगरका संयोगरूप फल है। उस संयोगके यद्यपि चैत्र और नगर दोनों आश्रय हैं, तथापि कर्मता नगरमें चरितार्थ होती है, न कि चैत्रमें; क्योंकि वह गमनक्रिया चैत्रमें समवेत है। चैत्र नगरसे भिन्न है, अपनेसे नहीं; क्योंकि वह स्वसमवेतक्रियाजन्यफल (संयोग)का आश्रय है, परसमवेतक्रियाजन्यफलका नहीं। **'यथा हि चैत्रसमवेतक्रियया चैत्रनगरप्राप्तावुभयसमवेतायामपि क्रियमाणायां नगरस्यैव कर्मता परसमवेतक्रियाफलशालित्वात्। न तु चैत्रस्य क्रियाफलशालिनोऽपि, चैत्रसमवायाद् गमनक्रियाया इति।'** इस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार जैसे चैत्ररूप कर्ता और ग्रामरूप कर्म दोनोंकी सहस्थिति सम्भव होनेपर भी दोनोंका ऐक्य सम्भव नहीं, वैसे ही महाप्रलयमें आवरक तमस् और आवर्य जगत्की सहस्थिति सम्भव होनेपर भी दोनोंका ऐक्य सम्भव नहीं। ऐसा होनेपर भी आवर्य जगत्के उपादेय होनेसे और आवरक तमस्के उपादान होनेसे दोनोंका ऐक्य भी सम्भव है। यही कारण है कि जगत् प्रलयदशामें विशेषरूपसे ज्ञायमान नहीं होता। जैसे स्निग्धमृत्तिकामें और पिण्डावस्थामें स्थित घट विशेषरूपसे ज्ञायमान नहीं होता।

सृष्टि-प्रलयसन्दर्भमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस प्रपञ्चका उपादानकारण प्रकृति है। परमात्मा इसका अधिष्ठान है। इसको प्रकट करनेवाला काल है। व्यवहारदशाकी त्रिविधता वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्मरूप परमेश्वरकी पालनप्रवृत्तिके अनुरूप जबतक ईक्षणशक्ति काम करती रहती है, तब तक जीवोंके कर्मोपभोगके लिये पिता-पुत्रादि कारण-कार्यरूपसे यह सृष्टिचक्र निरन्तर चलता रहता है। महाप्रलयका योग समुपस्थित होनेपर सर्गक्रमके विपरीतक्रमसे पृथिव्यादि अपने कारणमें विलीन होते हैं। ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्तिप्रधान (ज्ञानक्रियोभयशक्तिप्रधान) प्रथम कार्यात्मक महत्तत्त्व त्रिगुणके द्वारसे अव्यक्त प्रकृतिमें लीन होता है। प्रकृतिका क्षोभ कालाधीन है; अतः वह कालसे एकीभूतरूप लयको प्राप्त होती है। काल अपने चेतक ज्ञानमय जीवमें तादात्म्यापत्तिरूप लयको प्राप्त होता है। जीव अपनी शिवरूपतारूप लयको प्राप्त होता है। अभिप्राय यह है कि प्रलयमें जीव स्वरूपविज्ञानके विना ही शिवभावापन्न होकर विराजता है। परमात्माकी प्रपपञ्चोन्मुखता ही उसकी जीवरूपता है। जीवकी सर्जन-संरक्षणादिके अनुरूप संकल्पमुखता ही उसकी कालरूपता है। यद्यपि परमात्माकी प्रपञ्चोन्मुखता और संकल्पमुखता अर्थात् ईक्षणोन्मुखता प्रकृतिसंज्ञक मायाके योगसे ही है; तथापि दर्पणसे अतिक्रान्त दर्पणादित्यतुल्य और धूमसे अतिक्रान्त (अतीत) ज्वालातुल्य अप्रतिममहामहिमामण्डित परमात्मदेवकी जीवरूपता और कालरूपता मायासे अतिक्रान्त है। इस दृष्टिसे विचार करें तो **'न मृत्युरासीत्'** (ना० सू० २) की उक्तिसे मृत्युसंज्ञक कालका अभाव महाप्रलयमें विवक्षित है। **'अमृतं न तर्हि'** (ना० सू० २) की उक्तिसे अमृतसंज्ञक जीवका महाप्रलयमें निषेध (लय)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विवक्षित है। जीवका लयस्थान शिवस्वरूप परमात्मा है। वह सबका परम और चरम मूल है। अतः उसका लय नहीं होता—

"प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः।
सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम्॥
सर्गः प्रवर्तते तावत् पौर्वापर्येण नित्यशः।
महान्गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम्॥"
"स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः।
तेऽव्यक्ते सम्प्रलीयन्ते तत्काले लीयतेऽव्यये॥
कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे।
आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः॥"
(श्रीमद्भागवते ११.२४.१९, २०, २६,२७)

मनुने इसी अभिप्रायसे कहा है—

'आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥'
(मनु० १.५)

"इदमित्यध्यक्षेण प्रतिभासमानत्वाज्जगन्निर्दिश्यते। इदं जगत् तमोभूतं तमसि स्थितं लीनमासीत्। तमःशब्देन गुणवृत्त्या प्रकृतिर्निर्दिश्यते तम इव तमः। यथा तमसि लीनाः पदार्था अध्यक्षेण न प्रकाश्यन्त एवं प्रकृतिलीना अपि भावा नावगम्यन्त इति गुणयोगः। प्रलयकाले सूक्ष्मरूपतया प्रकृतौ लीनमासीदित्यर्थः। तथा च श्रुतिः 'तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे' (ऋ० सं० १०.११.३.१२९) इति। प्रकृतिरपि ब्रह्मात्मनाऽव्याकृताऽऽसीत्। अत एव अप्रज्ञातमप्रत्यक्षं सकलप्रमाणश्रेष्ठतया प्रत्यक्षगोचरः प्रज्ञात इत्युच्यते तन्न भवतीत्यप्रज्ञातम्। अलक्षणमननुमेयं लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणं लिङ्गं तदस्य नास्तीति अलक्षणम्, अप्रतर्क्यं तर्कयितुमशक्यं तदानीं वाचकस्थूलशब्दाभावाच्छब्दतोऽप्यविज्ञेयम्। एतदेव च प्रमाणत्रयं सतर्कं द्वादशाध्याये मनुनाभ्युपगतम्। अत एवाविज्ञेयमित्यर्थापत्त्याऽऽद्यगोचरमिति धरणीधरस्यापि (प) व्याख्यानम्। न च नासीदेवेति वाच्यम्, तदानीं श्रुतिसिद्धत्वात्। तथा च श्रूयते 'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्' (बृ० उ० १.४.७), छान्दोग्योपनिषच्च 'सदेव

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सोम्येदमग्र आसीत्' (६.२.१) **इदं जगत्तदेवासीत्। ब्रह्मात्मना आसीदित्यर्थः। सच्छब्दो ब्रह्मवाचकः। अत एव प्रसुप्तमिव सर्वतः। प्रथमार्थे तसिः। स्वकार्याक्षममित्यर्थः॥''** (मन्वर्थमुक्तावली)

''यह संसार महाप्रलयमें तमस्‌में लीन, अज्ञेय, चिह्नरहित, प्रमाणादि तर्कोंसे हीन अतएव अविज्ञेय तथा सर्वत्र सोये हुएके समान था॥'

''इन्द्रियग्राह्य और आत्मभास्य होनेके कारण जगत्‌को इदम् (यह) कहा गया है। प्रलयदशामें यह तमस्‌में लीन था। तमःशब्दसे यहाँ गुणवृत्तिसे प्रकृतिका निर्देश प्राप्त है। तमस्-सा तमस् था, न कि तमस् ही। जैसे तमस्‌में लीन पदार्थ इन्द्रियोंके द्वारा प्रकाशित नहीं होते हैं, वैसे ही प्रकृतिमें लीन पदार्थ भी नहीं प्रतीत होते। इस प्रकार दोनोंका गुणस्वभाव एक है। प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपसे कार्यप्रपञ्च प्रकृतिमें लीन था, ऐसा अभिप्राय है। श्रुतिने ऐसा ही कहा है— **'तम आसीत्तमसा गूढमग्रे** (ऋ० सं०)। प्रकृति भी ब्रह्मात्मरूपसे अव्याकृत थी। इसीसे वह अप्रज्ञात थी। सकलप्रमाणश्रेष्ठ प्रत्यक्षगोचर पदार्थका नाम प्रज्ञात है। जो प्रत्यक्षगोचर न हो, वह अप्रज्ञात है। वह तमस् अप्रत्यक्ष था। **'लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणं लिङ्गम्'** जिससे लक्षित होता है, उसे लक्षण या लिङ्ग (हेतु, साधन) कहते हैं। वह जिसका न हो, वह अलक्षण या अननुमेय कहा जाता है। तमस् अप्रतर्क्य अर्थात् तर्कणाशक्तिका अविषय था। उस समय वाचक स्थूलशब्द नहीं था, अतः शब्दसे भी वह अविज्ञेय ही था। अविज्ञेयका अर्थ श्रीधरणीधरजीने '(उपलक्षणविधया) अर्थापत्त्यादि प्रमाणोंसे भी अगोचर ही था', ऐसा किया है। 'नहीं था' ऐसा नहीं माना जा सकता; क्योंकि श्रुतियोंने अव्याकृत, सत् आदि नामोंसे उसका प्रतिपादन किया है। सत्-शब्द ब्रह्मवाचक है; अतः जगत् ब्रह्मात्मभावसे विद्यमान था, ऐसा अभिप्राय है। ऐसा होनेपर भी वह पूर्णतः प्रसुप्त-सा था — अर्थक्रियाकारी (स्वकार्यक्षम) नहीं था।''

भाष्यकारमहोदयद्वारा समुद्धृत मनुस्मृतिके श्लोकका उक्त अर्थ श्रीकुल्लूकभट्टप्रणीत मन्वर्थ-मुक्तावलीके अनुरूप है।

''धर्मप्रकरणमें श्रुति-स्मृतियोंमें पूर्वोक्त रीतिसे ब्रह्मप्रतिपादन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुपयुक्त है।'' ऐसा नहीं कहा जा सकता। कर्मकाण्डमें नासदीयसूक्तम् आदिके द्वारा ब्रह्मप्रतिपादनके तुल्य धर्मशास्त्रोंमें ब्रह्मप्रतिपादन उपयुक्त है। मनुस्मृति यद्यपि धर्मशास्त्र है, तथापि धर्माधिकारी प्रजाकी उत्पत्तिका निरूपण करनेके लिये सर्गोपक्रम उपयुक्त ही है। अथवा **'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः'** (तैत्तिरीयारण्यके २.१५) इस श्रुतिसे विहित वेदाध्ययनका विषय धर्माधर्मकी तरह ब्रह्म भी है; अतः उसका प्रतिपादन अभीष्ट है। अथवा धर्मानुष्ठानका चरम तात्पर्य अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारसे भगवत्प्राप्तिमें सन्निहित है; अतः वेदैकसमधिगम्य धर्मकी तरह ब्रह्मका प्रतिपादन भी उपयुक्त है। **'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'** (भगवद्गीतायाम् १५.१५), **'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'** (कठ० १.२.१५), **'वेदैरनेकैरहमेव वेद्यः'** (कैवल्योपनिषत् २२) आदि वचनोंके अनुसार धर्मप्रतिपादक वेदवचन भी ब्रह्मपरक ही सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि धर्मका लक्षण जहाँ नारदपरिव्राजकोपनिषत् और मनुस्मृतिमें प्राप्त है, वहाँ उसमें 'विद्या' भी सन्निहित है। भगवद्गीतामें ब्रह्मकर्म (ब्राह्मणधर्म) का जहाँ उल्लेख है, वहाँ 'ज्ञानविज्ञान'का भी उल्लेख है। महाभारतमें 'आत्मज्ञान'को साधारणधर्म माना गया है। श्रीयाज्ञवल्क्यने तो आत्मदर्शनको परमधर्म माना है। आचार्योंने अभ्युदय और निःश्रेयसरूप प्रयोजनकी सिद्धिके हेतुको धर्म मानकर इसी तथ्यका प्रकाश किया है। भगवत्पाद श्रीशङ्करने प्रवृत्तिलक्षण धर्मका फल अभ्युदय और निवृत्तिलक्षण धर्मका फल निःश्रेयस माना है। श्रुतिने यज्ञादि कर्मोंका फल ब्रह्मविचार की योग्यता या ब्रह्मवेदनकी इच्छा (विविदिषा) माना है। श्रीमनुने महायज्ञों और यज्ञोंका फल ब्राह्मीतनु (ब्रह्मसाक्षात्कारमें उपयुक्त देहेन्द्रियादि)की अभिव्यक्ति माना है—

''धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या (ह्रीर्विद्या) सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥''
(नारदपरिव्राजकोपनिषत् ३.२४, मनुस्मृतिः ६.९२)

''आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्मः साधारणो नृप॥''
(महाभारते)

''इज्याचारदमाहिंसादानं स्वाध्यायमेव च।
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्॥''
(याज्ञवल्क्ये १.८)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"
(वैशेषिकदर्शनि १.१.२)

"अभ्युदयफलं धर्मज्ञानं तच्चानुष्ठानापेक्षम्।
निःश्रेयसफलं तु ब्रह्मविज्ञानं न चानुष्ठानापेक्षम्॥"
(ब्रह्मसूत्रभाष्ये १.१.१)

"प्राणिनां साक्षादभ्युदयनिःश्रेयसहेतुर्यः स धर्मः"
(भगवद्गीताशाङ्करभाष्ये)

'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन'
(बृहदारण्यके ४.४.२२)

"महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।"
(मनुस्मृतौ २.२८)

अथवा "ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त संसारगति धर्माधर्म निमित्तसे प्राप्त होती है। इसी अभिप्रायसे धर्मप्रकरणमें भी **'तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।'** (मनु० १.४९) आदि प्रलयादिके प्रतिपादक वचनोंकी प्रवृत्ति मान्य है।" ऐसा श्रीमेधातिथिका मत है—

"शास्त्रस्य महाप्रयोजनत्वमनेन मन्त्रेण प्रतिपाद्यते। ब्राह्मणाद्याः स्थावरपर्यन्ताः संसारगतयो धर्माधर्मनिमित्ता अत्र प्रतिपाद्यन्ते 'तमसा बहुरूपेण' (१.४९) इति।"

श्रीकुल्लूकभट्टके अनुसार आत्मज्ञानरूप परमधर्मके अवगमके लिये प्रथमाध्यायका निरूपण है। उसके अङ्गरूपसे संस्कारादिरूप धर्मोंका द्वितीयाध्यायादि क्रमसे प्रतिपादन है—

"आत्मज्ञानरूपपरमधर्मावगमाय प्रथमाध्यायं कृत्वा संस्कारादिरूपं धर्मं तदङ्गतया द्वितीयाध्यायादिक्रमेण वक्ष्यतीति।" (१.५)

● **व्याख्येय :-** 'तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्'
= 'तुच्छ तमोरूप आभु (उपादान) से एकीभूत कार्यात्मक द्वैतप्रपञ्च

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रलयमें आच्छादित था। परमात्माके स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तपके लोकोत्तर–अनुपम-प्रबल माहात्म्यके अमोघ प्रभावसे वह प्रपञ्च प्रादुर्भूत हुआ।'

● **सायणभाष्यम्**— **ननु विविधविचित्ररूपभूयसः प्रपञ्चस्य कथमति-तुच्छेन तमसा क्षीरेण नीरस्येवाभिभवः। तथा तमोऽपि क्षीरवद्बलवदित्येवोच्यते। तर्हि दुर्बलस्य जगतः सर्गसमयेऽपि नोद्भवसम्भव इत्यत आह -तुच्छ्येनेति। आ समन्ताद् भवतीत्याभु तुच्छ्येन। छान्दसो यकारोपजनः। तुच्छेन तुच्छकल्पेन सदसद्विलक्षणेन भावरूपाज्ञानेनापिहितं छादितमासीत्। दधातेःकर्मणि निष्ठा। दधातेर्हि। 'गतिरनन्तरः' इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम्। एकमेकीभूतं कारणेन तमसाविभागतां प्राप्तमपि तत्कार्यजातं तपसः स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपस्य महिना माहात्म्येनाजायत उत्पन्नम्। तपसः स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपत्वं चान्यत्राम्नायते 'यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः'** (मुण्डकोपनिषद् १.१.९) **इति॥ ३॥**

● **व्याख्या** - अब प्रश्न उठता है कि विविध-विचित्ररूप बहुल प्रपञ्चको अत्यन्त तुच्छ तमस्ने क्षीरसे नीरके तुल्य कैसे अभिभव कर लिया? फिर तो यह जलतुल्य दुर्बल जगत् सृष्टिके समय भी क्षीरतुल्य प्रबल तमस्का अतिक्रमण करके कैसे प्रकट हो सकता है? इस शङ्काके वारणके लिये कहा गया है कि वह तमस् तुच्छ अर्थात् तुच्छकल्प है। विचार करनेपर वह न तो सत् सिद्ध होता है न असत्। वह भावरूप अज्ञानमात्र है। उसने जगत्को केवल आच्छादित कर रखा था।

यद्यपि यह जगत् प्रलयमें उस तमस्से एकीभूत-सा रहता है–पृथक् परिलक्षित नहीं होता, तथापि 'क्या-क्या सर्जन करना है' इस पर्यालोचनरूप तपकी महिमासे वह तमस्से अभिभूत जगत् अभिव्यक्त हो जाता है। **'यस्य ज्ञानमयं तपः'** (मुण्डके १.१.९) इस श्रुतिने परमात्माके तपको ज्ञानमय-आलोचनात्मक बताया है। इसका अभिप्राय यह है कि जगत्के मूलमें विद्यमान चैतन्यरूप कारण ही अज्ञानान्धकारके द्वारा आच्छादित आभु (उपादान-आसमन्ताद् भवतीत्याभु) को प्रपञ्चरूपमें प्रकट कर देता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'निर्बलके बल राम' यद्यपि तमस् आवरक और उपादान दोनों ही है, वह प्रपञ्चको आच्छादित और अनभिव्यक्त रखे — अपनेसे विलक्षणरूपमें प्रकट-उद्भूत न होने दे इसमें स्वतन्त्र-सा सिद्ध होता है, तथापि अहैतुक करुणावरुणालय प्रभु अकृतार्थ जीवोंको अभ्युदयरूप श्रेय और निःश्रेयसरूप परमश्रेयका अवसर देनेके लिये अपने तपोबलसे उस दुर्बल – अविभागापन्न जगत्को व्यक्त कर देते है।

इसी प्रकार गर्भस्थ अविभागापन्न सन्तानको पिता-मातासे विभक्त कर उसे जन्म देनेवाले भगवान्का अद्भुत माहात्म्य किस सहृदय विचारकसे ओझल हो सकता है? **'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः'** (भगवद्गीता १०.२८)। श्रीहरि समुद्रमें सन्निहित गङ्गा, यमुना, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा आदि नदियोंको पुनः विभागपूर्वक व्यक्त कर सकते हैं। उनके इस लोकोत्तर माहात्म्यसे ही जैसे स्पर्शशून्य निश्चल आकाशसे स्पर्शयुक्त चञ्चल वायुकी उत्पत्ति सम्भव है, नीरूप वायुसे रूपयुक्त तेजकी उत्पत्ति सम्भव है; वैसे ही तमस्से आवृत प्रपञ्चकी उत्पत्ति सम्भव है। यदि परम कृपालु प्रभु देहेन्द्रिय, मन, प्राण और विषयोंकी रचना न करें तो अकृतार्थ जीवोंको अर्थ, धर्म, काम और मोक्षका अवसर ही न सुलभ हो —

> **"बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत्प्रभुः।**
> **मात्रार्थञ्च भवार्थञ्च आत्मनेऽकल्पनाय च॥"**
> (भागवते १०.८७.२)

श्रीवेदार्थपारिजातकारके अनुसार मन्त्रार्थ इस प्रकार है —

"अग्रे सृष्टेः प्राक् प्रलयदशायां भूत-भौतिकं सर्वं जगत् तमो भावरूपमज्ञानमासीत्, मायापरनामकतमःशबलितं ब्रह्मासीदित्यर्थः। आच्छादकात्तमसो नामरूपाभ्यां यदाविर्भवनं तदेव तस्य जन्म भवति। ये तु कारणावस्थायामसदेव कार्यं कारणव्यापारादुत्पद्यत इति मन्यन्ते, तदेतेनापाकृतं भवति, असतो भावायोगात्। 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' (भगवद्गीतायाम् २.१६) **इति भगवदुक्तेः।"**

"ननु यदि कारणभूते तस्मिंस्तमसि तज्जगदात्मकं कार्यं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विद्यते तर्हि कथं नासीद्रज इति पृथिव्यादिलोकनिषेधः? इति चेन्न। तम आसीदित्युक्त्या कार्यस्य भावरूपस्याज्ञानात्मकमूलकारणरूपतैवासीत्, यतः सर्वं तम आसीत् तमोरूपमेवासीदिति नासीद्रज इति स्वरूपेण कार्यनिषेधोऽपि युज्यते। अत एव मनुरप्याह-आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः।'' (मनु० १.५)।

''यद्यप्यज्ञानं बाध्यत्वान्न ब्रह्मवत् सत्, वियदादिप्रपञ्चोपादानत्वाच्च न खपुष्पवदसत् **इति सदसद्विलक्षणत्वाद् अनिर्वाच्यमेव, तथापि बाधदशायां तत्खपुष्पवन्निरुपाख्यमेव भवतीत्यसत्कल्पतैव तस्य।''** (पृ० १२२४, १२२५)

सृष्टिके पहले प्रलयावस्थामें यह सारा भूत-भौतिक जगत् तमोरूप था—भावरूप अज्ञानात्मक था। इसीका दूसरा नाम माया है। आच्छादक तमस्‌से नाम-रूपात्मक जगत्‌का आविर्भाव ही उसका जन्म माना जाता है। जो कार्यकी कारकव्यापारसे उत्पत्ति मानते हैं, उनका मत इस श्रुतिसे अनादृत (अमान्य) सिद्ध हो जाता है। असत्‌की सत्ता असंभव होनेसे उनका मत अग्राह्य है। भगवान्‌ने गीतामें स्पष्ट कहा है–'असत्‌की कभी सत्ता नहीं होती और सत्‌का कभी अभाव नहीं होता।'

प्रश्न– उस कारणरूप तमस्‌में यदि जगदात्मक कार्य विद्यमान था, तो फिर **'नासीद्रजः'** इस श्रुतिसे पृथिवी आदि लोकोंका निषेध कैसे सङ्गत होगा?

उत्तर– 'तम आसीत्'का अभिप्राय यह है कि उस समय कार्यकी भावरूप अज्ञानात्मक मूलकारणता ही थी। क्योंकि उस समय सब कुछ तमोरूप ही था। ऐसी स्थितिमें **'नासीद्रजः'** से कार्यनिषेध उपयुक्त ही है। इसलिये श्रीमनुने भी कहा है—'यह जगत् पहले तमःस्वरूप, अज्ञात, लक्षणहीन, मन-वाणीका अविषय, प्रसुप्तसरीखा था।'

यद्यपि अज्ञान बाध्य होनेके कारण ब्रह्मके समान सत् नहीं, आकाशादि कार्योंका कारण होनेसे आकाशकुसुमके समान असत् नहीं,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण होनेके कारण अनिर्वाच्य ही है; फिर भी बाधदशामें वह आकाशकुसुमतुल्य निरुपाख्य ही होता है। ऐसी स्थितिमें वह असत्कल्प ही मान्य है॥ ३॥

● ४. सिसृक्षासन्दर्भ

● ४. **सङ्गति :—** ईश्वरकर्तृक पर्यालोचनरूप तपकी सर्जनिच्छारूप काममूलकता तथा सर्जनिच्छाकी मनीषिमनोगोचर मायोपाधिक महेश्वरभावापन्न अकृतार्थ जीवोंके मनोनिष्ठ फलोन्मुख अभुक्त – कर्ममूलकता —

● **मन्त्र :—**

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥ ४॥

● **पदच्छेद :— कामः, तत्, अग्रे, सम्, अवर्तत, अधि, मनसः, रेतः, प्रथमम्, यत्, आसीत्। सतः बन्धुम्, असति, निः, अविन्दन्, हृदि, प्रतीष्य, कवयः, मनीषा॥ ४॥**

● **मन्त्रार्थ :— प्रथमम्** - अतीतकल्पमें अकृतार्थ जीवोंके **मनसः अधि** - मनसे सम्बन्धित और मनमें सन्निविष्ट (सन्निहित) **यत्** - जो **रेतः** - भावी प्रपञ्चके बीजभूत कर्म (कर्मवासना) **आसीत्** - था **तत्** - उसीके उद्‌बुद्ध और फलोन्मुख होनेके कारण **अग्रे** - सर्गके आरम्भमें (**मनसः अधि**) प्राणियोंको आत्मसात् किये महेश्वरके मायारूपी मनमें **कामः** - स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तपका भी मूल सिसृक्षा (सर्जनिच्छा) रूप काम **समवर्तत** - समुत्पन्न हुआ। **कवयः** - त्रिकालदर्शी मनीषियोंने **हृदि** - हृदयमें निरुद्ध **मनीषा** - विशुद्ध बुद्धिसे **प्रतीष्य** - विचारकर **सतः** - अर्थक्रियाकारी नामरूपात्मक अभिव्यक्त जगत्का **बन्धुम्** - कल्पान्तरमें अनुष्ठित अभुक्त भोगापवर्गके प्रति हेतुभूत निबन्धक और उपकारक अकृतार्थ जीवोंके कर्मसमूहको **असति** - सद्विलक्षण अव्यक्त (अव्याकृत) रूप कारणमें सन्निहित **निरविन्दत्** (= निष्कृष्यालभन्त-विविच्याजानन्) - भलीभाँति जाना॥

● **भावार्थ :—** ईश्वरने सृष्टि करनेकी इच्छासे पर्यालोचनरूप तप किया। वह काम (इच्छा) ईश्वरके मायारूप मनमें हुआ। मायामें विलीन अन्तःकरणनिष्ठ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवोंकी पूर्वकर्मवासनाके योगसे ईश्वरमें सृष्टिकी इच्छा हुई। अभिप्राय यह है कि जीवोंके पूर्वानुष्ठित कर्म ही जब सर्गके आरम्भमें परिपक्व होकर फलोन्मुख हुए तब कर्माध्यक्ष परमेश्वरके मनमें सिसृक्षा हुई। **'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत यदिदं किञ्च'** (तै० आ० ८.६) यह श्रुति भी उक्त तथ्यका प्रतिपादन करती है। क्रान्तदर्शी त्रिकालज्ञ दिव्यदर्शी मनीषियोंने 'जीवोंके पूर्वानुष्ठित कर्मसमूह ही सर्गमें हेतु हैं' ऐसा निश्चय किया है। जीवोंके वे कर्म मायामें ही सन्निहित होते हैं, ईश्वरेच्छा भी मायामें सन्निहित होती है। ब्रह्म तो उस मायाका असङ्ग आश्रयमात्र है। मायाके योगसे ब्रह्मकी अव्याकृत संज्ञा होती है।

● **व्याख्येय :– 'कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।'** 'पर्यालोचनरूप तपका कारण है सृष्टिके पूर्व परमेश्वरके मनमें काम अर्थात् सृष्टि करनेकी इच्छाका उदय। उसका भी कारण है अतीत महाकल्पके जीवोंके अन्तःकरणोंकी कर्मवासनाओंकी मायामें विद्यमानता। अर्थात् जीवोंद्वारा अनुष्ठित शुभाशुभ कर्मोंकी वासनाके फलोन्मुख होनेपर परमेश्वरके मनमें सिसृक्षा समुद्भूत हुई। पुनः परमेश्वरने स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तप किया।'

● **सायणभाष्यम् – ननूक्तरीत्या यदीश्वरस्य पर्यालोचनं जगतः पुनरुत्पत्तौ कारणं तदेव किंनिबन्धनमित्यत आह - कामस्तदग्र इति। अग्रेऽस्य विकार-जातस्य सृष्टेः प्रागवस्थायां परमेश्वरस्य मनसि कामः समवर्तत सम्यगजायत। सिसृक्षा जातेत्यर्थः। ईश्वरस्य सिसृक्षा वा किंहेतुकेत्यत आह मनस इति। मनसोऽन्तःकरणस्य संबन्धि, वासनाशेषेण मायायां विलीनेऽन्तःकरणे समवेतम्। सामान्यापेक्षमेकवचनम्। सर्वप्राण्यन्तःकरणेषु समवेतमित्यर्थः। एतेनात्मनो गुणाधारत्वं प्रत्याख्यातम्। तादृशं रेतो भाविनः प्रपञ्चस्य बीजभूतं प्रथममतीते कल्पे प्राणिभिः कृतं पुण्यात्मकं कर्म यद्यतः कारणात्सृष्टिसमये आसीत् अभवत्। भूष्णु वर्धिष्णवजायत परिपक्वं सत्फलोन्मुखमासीदित्यर्थः। तत्ततो हेतोः फलप्रदस्य सर्वसाक्षिणः कर्माध्य-क्षस्य परमेश्वरस्य मनसि सिसृक्षाजायतेत्यर्थः। तस्यां च जातायां स्रष्टव्यं पर्यालोच्य ततः सर्वं जगत् सृजति। तथा चाम्नायते 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत यदिदं किञ्च।'**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **व्याख्या**— अच्छा, मानाकि ईश्वरके पर्यालोचनरूप तपसे जगत्की उत्पत्ति हुई, परन्तु उस पर्यालोचनका भी तो कोई कारण होना चाहिये! वह कारण है सृष्टिके पूर्व सर्वसाक्षी कर्माध्यक्ष कर्मफलप्रद परमेश्वरके मनमें काम अर्थात् सृष्टि करनेकी इच्छाका उदय। भला ईश्वरके मनमें सृष्टिकी इच्छा ही क्यों हुई? अतीतके महाकल्पके जीवोंके अन्त:करणोंकी वासनाएँ मायामें विलीन थीं। उन्हींके कारण ईश्वरके मनमें स्रष्टव्यपर्यालोचन एवं सिसृक्षाका उदय हुआ। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वरमें स्वयंका पर्यालोचन, काम अथवा कामाधिकरण अन्त:करण नहीं है। मायामें विलीन जीवोंके अन्त:करणनिष्ठ कर्मनिमित्तक कामभावके कारण ही मायोपाधिक महेश्वरमें कामका उदय होता है।

'आत्मामें ज्ञान, इच्छा, प्रयत्नादि समवेत रहते हैं' ऐसा मानना उपयुक्त नहीं। यहाँ श्रुतिने स्पष्ट ही कामका आश्रय मनको माना है। **भगवद्गीतामें** भी इन्द्रिय, मन और बुद्धिको ही कामका आश्रय माना गया है—

'प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।' (२.५५)
'रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।' (२.६४)
'इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।' (३.३४)
'इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।' (३.४०)

साथ ही इच्छा (काम) को आत्मधर्म न मानकर क्षेत्रान्तर्गत क्षेत्र ही माना गया है—

"इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥" (१३.६)

प्रश्न उठता है कि 'मन तो स्रष्टव्य है अथवा जीवनिष्ठ ज्ञानादिकी अभिव्यक्तिमें हेतु है, वह ईश्वरेच्छाका आश्रय कैसे हो सकता है?' इस प्रश्नका उत्तर यह है कि जीवकी इच्छाका आश्रय मन होता है और ईश्वरेच्छाका आश्रय माया होती है। जीवका संकल्प जहाँ मनोवृत्तिरूप होता है, वहाँ ईश्वरका संकल्प मायावृत्तिरूप—

"मायावृत्त्यात्मको हीशसङ्कल्पः साधनं जनौ।
मनोवृत्त्यात्मको जीवसंकल्पो भोगसाधनम्॥"

(पञ्चदशी ४.१९)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावी प्रपञ्चका बीज – 'रेत' अतीत कल्पमें अनुष्ठित प्राणियोंके कर्म ही सृष्टिके पूर्व विद्यमान थे। वे ही बढ़कर–परिपक्व होकर फलोन्मुख हो गये थे। सर्वकर्मफलप्रद, सर्वसाक्षी, कर्माध्यक्ष परमेश्वरके मनमें सिसृक्षा होनेका यही कारण है।

वह रेत भावीप्रपञ्चका बीज था। प्रथम (अतीत) या पूर्वकल्पमें प्राणियोंके द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मके कारण सृष्टि रचनाका समय समुपस्थित हुआ। **'यथापूर्वमकल्पयत्** (ऋक्संहिता १०.१२.१९०.३०) इस श्रुतिके अनुसार पूर्वकल्पके अनुरूप उत्तरसृष्टि होती है। प्राणियोंके उक्त शुभाशुभ कर्म परिपक्व होकर फलोन्मुख थे। इसी कारण ईश्वरने सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदशून्य होते हुए भी स्वयंको ही अचिन्त्यानिर्वचनीया मायाशक्तिके योगसे स्थावर-जङ्गमात्मक प्रपञ्चरूपमें व्यक्त करनेकी इच्छा की। उसके अनन्तर उन्होंने स्रष्टव्य पदार्थोंका पर्यालोचन (अमोघ ज्ञानशक्तिसे दर्शन) कर संपूर्ण जगत्की रचना की।

'सोऽकामयत' (तैत्तिरीय० २.६) इस श्रुत्यन्तरके अनुशीलनसे भी उक्त तथ्यका ही प्रकाश होता है।

जैसे आनन्दसिन्धुमें माधुर्य्य उसका स्वरूप ही है; वैसे ही शिवस्था शक्ति शिवरूप ही है। माधुर्य्यके विना आनन्द नहीं और आनन्दके विना माधुर्य्य नहीं। विचारकोंकी एक दृष्टि यह है। इसी दृष्टिसे ब्रह्मशक्तिको ब्रह्मरूप माना गया है। शिव (ब्रह्म) - शक्तिमें अभेद मानकर श्रीभगवत्पाद शङ्करने लिखा है—

> **"यया चेश्वरशक्त्या भक्तानुग्रहादिप्रयोजनाय ब्रह्म प्रतिष्ठते प्रवर्तते सा शक्तिः ब्रह्मैवाहं शक्तिशक्तिमतोः अनन्यत्वादिति"** (भगवद्गीताशांकरभाष्ये १४.२७)।

दूसरी दृष्टि इस प्रकार है–जैसे लोकमें प्रजोत्पादनकी कामनासे पुरुष नारीमें गर्भाधान करता है; वैसे ही **'बहु स्यां प्रजायेय'** (तैत्ति० २.६) इत्यादि श्रुतियोंके अनुसार एक ब्रह्मतत्त्व ही प्रजोत्पादन या बहुभवनकी कामनासे प्रकृतिमें गर्भाधान करता है। **'सोऽकामयत'** (तैत्तिरीयोपनिषत् २.६) यह प्रजाकी सिसृक्षारूप काम ही प्राथमिक आधिदैविक काम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इसी काम द्वारा प्रकृतिसंसृष्ट होकर भगवान् अनन्त ब्रह्माण्डको उत्पन्न करते हैं।

''मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥''

(भगवद्गीता १४.३, ४)

''महद्ब्रह्म (प्रकृति) मेरी योनि है; उसीमें मैं गर्भाधान करता हूँ, तभी उससे महदादि क्रमेण समस्त प्रजा उत्पन्न होती है॥ देव, पितृ, मनुष्य, मृगादि सर्व योनियोंमें जो देहसंस्थानरूप व्यक्तियाँ हैं, उन सबको उत्पन्न करनेवाली 'माता' प्रकृति है और बीज देनेवाला पिता मैं हूँ॥''

सिसृक्षारूप काम भी भगवान्का ही अंश है– **'कामस्तु वासुदेवांशः'** (श्रीमद्भागवते १०.५५.१)। लोकमें भी प्रेम, काम या इच्छाका मुख्य विषय आनन्द ही है। सुखमें प्रीति-कामना साक्षात् होती है और उससे अन्यमें सुखका साधन होनेसे प्रीति-इच्छा होती है। आनन्द या तद्रूप आत्मा निरतिशय, निरुपाधिक, परप्रेमका आस्पद है। अन्य वस्तुएँ सातिशय, सोपाधिक, अपर प्रेमके आस्पद हैं। शुद्ध आनन्द या आत्मामें जो प्रेम, आनन्द या काम है, वह तो स्वाभाविक है, आत्माका अंश ही है। अद्वैत आत्मा ही निरुपाधिक प्रेमका आस्पद कहा जाता है। वहाँ प्रेम, उसके आश्रय और विषयमें भेद नहीं है।

प्रेम, आनन्द, रस यह आत्मरूप ही है। रसरूप आनन्दसे ही समस्त विश्व उत्पन्न होता है, अतः सबमें उसका होना अनिवार्य है। सजातीयमें ही सजातीयका आकर्षण होता है। बस यह आकर्षण ही प्रेम या काम है। लोकमें कान्ता-कान्त दोनोंमें रहनेवाली तत्-तत् (उस-उस)–अवच्छिन्न रस या आनन्दमें जो परस्पर आकर्षण है, वही काम है।

समष्टि ब्रह्मका प्रकृतिकी ओर झुकाव आधिदैविक काम है। जहाँ शुद्ध सच्चिदानन्दघन परब्रह्मका स्वरूपमें आकर्षण है अथ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वा आत्माका अपने स्वरूपमें ही जो आकर्षण या निरतिशय, निरुपाधिक प्रेम है, वह आत्मस्वरूप ही है। यही राधा-कृष्ण, गौरी-शङ्कर, सीता-रामका परस्पर प्रेम, परस्पर आकर्षण शुद्ध प्रेम या शुद्ध काम है। यह कामेश्वर या श्रीकृष्णका स्वरूप ही है। कहा भी है– **'साक्षान्मन्मथमन्मथः'** (श्रीमद्भागवते १०.३२.२)। अनन्त ब्रह्माण्डमें विस्तीर्ण कामबिन्दु **'मन्मथ'** है। अनन्त ब्रह्माण्डनायकका प्रकृतिमें वीर्याधानका प्रयोजक कामसागर **'साक्षान्मन्मथ'** है। सौन्दर्यमाधुर्यसारसर्वस्व अचिन्त्यलीलाशक्तिके योगसे अभिव्यक्त निखिलरसामृतमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रका जो अपनी ही स्वरूपभूता माधुर्य्याधिष्ठात्री श्रीराधामें आकर्षण है, वह तो **'साक्षान्मन्मथमन्मथ'** ही है। उनका पूर्णतम सौन्दर्य ऐसा अद्‌भुत है कि उन्हें ही विस्मृत कर देता है। कुछ महानुभावोंका कहना है कि पूर्ण सौन्दर्य अपनेमें ही अपने प्रतिबिम्बको अपने आप देख सकता है, भगवान् अपने स्वरूपको देखकर स्वयं विस्मित हो जाते हैं– **'विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः'** (भागवते ३.२.१२)। बस इसीसे काम प्रकट होता है। इसीसे शिवशक्तिका सम्मेलन होता है। यही शृङ्गाररस है। कामेश्वर-कामेश्वरी, श्रीकृष्ण-राधा यही है। पूर्ण सौन्दर्य यही है। यह अनन्त है। अप्सराओंका सौन्दर्य इसके सामने नगण्य है। इसी सौन्दर्यके कणमात्रसे श्रीविष्णुने मोहिनीरूपसे शिवको मोह लिया। काम इसकी रश्मिछटाको देखकर मुग्ध हो गया। इसीके लेशसे मदन मुनियोंको मोहित करता है। यही कहीं ललिता तो कहीं कृष्णरूपमें प्रकट होता है—

"कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
वंशीनादसमारम्भादकरोद्विवशं जगत्॥"

(तन्त्रराजे)

● **व्याख्येय :– 'सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्य कवयो मनीषा'** - "अतीत, अनागत एवं भविष्यके ज्ञाता क्रान्तदर्शी योगियोंने अपने हृदयमें विशुद्ध बुद्धिसे विचार करके अनुभव किया कि इस दृश्यमान सृष्टिका मूलकारण कल्पान्तरमें अनुष्ठित प्राणियोंके कर्मसमूह ही हैं। वे सृष्टिके सद्विलक्षण अव्याकृत कारणमें रहते हैं। अभिप्राय यह है कि 'सत्' - नाम-रूपात्मक जगत्का कारण असत्–अव्यक्त (अव्याकृत) में सन्निहित था. ऐसा बुद्धिसे विचारकर सर्वज्ञकल्प कवियोंने निष्कर्षरूपसे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाना। जगत्कारण उस समय अकृतार्थ जीवों द्वारा अभुक्त पूर्वानुष्ठित कर्मसमूह था जो कि ब्रह्माधिष्ठित मायामें सन्निहित था।''

● **सायणभाष्यम्** – तै० आ० ८.६ इति श्रुतिः। **आत्मनेत्थमवगमितेऽर्थे-विद्वदनुभवमप्यनुग्राहकत्वेन प्रमाणयति सत इति। सतः सत्त्वेनेदानीमनुभूय-मानस्य सर्वस्य जगतो बन्धुं बन्धकं हेतुभूतं कल्पान्तरे प्राण्यनुष्ठितं कर्मसमूहं कवयः क्रान्तदर्शिनः अतीतानागतवर्तमानाभिज्ञा योगिनो हृदि हृदये निरुद्धया मनीषा मनीषया बुद्ध्या। (सुपां सुलुगिति तृतीयाया लुक्) प्रतीष्य विचार्य (अन्येषामपीति सांहितिको दीर्घः) असति सद्विलक्ष-णेऽव्याकृते कारणे निरविन्दन् निष्कृष्यालभन्त विविच्याजानन्नित्यर्थः॥ ४॥**

● **व्याख्या** – जगत् सत् है। इसकी व्यावहारिकसत्ता है। इसका कारण सद्विलक्षण अव्याकृत 'असत्' है। उसमें जगत्की अभिव्यक्तिके बंधु (हेतु, बन्धक) प्राणियोंके पूर्व अनुष्ठित कर्मसमूह सन्निहित रहते हैं। उसीके योगसे जगत्की रचना ईश्वर करते हैं। इस प्रकार परमात्मामें वैषम्य और नैर्घृण्य (निर्दयता) रूप दोषद्वयकी प्राप्ति नहीं होती॥

'तम आसीत्' (३), **'असति'** (४) कहकर श्रुतिने भावरूप अव्याकृत-अज्ञानको , **'कामस्तदग्रे समवर्तताधि'** (४) कहकर कामको और **'रेतः प्रथमं यदासीत्'** (४) कहकर कर्मको जगत्का मूल माना है। अभिप्राय यह है कि यह संसार अविद्या, काम और कर्मकि योगसे ही उत्पन्न होता है। परमेश्वर जीवोंके अविद्या, काम और कर्मोंकि अनुरूप ही प्रपञ्चकी रचना करते हैं।

वेदवेदान्तमर्मज्ञ सद्गुरुदेवने इस मन्त्रका अभिप्राय इस प्रकार व्यक्त किया है।

''अग्रे अस्य विकारजातस्य सृष्टेः प्रागवस्थायां परमेश्वरस्य मनसि कामः समवर्तत सम्यगजायत। परमेशमनसि प्रपञ्चसिसृक्षा सञ्जातेत्यर्थः। तस्यां सत्यां स्रष्टव्यं पर्यालोच्य ततः सर्वं जगत् सृजति। अत्र कामाधिकरणत्वेन परमेश्वरस्य मायारूपं मन आक्षिप्तम्, 'अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः' (मुण्डक २.१.२) **इति श्रुतेरन्यादृशस्य मनसोऽभावात्।''**

जगतः कारणभूतं प्राणिकर्मसमूहं महाप्रलयदशायां मायोपहिते

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मण्यन्तर्निलीनं योगिन एव विविच्य ज्ञातुं शक्नुवन्ति, नान्ये। अत्र व्यवहारार्हत्वेन जगतः सत्त्वमुक्तम्। व्यवहारानर्हत्वेन कारणस्याव्याकृत-स्यासत्त्वमुक्तम्। प्राणिकर्मसमूहस्य बन्धनहेतुत्वाद् बन्धुत्वमुक्तम्, 'कर्मणा बध्यते जन्तुः' इति स्मृतेः। सतो जगतः कार्यस्याव्यवहितप्राक्क्षणवर्तित्वेन कारणभूतस्य प्राणिकर्मसमूहस्य कार्यहेतुत्वेन तत्सम्बन्धित्वाद् बन्धुत्वमुक्तम्।'' (वेदार्थपारिजाते पृ० १२२६, १२२७)

'''**अग्रे**' अर्थात् इस विकारमय सृष्टिकी उत्पत्तिसे पहले परमेश्वरके मनमें कामना उत्पन्न हुई—प्रपञ्चको उत्पन्न करनेकी इच्छा व्यक्त हुई। इस सिसृक्षाके उत्पन्न होनेपर वह सर्जनीय प्रपञ्चका पर्यालोचन कर संपूर्ण जगत्की सृष्टि करता है। यहाँ काम (इच्छा) के अधिष्ठाताके रूपमें परमेश्वरके मायारूप मनका बोध होता है, क्योंकि '**अप्राणः**' आदि श्रुतिवचनसे इसके अतिरिक्त मनका कोई स्वरूप ईश्वरमें नहीं माना जाता।''

''जगत्के कारणभूत नाना प्राणियोंके नाना कर्मोंको जो कि महाप्रलयदशामें मायासे उपहित ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं, केवल योगिजन ही भलीभाँति समझ सकते हैं, अन्य नहीं। यहाँ व्यवहारसिद्धिमें समर्थ होनेसे जगत्को 'सत्' कहा गया है। व्यवहारकी निष्पत्तिके अयोग्य होनेसे अव्याकृतरूप कारणको 'असत्' माना गया है। 'कर्मोंसे जीव बँध जाता है' इस स्मृतिवचनके अनुसार प्राणियोंके कर्मसमूहको 'बन्धु' कहा गया है, क्योंकि यह कर्म ही जीवोंको जगत्के साथ बाँध देता है। इसको बन्धु इस अभिप्रायसे भी कह सकते हैं; क्योंकि सत्स्वरूप जगत् जब कार्यका रूप धारण करता है, तब यह उसके अव्यवहित पूर्व क्षणमें बन्धु-बान्धवोंकी तरह सहायकरूपमें विद्यमान रहता है।'' ॥४॥

● ५. सर्गक्रमदुर्लक्ष्यतासन्दर्भ

● ५. सङ्गति :– '**नासदासीत्**' (१), '**कामस्तदग्रे**' (४) और '**मनसो रेतः**' (४) मन्त्रसिद्ध क्रमशः अविद्या-काम-कर्महेतुक अर्थात् अविद्योपादानक और काम-कर्मनिमित्तक संसार (सृष्टि) 'शतपत्रबेधनवत्' आकाशादिक्रमसापेक्ष होनेपर भी सूर्योदयानन्तर युगपत्–रश्मिविततन्यायसे विद्युत्प्रकाशवत् क्रमकी दुर्लक्ष्यता तथा अविद्या-काम-कर्मबद्ध कर्त्ता-भोक्तारूप जीवोंकी भोग्यरूप जगत्से उत्कृष्टता तथा कर्मफलदाता सर्वेश्वर पुरुषोत्तमसे अवरता—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **मन्त्र :–**

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा-
मधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन् महिमान आस-
न्त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्॥५॥

● **पदच्छेद :– तिरश्चीनः, विततः, रश्मिः, एषाम्, अधः, स्वित्, आसीत्, उपरि, स्वित्, आसीत्। रेतोधाः, आसन्, महिमानः, आसन्, स्वधा, अवस्तात्, प्रयतिः, परस्तात्॥५॥**

● **मन्त्रार्थ :– एषाम्** - आकाशादिकार्यप्रपञ्चकी रचनामें प्रवृत्त जगत्के कारणभूत महेश्वराधिष्ठित अविद्या-काम-कर्मोंकी **रश्मिः (= सूर्यरश्मिसदृशः)** - सूर्यरश्मिसदृश-कार्यप्रपञ्च **विततः** - विस्तृत **आसीत्** - था। अभिप्राय यह है कि महेश्वराधिष्ठित अविद्योपादानक और काम-कर्मनिमित्तक आकाशादिकार्यवर्ग अपने कारणरूप सूर्यसे रश्मिसदृश युगपत्-निष्पन्न -विस्तृत अर्थात् फलित परिलक्षित होनेवाला था। **(स कार्यवर्गः प्रथमतः)** - वह कार्यवर्ग पहले **स्वित् (= किम्)** - क्या **तिरश्चीनः (= तिर्यगवस्थितो मध्ये स्थितः)** - तिरछा अर्थात् मध्यमें स्थित **आसीत्** - था ? (स्वित् = किं वा) - अथवा क्या **अधः (अधस्तात्)** - नीचे **(आसीत्)** था ? **स्वित् (= आहो स्वित्)** - अथ वा क्या **उपरि (= उपरिष्टात्)** - ऊपर **आसीत्** - था ? **(सृष्टेषु कार्येषु)** - इन सृष्टकार्योंमें **रेतोधाः** - बीजभूत कर्मरूप रेतके धाता अर्थात् कर्त्ता और अपने किये हुए कर्मोंके भोक्ता जीव **आसन्** - थे। **(अन्ये -)** इनके अतिरिक्त **महिमानः** - कर्म और भोगके सम्पादक महान् आकाशादिसंज्ञक भोग्यपदार्थ **आसन्** - थे। अभिप्राय यह है कि मायाश्रय महेश्वरने स्वयम्को भोक्तृ-भोग्यरूपसे विभक्त किया अर्थात् उन्होंने अपनी प्रधानतासे भोक्ता और मायाकी प्रधानतासे भोग्यरूप धारण किया। **(तयोश्च)** - उनमें **स्वधा (= अन्नं भोग्यजातम्)** - भोग्यवर्गरूप स्वधासंज्ञक अन्न **अवस्तात् (= अवरो निकृष्टः)** - अवर अर्थात् निम्नकोटिका **आसीत्** - था तथा प्रयतिः (= प्रयतिता) भोक्ता **परस्तात् (पर उत्कृष्टः)** - उत्कृष्ट **आसीत्** - था॥

● **भावार्थ :–** जगत्के मूलतत्त्व हैं–अविद्या, काम और कर्म। जैसे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्यकी किरणें एक साथ निमेषमात्रमें उदयके अनन्तर सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं; वैसे ही अविद्या, काम और कर्मोकी रश्मियाँ एक साथ ही सम्पूर्ण कार्यवर्गकी सृष्टि कर देती है। क्या यह सृष्टि पहले कहीं किसीके मध्यमें आडी-टेढी स्थित हुई या किसीके नीचे स्थित हुई अथ वा किसीके ऊपर स्थित हुई? नहीं, क्रमनिर्धारण तो विद्युत्-प्रकाशके क्रमनिरूपणके समान दुर्लक्ष्य है। अभिप्राय यह है कि यह सृष्टि एक साथ ही निष्पन्न हो गयी।

सृष्टि कार्योंमें कोई भाव रेतोधा अर्थात् बीजभूत कर्मोके कर्त्ता-भोक्ता जीव थे और कुछ दूसरे आकाशादि महान् भाव 'भोग्य' थे। अभिप्राय यह है कि मायासहित परमेश्वर संपूर्ण जगत्की सृष्टि करके तथा उसमें प्रवेश करके भोक्ता एवं भोग्यका विभाग करता है। भोक्ता जीव है और भोग्य स्वधा–अर्थात् अन्न। भोक्ता उत्कृष्ट है और भोग्य अपकृष्ट। भोक्ता जीवके लिये आकाशादि भोग्यप्रपञ्च रचा गया। रचयिता मायासहित परमेश्वर हैं। इन्हींसे इस जगत्का व्यवहार चल रहा है॥

● **व्याख्येय :– 'तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधःस्विदासीदुपरि स्विदासीत्।'** - क्या यह सृष्टि पहले कहीं किसीके मध्यमें आडी-टेढी स्थित हुई या किसीके नीचे स्थित हुई अथवा किसीके ऊपर स्थित हुई? नहीं। यह तो रश्मितुल्य एक साथ ही स्फुरित हो गयी। क्रमसंवित्का अनुसन्धान दुर्गम था।

● **सायणभाष्यम् – एवमविद्याकामकर्माणि सृष्टेर्हेतुत्वेनोक्तानि। अधुना तेषां स्वकार्यजनने शैघ्र्यं प्रतिपाद्यते। येयं नासदासीदित्यविद्या प्रतिपादिता, यश्च कामस्तदग्रे इति कामो मनसो रेतः प्रथमं यदासीदिति यत्कर्मैषामविद्याकामकर्मणां वियदादिभूतजातानि सृजतां रश्मिः रश्मिसदृशो यथा सूर्यरश्मिरुदयानन्तरं निमेषमात्रेण युगपत्सर्वं जगद् व्याप्नोति तथा शीघ्रं सर्वत्र व्याप्नुवन् यः कार्यवर्गो विततो विस्तृत आसीत्। स्विदासीदिति वक्ष्यमाणमत्रापि सम्बध्यते। 'विचार्यमाणानाम्'** (पा० सू० ८.२.९७) **इति प्लुतः। तत्रोदात्त इत्यनुवृत्तेः स चोदात्तः। स्विदिति वितर्के। स कार्यवर्गः प्रथमतः किं तिरश्चीनस्तिर्यगवस्थितो मध्ये स्थित आसीत्**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किंवाऽधोऽधस्तादासीत्। आहोस्विदुपर्युपरिष्टात्किमासीत्। 'उपरि स्विदासीदिति च' (पा० सू० ८.२.१०२) इत्यनुदात्तः प्लुतः। 'आत्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निः' (तै० आ० ८.१) इत्यादिकया पञ्चमीश्रुत्या तत उद्गातारं ततो होतारमितिवत् क्रमप्रतिपत्तौ सत्यामपि विद्युत्प्रकाशवत् सर्गस्य शीघ्रव्यापनेन तस्य क्रमस्य दुर्लक्षणत्वादेतेषु त्रिषु स्थानेषु प्राथम्यं कुत्रेति विचार्यते। एवं नाम शीघ्रं सर्वतो दिक्षु सर्गो निष्पन्न इत्यर्थः॥

● **व्याख्या**— इस प्रकार अविद्या, काम और कर्म सृष्टिके हेतुरूपसे कहे गये। अब उनकी अपने कार्योत्पादनमें शीघ्रताका प्रतिपादन किया जाता है। **'नासदासीत्'** (१) इस वचनसे अविद्या प्रतिपादित की गयी है। **'कामस्तदग्रे'** (४) इस वचनसे काम प्रतिपादित किया गया है। **'मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्'** (४) इस वचनसे कर्म प्रतिपादित किया गया है। जीवनिष्ठ अविद्या, काम और कर्मके योगसे अर्थात् अविद्योपादानक काम, कर्मनिमित्तक आकाशादि भूत और भौतिकपदार्थका सर्जन करते समय कार्यवर्ग सूर्यरश्मिसदृश शीघ्र ही विस्तार और प्रकाशको प्राप्त हो जाता है। मन्त्रमें प्लुतत्व, उदात्तत्व आदिका विधान वैदिकव्याकरणके नियमोंके अनुसार होता है। **'स्वित्'** शब्द **वितर्क** (सम्भावना)-अर्थमें प्रयुक्त है। इसका अभिप्राय यह है कि यह जो अविद्या, काम और कर्मोकी किरणोंके रूपसे कार्यवर्ग फैला यह पहले तिरछा अर्थात् मध्यभागमें फैला, नीचे फैला या ऊपरकी ओर फैला, इसकी सम्भावना इसलिये नहीं की जा सकती; क्योंकि यह सब बड़ी शीघ्रतासे सम्पन्न हो गया। जिस प्रकार सूर्यरश्मि उदयके अनन्तर निमेषमात्रमें सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर लेती है अथ वा जिस प्रकार विद्युत्प्रकाश शीघ्र ही फैल जाता है, उसी प्रकार अविद्या, काम और कर्मके योगसे सृष्टि शीघ्र व्याप्त हो जाती है। यद्यपि **'आत्मनः आकाशः'** (तै० आ० ८.१) इत्यादि पञ्चमीश्रुतिसे **'तत उद्गातारं ततो होतारम्'** के तुल्य क्रम अभीष्ट होनेपर भी सम्पूर्ण सृष्टि एक साथ ही मानो विस्तृत हो गयी। न तो यह किसीके मध्यमें तिरछी स्थित हुई न किसीके नीचे स्थित हुई और न किसीके ऊपर ही।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **व्याख्येय :–** 'रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्' = "स्रष्टव्य भोक्ता और भोग्य दो प्रकारके थे। उनमें कर्त्ता-भोक्ता जीव तो 'रेतोधा' अर्थात् बीजरूप कर्मोंका कर्त्ता और कर्मफलोंका भोक्ता था। आकाशादि महान् कार्यात्मक प्रपञ्च भोग्य था। भोक्ता अन्नाद था और भोग्य अन्न 'स्वधा'। भोक्ता शेषी होनेके कारण श्रेष्ठ था और स्वधा शेष होनेके कारण अवर।"

● **सायणभाष्यम् :– एतदेव विभजते। सृष्टेषु कार्येषु मध्ये केचिद् भावा रेतोधा रेतसो बीजभूतस्य कर्मणो विधातारः कर्त्तारो भोक्तारश्च जीवा आसन् अन्ये भावाः महिमानः। स्वार्थिक इमनिच्। महान्तो वियदादयो भोग्या आसन्। एवं मायासहितः परमेश्वरः सर्वं जगत्सृष्ट्वा स्वयं चानुप्रविश्य भोक्तृभोग्यादिरूपेण विभागं कृतवानित्यर्थः। अयमेवार्थस्तैत्तिरीयके 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** (तै० आ० ८.६) **इत्यारभ्य प्रतिपाद्यते। तत्र च भोक्तृभोग्ययोर्मध्ये स्वधा, अन्ननामैतत् - भोग्यप्रपञ्चः अवस्तात् अवरो निकृष्ट आसीत्। प्रयतिः प्रयतिता भोक्ता परस्तात् पर उत्कृष्ट आसीत्। भोग्यप्रपञ्चं भोक्तृप्रपञ्चस्य शेषभूतं कृतवानित्यर्थः। 'विभाषा परावराभ्याम्'** (पा० सू० ५.३.२९) **इति प्रथमार्थेऽस्तातिः। 'अस्ताति च'** (पा० सू० ५.३.४०) **इत्यवरशब्दस्यावादेशः। अवस्तादिति संहितायाम् अक्षादित्वात्प्रकृतिभावः ॥५॥**

● **व्याख्या –** सृष्टिके दो विभाग अभीष्ट हैं — (१) रेतोधाः → रेतस् = बीजरूप कर्मके विधाता = कर्त्ता-भोक्ता जीव, (२) महिमानः = महान्त = आकाशादि भोग्य। इस प्रकार मायासहित परमात्माने स्थावर-जङ्गमरूप प्रपञ्चकी रचना की और **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** (तै० आ० ८.६) के अनुसार अनुप्रवेश लाभ कर जगत्का भोक्ता और भोग्यादिरूपसे विभाग किया। भोक्ता और भोग्य दोनोंमें स्वधा = अन्न = भोग्य, भोक्तासे अवर था। भोक्ता पर अर्थात् उत्कृष्ट था। भोग्यप्रपञ्च भोक्तृप्रपञ्चका शेष बना।

जिस प्रकार इन्धनके योगसे ज्वाला और धूम दो रूपोंमें अग्निकी अभिव्यक्ति होती है। ज्वालाकी अग्निके अनुरूप अभिव्यक्ति होती है और धूमकी विरूप। धूमकी आर्द्र इन्धनके अनुरूप अभिव्यक्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है और ज्वालाकी विरूप। उसी प्रकार काम और कर्मगर्भित अविद्याके योगसे परमात्माकी ही भोक्ता और भोग्य दो रूपोंमें अभिव्यक्ति होती है। उनमें भोक्ताकी परमात्माके अनुरूप अभिव्यक्ति है और भोग्यकी विरूप। भोग्यकी अविद्याके अनुरूप अभिव्यक्ति है और भोक्ताकी विरूप। भोक्ता अन्नाद है और भोग्य अन्न। दोनों रूपोंमें एक ही परमात्मा मायायोगसे स्फुरित है।

'न वा अरे' (बृहदारण्यक ४.५.६) यह श्रुति भोग्यप्रपञ्चको भोक्ताका शेष सिद्ध करती है। शेषाधीन स्थिति उपयुक्त नहीं है। ऐसी स्थितिमें भोग्यकी दासताका वारण कर निज निरुपाधिक वरणीय स्वरूपके भजन और वरणमें ही अभिरुचि लाभ करनी चाहिये।

"भोक्ता स्वस्यैव भोगाय पतिजायादिमिच्छति।
एष लौकिकवृत्तान्तः श्रुत्या सम्यगनूदितः॥
भोग्यानां भोक्तृशेषत्वान्मा भोग्येष्वनुरज्यताम्।
भोक्तर्येव प्रधानेऽतोऽनुरागं तं विधित्सति॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्माऽप सर्पतु॥
इति न्यायेन सर्वस्माद् भोग्यजाताद्विरक्तधीः।
उपसंहृत्य तां प्रीतिं भोक्तर्येनं बुभुत्सते॥
विविञ्चता भोक्तृतत्त्वं जाग्रदादिष्वसङ्गता।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां साक्षिण्यध्यवसीयते॥"

(पञ्चदशी ७.२०१-२०४, २१०)

"न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिःप्रसृता पुराणी॥"

(भगवद्गीता १५.३, ४)

आत्मा परमप्रेमास्पद होनेसे परमानन्दरूप है। अविद्या, काम और कर्मके वशीभूत होकर ही वह भोग्यप्रपञ्चका सेवन करता है। भोग्य प्रामाणिकरीतिसे विचार करनेपर भोक्ताका शेष सिद्ध होता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस रहस्यको हृदयङ्गम कर भोग्य पदार्थोमें रमना छोड़ देना चाहिये। भोक्ता अपने हीं यथार्थ स्वरूपके प्रति आस्थावान् (अनुरक्त) होकर जब आत्मानुसन्धानमें संलग्न हो जाता है—सम्पूर्ण जगत्से उपराम होकर परमात्मस्वरूपके परिमार्गणमें प्रवण और प्रवीण हो जाता है, तब उसे अनामय आत्मपदकी प्राप्ति होती है।

बाह्य स्थूलप्रपञ्च जहाँ जीवका भोग्य है, वहाँ आन्तर सूक्ष्मप्रपञ्च भी। दर्श-पूर्णमास, दुग्ध, ब्रीहि आदिका उपभोग जहाँ वह देव, पशु, मनुष्यादि शरीरोंके योगसे करता है, वहाँ नाम-रूप और कर्मोंके अभिव्यञ्जक वाक्, मन और प्राणात्मक सूक्ष्मशरीरका उपभोग अविद्याके योगसे करता है। इस प्रकार कार्य-कारणात्मक प्रपञ्च 'अन्न' है। यह तथ्य सप्तान्नब्राह्मणके अनुशीलनसे सिद्ध है। अन्नात्मकप्रपञ्चको अनावश्यक महत्त्व न देकर आत्मरति, आत्मतृप्ति और आत्मसन्तुष्टि लाभकर जीवनको कृतकृत्य करनेमें ही महत्त्वबुद्धि उपलब्ध करनी चाहिये। स्वधारूप – अन्नात्मक – भोग्यप्रपञ्चको आत्मस्वरूपमें आरोपित जानकर परमविश्राम लाभ करना चाहिये—

"अहमन्नं सदान्नाद इति हि ब्रह्मवेदनम्।
ब्रह्मस्वरूपविज्ञानाज्जगद् भोज्यं भवेत्खलु॥
जगदात्मतयाभाति यदा भोज्यं भवेत्तदा।
ब्रह्म स्वात्मतया नित्यं भक्षितं सकलं तदा॥
यदाभासेन रूपेण जगद् भोज्यं भवेत्तदा।
मानतः स्वात्मना भातं भक्षितं भवति ध्रुवम्॥"

(पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ३८, ४०, ४१, ४२)

ध्यान रहे, कार्योपाधिकचित्पदार्थ जीव है। यहाँ जरायुजादिप्राणिप्रभेदरूप जीवोंके सर्जनादि और भोक्तृत्वादिका प्रतिपादन श्रुतिको अभीष्ट है। वस्तुतः जीव कार्यकारणातीत अज और नित्य है– **'अजो नित्यः'** (कठ० १.२.१८, गीता २.२०)

वेदार्थपारिजातके अनुसार—

"परमेश्वरो भोक्तृभोग्यादिरूपेण प्रपञ्चं निर्माय
तदनुप्रविश्य भोक्तृभोग्यादिरूपेण विभागं कृतवान्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तयोश्च स्वधा अन्नं भोग्यजातम् अवस्तात् निकृष्टं प्रयतिः प्रयतिता भोक्ता परस्तात् पर उत्कृष्टः। उभयोर्भोक्तृभोग्यभावेन शेषशेषिभावेन शेषिणो भोक्तुरुत्कर्षः, शेषस्य भोग्यस्यापकर्षः। अत्र 'ऊर्ध्वमूलमधःशाखम्' (भगवद्गीता १५.१) इत्यत्र कारणत्वाद् व्यापकत्वात् सूक्ष्मत्वात् स्वच्छत्वात् परमात्मन उत्कृष्टत्वाद् ऊर्ध्वत्वम्। कार्यत्वाद् व्याप्यत्वात् स्थूलत्वादस्वच्छत्वान्महदादिकार्याणामपकृष्टत्वादधःपदवाच्यता, तथैव प्रकृतेऽपि भोग्यत्वात् अन्नापरपर्यायस्य स्वधापदवाच्यस्य भोग्यस्य शेषत्वादवरत्वम्। रेतोधातुः कर्मकर्तुर्भोक्तुर्जीवस्य शेषित्वात् परत्वमुत्कृष्टत्वमुक्तम्।''

(पृ० १२२८-१२२९)

परमेश्वर भोक्ता और भोग्यके रूपमें इस प्रपञ्चका निर्माण करता है। वह स्वयं उसमें प्रविष्ट होता है और अपना ही भोक्ता और भोग्यके रूपमें विभाग करता है। इसमें स्वधा, अन्न अर्थात् भोग्यवस्तु निकृष्ट कोटिकी है और प्रयति = भोक्ता उत्कृष्ट है। इन दोनोंका परस्पर भोक्तृ-भोग्यभाव अर्थात् शेषिशेषभाव है। शेषी भोक्ता प्रधान है। शेष-भोग्य अप्रधान है। 'ऊर्ध्वमूलम्' इस वचनके अनुसार कारण, व्यापक, स्वच्छ होनेसे परमात्मा उत्कृष्ट (ऊर्ध्वस्थानीय) है। कार्य, व्याप्य, स्थूल, अस्वच्छ होनेसे महदादि अपकृष्ट (अधःस्थानीय) हैं। इसी पद्धतिसे प्रकृतमें भी भोग्य होनेसे अन्नशब्दके पर्यायवाची स्वधापदके वाच्य भोग्यपदार्थ शेष होनेसे अवर (अपकृष्ट) मान्य हैं तथा रेतस्का आधायक, कर्मका कर्त्ता, भोक्ता जीव शेषी होनेसे उत्कृष्ट कहा गया है॥५॥

● ६. जगत्कारणदुर्लक्ष्यतासन्दर्भ

● ६. सङ्गति :– मन-वाणीसे अगोचर परब्रह्मको अनिर्वचनीया मायाके योगसे जगतका निमित्तोपादानकारण स्वीकार कर लेनेपर भी उसे 'इदमित्थम्' –

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'यह ऐसा' बता पाना कार्योपाधिक ब्रह्मादिदेवशिरोमणियोंके लिये भी दुष्कर ही —

● **मन्त्र :–**

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥ ६॥

● **पदच्छेद :–** **कः, अद्धा, वेद, कः, इह, प्र वोचत्, कुतः, आजाता, कुतः, इयम्, विसृष्टिः। अर्वाक्, देवाः, अस्य, विसर्जनेन, अथ, कः, वेद, यतः, आबभूव॥ ६॥**

● **मन्त्रार्थ :– इयम्** - यह दृष्टिगोचर होनेवाली **विसृष्टिः** - क्रिया-कारक-फलात्मिका, नाम-रूप-कर्मात्मिका, अग्नि-सोम-सूर्यात्मिका, वाङ्मनःप्राणात्मिका, अन्न-अन्नादात्मिका, स्थावर-जङ्गमात्मिका, भूत-भौतिकात्मिका, प्रकृति-प्राकृतरूपा, सुख-दुःख-मोहात्मिका, सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका विविधरूपा सृष्टि **कुतः** (= कस्मादुपादानकारणात्) - किस उपादानकारणसे **(च)** - और **कुतः** (= कस्मान्निमित्तकारणात्) - किस निमित्तकारणसे **आजाता** (= समन्ताज्जाता-प्रादुर्भूता) - समुद्भूत हुई? इस तथ्यको **इह** - इस लोकमें **कः** - कौन **अद्धा** - वस्तुतः पूर्णतः भलीभाँति **वेद** - जानता है? तथा **कः** - कौन **प्र वोचत्** (= प्रब्रूयात्) - वस्तुतः पूर्णतः भलीभाँति बता ही सकता है? **अस्य** - इस जगत्की **विसर्जनेन** - भूत-भौतिकरूपसे उत्पत्तिके द्वारा **देवाः** - देवगण **अर्वाक्** - अर्वाचीन किये हुए हैं; अर्थात् पश्चात् उत्पन्न हुए हैं। ऐसी स्थितिमें **(तथाविधस्ते कथं स्वोत्पत्तेः पूर्वकालिकां सृष्टिं जानीयुः। अजानन्तो वा कथं प्रब्रूयुः)** - वे अर्वाचीनदेव भला अपनी उत्पत्तिके पूर्व उत्पन्न सृष्टिको कैसे जान सकते हैं तथा न जानते हुए भी कैसे कह सकते हैं? **अथ** (= एवं सति) - ऐसी स्थितिमें **यतः** - जिस कारणसे (जिससे) सम्पूर्ण जगत् **आबभूव** (= अजायत) - उत्पन्न हुआ उस जगत्कारणको जब देवगण ही नहीं जानते, तब **कः** - कौन मनुष्यादि, **वेद** - जानता है?॥

● **भावार्थ :–** यह विविध विचित्र भूत-भौतिक, भोक्ता-भोग्यादिरूपा सृष्टि किस उपादानकारणसे और किस निमित्तकारणसे प्रकट हुई है – इस तथ्यको परमार्थतः कौन जानता है? इस जगत्में उसका कौन प्रवचन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर सकता है? इस भूत-भौतिक प्रपञ्चके विसर्जनके बाद ही देवता, मन और इन्द्रियादिकी जब उत्पत्ति हुई है, तब वे भला उस मूलकारणको कैसे जान सकते हैं? सृष्टिका मूलतत्त्व दुर्विज्ञेय है; क्योंकि जो वस्तु जानी जाती है, वह तो दृश्य, जड, विकारी ही होती है। जिसका हम कारणके रूपमें अनुमान करते हैं या जिसे हम कारणरूपमें जानते हैं, वह भी छिन्न-भिन्न होनेवाला अन्य ही होता है। ऐसी स्थितिमें कार्य-कारणकल्पनाके प्रकाशक सर्वाधिष्ठान स्वयंप्रकाश प्रत्यग्ब्रह्मको ज्ञानका विषय कैसे बनाया जा सकता है?

● **व्याख्येय :– 'को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः'** - "क्रिया-कारक-फलात्मक, नाम-रूप-क्रियात्मक, अन्न-अन्नादात्मक, अग्नि-सोमात्मक, स्थावर-जङ्गमात्मक, भूत-भौतिक, प्रकृति-प्राकृत, सुख-दुःख-मोहात्मक यह जगत् किस उपादान और किस निमित्तकारणसे उत्पन्न हुआ है, इस तथ्यको कौन विस्तारपूर्वक जानता है और कौन विस्तारपूर्वक कह सकता है? अभिप्राय यह है कि परमात्मा दुर्विज्ञेय है, न कि असत्। उत्तरकण्डिका परमात्माकी सत्ताका दृढतापूर्वक प्रतिपादन करती है।"

● **सायणभाष्यम् :– एवं भोक्तृभोग्यरूपेण सृष्टिः संग्रहेण प्रतिपादिता। "एतावद्वा इदमन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नमग्निरन्नादः"** (श० ब्रा० १४.४.२.१३) **इतिवत्। अथेदानीं सा सृष्टिर्दुर्विज्ञानेति न विस्तरेणाभिहितेत्याह–को अद्धेति। कः पुरुषोऽद्धा पारमार्थ्येन वेद जानाति। को वेहास्मिँल्लोके प्र वोचत् प्रब्रूयात्। इयं दृश्यमाना विसृष्टिर्विविधा भूतभौतिकभोक्तृभोग्यादिरूपेण बहुप्रकारा सृष्टिः कुतः कस्मादुपादानकारणात् कुतः कस्माच्च निमित्तकारणादाजाता समन्ताज्जाता प्रादुर्भूता। एतदुभयं सम्यक्को वेद को वा विस्तरेण वक्तुं शक्नुयादित्यर्थः।**

● **व्याख्या** – यह जगत् भोग्य और भोक्तृरूप है, अन्न और अन्नादरूप है। 'सोम' अन्न है और 'अग्नि' अन्नाद। जगत् अग्नि-सोमात्मक है - **'अग्नीषोमात्मकं विश्वम्'** (बृहज्जाबालोप० २।१), **अग्नीषोमात्मकं जगत्'** (बृहज्जाबालोप० २।४); **'पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।'** (गीता १५.१३), **'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥' (गीता १५.१४)

अध्यात्मदृष्टिसे जगत् वाक् और मनोमात्र है। अधिभूत-दृष्टिसे जगत् नाम-रूपात्मक है तथा अधिदैवदृष्टिसे जगत् अग्नि और सोमात्मक है– **'यच्छेद्वाङ्मनसी'** (कठोपनिषत् १.३.१३), **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** (तैत्तिरीयोपनिषत् २.४).; **'नामरूपाद्वि-विमुक्तः'** (मुण्डक ३.२.८), **'तासां नामरूपे पुरुषे'** (प्रश्नोपनिषत् ६.५), **'नामरूपे व्याकरवाणि'** (छा० उ० ६.३.२), **'नामरूपे व्याकरोत्'** (छा० ६.३.३), **'तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियते'** (बृह० १.४.७); **'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते'** (तै० ३.१२.७), **'अग्नीषोमात्मकं विश्वम्'** (बृहज्जाबालोप० २.१), **'अग्नीषोमात्मकं जगत्'** (रामपूर्वतापिन्युपनिषत् ४.६, रुद्रहृदयोप० ९)।

जगत्का संक्षिप्त दिग्दर्शन पूर्वमन्त्रोंके माध्यमसे कराया गया। यह नामरूपात्मक प्रपञ्च अनिर्वचनीय होनेसे निरूपणका विषय नहीं है। जगत्कारण ब्रह्म शब्दप्रवृत्तिके हेतु जाति, गुण, क्रिया, सम्बन्ध, रूढिरहित है। ऐसी स्थितिमें जगत् कितना है, कैसा है और कौन इसका उपादान तथा निमित्त है, किसके तो यह आश्रित है और किसमें यह प्रविलीन होता है, आदि तथ्योंको भला कौन विधिवत् जानता है? साथ ही (अथवा) कौन इसे ठीक-ठीक बता सकता है?

श्रीपुष्पदन्तके शब्दोंमें—

''किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं,
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः॥'' ५॥

चेष्टा, काय (शरीर), उपाय (सहकारिकारण), आधार (अधिकरण), उपादान (समवायिकारण) की अपेक्षाके विना कार्यसम्पादन सम्भव नहीं। कुलाल (कुम्हार) घट बनाता है। वह देहवान् होता है। घटनिर्माणोपयुक्त चेष्टायुक्त देहसे चक्रभ्रमणादिरूप चेष्टाके द्वारा सलिल, सूत्रादि उपायोंका आलम्बन लेकर चक्रादि अधिकरणमें मृत्तिकारूप उपादानको घटाकृति प्रदान करता है। यदि जगत्कर्ताको चेष्टादि सब सामग्रियोंकी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दासता प्राप्त होती है तो यह मानना चाहिये कि वह ईश्वर ही नहीं है। घटादि दृष्टान्तको लेकर ही ईश्वरवादी क्षित्यादि (पृथिवी आदि) के कर्ताको ईश्वर सिद्ध करते हैं। दृष्टान्ततुल्य दार्ष्टान्तिक पृथ्वी आदिकी रचनामें भी रचयिताको उक्त सामग्रियोंकी अपेक्षा अवश्य पड़ती होगी। ऐसा माननेपर उभयतः पाशारज्जु प्राप्त है। जगत्कर्ताको माननेपर उसकी अनीश्वरता सिद्ध है। उसे न माननेपर कर्तृत्वकी असिद्धिसे भी ईश्वरसिद्धि असम्भव है। इसी प्रकार—

"अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणञ्च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवञ्चैवात्र पञ्चमम्॥"

(भगवद्गीता १८.१४)

"देहरूप अधिष्ठान, विज्ञानमय (साधिष्ठान सबुद्धि चिदाभास)-रूप कर्त्ता, इन्द्रिय-प्राण-मनोरूप करण, कार्यानुगुण करणगत विविध चेष्टा और करणोंके अनुग्राहक दैव तथा पूर्वानुष्ठित शुभाशुभ कर्मोंके संस्कार–ये कर्मके प्रसिद्ध पाँच हेतु हैं।"

उक्त अधिष्ठानादि स्वेतर चतुर्विध हेतुओंकी आवश्यकता पृथ्वी आदिके रचयिताको भी होनी चाहिये। इनकी आवश्यकता होनेपर वह स्वतन्त्र ईश्वर नहीं, न होने पर विना इनके वह कर्त्ता नहीं।

वस्तुतः घटादिके कर्त्तामें जो देहादिकी स्थिति है, वह ईश्वरमें सर्वतोभावेन निष्पन्न हो, ऐसा आवश्यक नहीं। व्याप्तिके विना सामानाधिकरण्यमात्र असाधक ही होता है। ऐसा न मानें तो महानसादि (रसवती, रसोई आदि) में धूम-वह्नि (धूँआ और आग) की व्याप्तिका ग्रहण करते समय ही व्यञ्जनादिमत्त्व भी परिलक्षित होता है, फिर तो पर्वतादिमें भी उनका अनुमान होना चाहिये; परन्तु ऐसा होता नहीं। अभिप्राय यह है कि रसोईघरमें धूम और अग्निके साहचर्यतुल्य पर्वतमें साहचर्य है, यह तो ठीक है; परन्तु उससे निष्पन्न धूमाग्नि साहचर्यातिरिक्त छप्पन भोग और छत्तीसो व्यञ्जनकी स्थिति पर्वतमें सिद्ध करना जैसे उपयुक्त नहीं; वैसे ही ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान् कर्त्ताको कार्यके मूलमें सिद्ध करना तो ठीक; परन्तु उस कर्त्ताको देहादियुक्त अनुमान करना अनुचित। ऐसा न समझनेवाले विमोहित तो होते ही हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'देवादिवदपि लोके' (ब्रह्मसूत्रम् २.१.२५) – अचिन्त्य विचित्रशक्ति मायाके योगसे, विना इतर हेतुओंकी दासताके ही ईश्वरमें देवादितुल्य सब सम्भव है। कहा भी है—

"आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम्।
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः॥
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते॥
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥"

(महाभारतभीष्मपर्वणि ५.१०-१२)

"ये सब भूत क्रमसे नष्ट होते हैं और क्रमसे ही उत्पन्न होते हैं। (पृथ्वी आदिके क्रमसे इनका लय होता है और आकाशादि क्रमसे इनका जन्म-आविर्भाव होता है।) ये सब अपरिमेय हैं। इनका रूप ईश्वरकृत है। भिन्न-भिन्न लोकोंमें पाञ्चभौतिक धातु दृष्टिगोचर होते हैं। मनुष्य तर्कके द्वारा उनके प्रमाणोंका प्रतिपादन करते हैं॥ जो अचिन्त्य भाव हैं, उन्हें ,तर्कसे सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। जो प्रकृतिसे परे है, वही अचिन्त्यस्वरूप है॥"

श्रीमैत्रेय उवाच

"निर्गुणस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याप्यमलात्मनः।
कथं सर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मणोऽभ्युपगम्यते॥"

श्रीपराशर उवाच

"शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या (:) भावशक्तयः॥
भवन्ति तपसां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता।
तन्निबोध यथा सर्गे भगवान् सम्प्रवर्तते॥"

(श्रीविष्णुपुराणे १.३.१-३)

श्रीमैत्रेयजीने कहा–"भगवन्! जो ब्रह्म निर्गुण, अप्रमेय, शुद्ध और निर्मलात्मा है, उसको सर्गादिका कर्त्ता (वह सर्गादिका कर्त्ता हो, ऐसा) कैसे माना जा सकता है?"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

''श्रीपराशरने कहा–हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय! समस्त भावपदार्थोंकी शक्तियाँ अचिन्त्य ज्ञानकी गोचर (विषय) होती हैं। उनमें कोई युक्ति काम नहीं देती। अग्निकी शक्ति उष्णताके समान ब्रह्मकी सर्गादिरचनारूपा शक्तियाँ स्वाभाविक हैं। अब जिस प्रकार भगवान् सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं, उसे सुनो॥''

● **व्याख्येय :– 'अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥'**
– ''दिव्यदर्शी देवगण भी सर्गके अनन्तर होनेवाले विसर्ग (भूतसृष्टिके बाद होनेवाली भौतिकसृष्टि) के अन्तर्गत हैं। ऐसी स्थितिमें स्वोत्पत्तिसे पूर्वसिद्ध पदार्थोंको (भूत, माया, मायावी परमात्माको) जाननेमें वे असमर्थ ही हैं। फिर उनसे भी अवर भला कौन जान सकता है कि यह समग्र प्रपञ्च किससे उत्पन्न हुआ?''

● **सायणभाष्यम् :– ननु देवा अजानन्तः सर्वज्ञास्ते ज्ञास्यन्ति वक्तुञ्च शक्नुवन्तीत्यत आह–अर्वागिति। देवाश्चास्य जगतो विसर्जनेन वियदादिभूतोत्पत्त्यनन्तरं विविधं यद् भौतिकं सर्जनं सृष्टिस्तेनार्वागर्वाचीनाः कृताः। भूतसृष्टेः पश्चाज्जाता इत्यर्थः। तथाविधास्ते कथं स्वोत्पत्तेःपूर्वकालीनां (पूर्वकालिकां) सृष्टिं जानीयुः। अजानन्तो वा कथं प्रब्रूयुः। उक्तं दुर्विज्ञानत्वं निगमयति। अथैवं सति देवा अपि न जानन्ति किल। तद्व्यतिरिक्तः को नाम मनुष्यादिर्वेद तज्जगत्कारणं जानाति यतः कारणात्कृत्स्नं जगदाबभूव अजायत॥ ६॥**

● **व्याख्या–** यदि कहें कि कुतर्ककी तो कोई बात नहीं; परन्तु विधिवत् समग्ररूपसे जानकारीकी बात है। हम अल्पज्ञोंकी जानकारी इस सम्बन्धमें नहीं, परन्तु सर्वज्ञ देवता तो इन सब रहस्योंको भलीभाँति जानते ही हैं। वे तो अमोघदर्शी हैं; करणोंके अनुग्राहक हैं। ऐसी भावना प्राप्त होनेपर श्रुति कहती है– **'अर्वाग्देवाः'** देवगण कार्यकोटिके हैं। वे सर्गके अनन्तर होनेवाले विसर्गसिद्ध-अर्वाचीन हैं। ऐसी स्थितिमें वे स्वोत्पत्तिसे पूर्वसिद्ध पदार्थोंको भला कैसे जान सकते हैं? अथ वा **'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्। यः कारणानि निखिलानि तानि'** (श्वेताश्वतरोपनिषत् १.३) के अनुसार ब्रह्मवादीदेवगण ध्यानयोगके आलम्बनसे जगत्कारण देवात्मशक्तिको जान भी लें तो उसका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदमित्थम् (यह ऐसा ही है) इस प्रकार प्रतिपादन कैसे कर सकते हैं, क्योंकि **'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि।।'** (केनोपनिषत् १.३) इस श्रुतिके अनुसार वह तत्त्व अविदित और विदित दोनोंसे विविक्त है। इस प्रकार जब देवता ही इस अचिन्त्य विषयमें आश्चर्यचकित, विस्मित और मौन हैं, तो मनुष्यादि भला कैसे जान सकते हैं और कह सकते हैं कि इस कारणसे ऐसा हुआ?

पुराणोंके दशविध लक्षणोंमें प्रथम सर्ग और द्वितीय विसर्ग है। ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होकर रूपान्तर होनेसे आकाशादि पञ्चभूत, शब्दादि पञ्च तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, अहंकार और महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, उसका नाम 'सर्ग' है। ब्रह्माजीके द्वारा जो विभिन्न चराचर सृष्टियोंका निर्माण होता है, उसका नाम 'विसर्ग' है। अभिप्राय यह है कि जब मूलप्रकृतिमें लीन गुण (साम्यावस्थाको प्राप्त गुण) क्षुब्ध होते हैं, तब महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्वसे तामस, राजस और वैकारिक (सात्त्विक) तीन प्रकारके अहङ्कार बनते हैं। त्रिविध अहम्से मन, इन्द्रिय तथा पञ्चतन्मात्राओंकी अभिव्यक्ति होती है। पञ्चतन्मात्राओं (सूक्ष्मभूतों) से पञ्चमहाभूतों (स्थूलभूतों) की अभिव्यक्ति होती है। यह जगत् पञ्चभूतात्मक है। इसीका नाम 'सर्ग' है। परमेश्वरके अनुग्रहसे सृष्टिसामर्थ्य लाभकर महत्तत्त्वादि जीवोंके पूर्व कर्मानुसार अच्छी-बुरी वासनाओंके अनुसार एक बीजसे दूसरे बीजके समान चराचर शरीरात्मक जीवकी (चतुर्विध उपाधियोंकी) जो सृष्टि करते हैं, इसीका नाम 'विसर्ग' है।

उक्त 'सर्ग'–लीलामें पञ्चज्ञानेन्द्रियों और पञ्चकर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति राजस अहम्से होती है और दस इन्द्रियोंके अनुग्राहक देवोंकी अभिव्यक्ति सात्त्विक (वैकारिक) अहम्से होती है तथा तामस अहम्से शब्दादि पञ्चतन्मात्राओं (अपञ्चीकृत पञ्चभूतों) की अभिव्यक्ति होती है और उनसे पञ्चमहाभूतों (पञ्चीकृत पञ्चभूतों) की उत्पत्ति (अभिव्यक्ति) होती है। इस सर्गलीलाके बाद पञ्चभूतोंसे जो स्थूल प्रपञ्च और देव, मनुष्य, पश्वादि शरीरोंकी रचना होती है, वह विसर्गलीला है।

उपर्युक्त पौराणिकप्रक्रियासे यह तथ्य सिद्ध है कि देवता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीन प्रकारके होते हैं—(१) पञ्चीकृत पञ्चभूतोंके उज्ज्वल (प्रकाशात्मक–सात्त्विक) अंशसे द्रव्यसूक्ष्मविपाकात्मक जिनका धीविग्रह बनता है (देवसंज्ञा जिनकी है), (२) सात्त्विक अहम्से जिनका प्राकट्य होता है; वे दिक्, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार; अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति और यम (मृत्यु), (३) चन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र और क्षेत्रज्ञ (वासुदेव)–रूप जो कि क्रमशः मन, बुद्धि, अहम् और चित्तके अधिदैव हैं। इनमें प्रथमकी अपेक्षा द्वितीय और द्वितीयकी अपेक्षा तृतीय उत्कृष्ट हैं। प्रथम देहयुक्त (योनिविशेष) होनेसे विसर्गके अन्तर्गत हैं। द्वितीय सर्गके अन्तर्गत हैं। तृतीयमें मन, बुद्धि, अहम्के चन्द्र, ब्रह्मा, रुद्ररूप देव भी सर्गके अन्तर्गत हैं। महत् या चित्तके अधिदैव अव्याकृत कोटिके स्वयं वासुदेव हैं। सर्वोपरि महत्त्व वैष्णवप्रस्थानमें इन्हींका है। क्योंकि भागवतप्रस्थानमें राजस अहम्से अभिव्यक्त दश इन्द्रियोंके अनुग्राहक सात्त्विक अहम्से अभिव्यक्त दशविध देव हैं और मन भी सात्त्विक अहम्से ही अभिव्यक्त है, इस प्रकार दशविध देव और मन एक कोटिके हैं; अतः सात्त्विक अहम्से अभिव्यक्त मनके अनुग्राहक 'चन्द्र' महत् से उद्भूत तथा महत् कोटिके हों यह आवश्यक है। इसी प्रकार महत्के अनुग्राहक देव अव्याकृत कोटिके हों, यह आवश्यक है। द्वितीयकोटिप्रविष्ट उपेन्द्रकी लोकवत्-लीलान्यायसे विष्णुरूपता सिद्ध है। अव्याकृतके अनुग्राहक देव वेदवेद्य स्वप्रकाश जगदाधार (अधिष्ठान)ब्रह्म हों, यह आवश्यक है। अव्याकृत जगत्का उपादान और निर्गुणब्रह्म जगत्का अधिष्ठान (विवर्तोपादान) है—

"भ्रमाधिष्ठानताऽस्माभिः प्रकृतित्वमुपेयते।
निर्गुणेऽप्यस्ति जात्यादौ सा ब्रह्म प्रकृतिस्ततः ॥"

(वैयासिकन्यायमाला २.१.१३.३७.२६)

उक्त तीन प्रकारके देवोंमें विसर्गकोटिके अधिदैवोंके सम्बन्धमें कहा गया है कि **'ते कथं स्वोत्पत्तेः पूर्वकालीनां सृष्टिं जानीयुः।'**— 'वे भला अपनी उत्पत्तिसे पूर्वकालीन (पूर्वकालिक) सर्गको कैसे जान सकते हैं?', द्वितीय जो सर्गकोटिके देव हैं, उनके सम्बन्धमें भी उक्त तथ्य चरितार्थ होता है। तृतीयकोटिके जो चन्द्र, ब्रह्म, रुद्र हैं, उनके सम्बन्धमें भी उक्त तथ्य चरितार्थ होता है। तृतीय कोटिके जो क्षेत्रज्ञ, अव्याकृत और प्रस्थानभेदसे वासुदेव, शिव आदि नामोंसे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्दिष्ट होते हैं, वे कारणोपाधिक होनेसे जान सकते हैं; परन्तु जानते हुए भी मन और वार्णासे अतीत वस्तुको कैसे कह सकते हैं?

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीतामें उक्त तेरह देवोंके सम्बन्धमें कहा गया है कि '**न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः। अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥**' (१०.२)। चौदहवें और पन्द्रहवें (अव्याकृत और परब्रह्म) देव श्रीहरिने अपने सम्बन्धमें कहा है कि—

"नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥
हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥"
(भगवद्गीता १०.४०, १९)

ध्यान रहे, पौराणिकप्रक्रियाके अनुसार सांख्यशैलीमें श्रोत्र, वागादि दश इन्द्रियोंके देव जहाँ सात्त्विक (वैकारिक) अहम्से स्फुरित हैं, वहाँ औपनिषदप्रक्रियामें अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंके समष्टि (सम्मिलित) सत्त्वसे स्फुरित (अभिव्यक्त) हैं– '**सत्त्वसमष्टित इन्द्रियपालकानसृजत्**' (पैङ्गलोपनिषत् १)। इस रीतिसे विचार करनेपर अन्तःकरणचतुष्टय जो कि श्रोत्रादिके दशविध अधिदैवोंके तुल्य अपञ्चीकृत पञ्चभूतोंके सम्मिलित सत्त्वसे अभिव्यक्त हैं, उनके अधिदैव चन्द्रादि-चतुष्टय हैं। तमःप्रधाना प्रकृतिमें प्रतिबिम्बित पुरुष और उसके प्रकाशक तथा नियामक मलिन-सत्त्वात्मिका प्रकृति (अविद्या) -विशिष्ट (उपहित) चेतन '**जीव**' सिद्ध होता है। उसका नियामक विशुद्धसत्त्वविशिष्ट (उपहित) चेतन– '**ईश्वर**' और उसका आश्रय गुणसाम्यानिर्वाच्या मूलप्रकृतिप्रतिबिम्बित '**साक्षि चैतन्य**' है। उसका भी आश्रय–परम प्रकाशक स्वप्रकाश '**ब्रह्म**' है।

इस प्रकार पैङ्गलोपनिषत्के अनुसार ब्रह्म, साक्षिचेतन, ईश्वर, जीव तकमें चन्द्रादि चतुर्दश देवोंकी गति नहीं है।

देव न सही, श्रुति तो कह ही सकती है! नहीं। श्रुतिका प्रतिपाद्य जब कार्यब्रह्म और कारणब्रह्म होता है, तब वह उनका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिग्दर्शनमात्र कराती है; क्योंकि वस्तु अनिर्वाच्य है। जब उसका प्रतिपाद्य परब्रह्म होता है, तब वह अतद्व्यावृत्तिके द्वारा ही प्रबोधित करती है; क्योंकि तत्त्व शब्दप्रवृत्तिका अगोचर (अलक्ष्य) है—

"द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः।
ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतय-
स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः॥"

(श्रीमद्भागवते १०.८७.४१)

"भगवन्! स्वर्गादि लोकोंके अधिपति इन्द्र, ब्रह्मा प्रभृति भी आपका पार न पा सके। आश्चर्यकी बात तो यह है कि आप भी स्वयंको नहीं जानते; क्योंकि जब अन्त है ही नहीं तब कोई जानेगा कैसे? आप भी स्वयंको जानेंगे कैसे? प्रभो! जैसे आकाशमें हवासे धूलके नन्हें-नन्हें कण उड़ते रहते हैं; वैसे ही आपमें कालके वेगसे अपनेसे उत्तरोत्तर दस गुने सात आवरणोंके सहित असंख्य ब्रह्माण्ड एक साथ ही घूमते रहते हैं। तब भला, आपकी सीमा कैसे मिले? हम श्रुतियाँ भी आपके स्वरूपका साक्षात्-वर्णन नहीं कर सकतीं। आपके अतिरिक्त वस्तुओंका निषेध करते-करते अन्तमें अपना भी निषेध कर देती हैं, आपमें ही अपनी सत्ता समाहित कर सफल हो जाती हैं॥"

श्रीपुष्पदन्त महोदयने इसी अभिप्रायसे कहा है—

"अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः॥"

(श्रीशिवमहिम्नस्तोत्रे २)

भगवान् निर्गुण हों या सगुण, कार्य-कारणातीत हों या कार्य-कारणरूप वे मनवाणीके पथसे सर्वथा अतीत ही सिद्ध होते हैं। सगुणके दिव्यातिदिव्य अचिन्त्य गुणगण अनन्त होते हैं। अनन्तका प्रतिपादन अशक्य है। निर्गुण अनन्त है, उसका प्रतिपादन भी अशक्य है। **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** (तैत्तिरीय २.९) यह श्रुति इसी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथ्यका प्रतिपादन करती है। अपौरुषेय वेदवाणी भी चकित-सी होकर तात्पर्यरूपसे ही प्रतिपादन करती है। श्रुति भी क्या करे, 'सगुणपक्षमें तनिक भी अयुक्त न हो जाय और निर्गुणपक्षमें स्वप्रकाशका अन्याधीन प्रकाश न हो जाय' इस भावनासे वह बहुत सम्भालकर ही कुछ कहनेके लिये उद्यत होती है। सगुणपक्षमें उसे तद्व्यावृत्तिसे बचते हुए अभेदेन प्रतिपादन करना होता है– **'न तद्व्यावृत्तिः, अतद्व्यावृत्तिः'**, इसलिये उसे **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (छा० ३.१४.१), **'सर्वकर्मा सर्वकामः'** (छा० ३.१४.२, ४) कहकर ही सन्तोष करना पड़ता है। प्रत्येकका माहात्म्य व्यक्त करना तो उसके लिये अशक्य ही होता है। निर्गुणपक्षमें उसे **'न तत्, अतत्'**, **'तद्व्यावृत्त्या तत्परित्यागेन'** – अविद्या तत्कार्यात्मिक उपाधिद्वयका परित्याग करते हुए जहदजहल्लक्षणाके द्वारा प्रतिपादन करना होता है।

ऐसी स्थितिमें ऐसे सगुण और निर्गुणकी महिमा भला कौन कह सकता है? सगुण परमात्मा अनन्त कल्याणगुणगणनिलय हैं **'अनन्तत्वादेव न स्तुत्यर्हः'**, वे इतने ही गुणोंसे युक्त हैं, ऐसा कौन कह सकता है? निर्गुण एकरूप होनेपर भी अभिधावृत्तिसे ज्ञेय नहीं; अतः प्रतिपादनका विषय नहीं। **'तत्त्वमसि'** में क्रमशः तत्पदार्थ और त्वंपदार्थकि रूपमें मायोपहित-अविद्योपहित चैतन्य 'शक्य' तत्पदार्थ है तथा माया और अविद्याके कार्य आकाशादि और अहम्-ममादिसे उपहित चैतन्य 'शक्य' त्वम्पदार्थ है। उपाधित्यागसे अनुपहित चैतन्यस्वरूप स्वप्रकाशको भी तदाकारवृत्तिजननमात्रके द्वारा (वृत्तिव्याप्तिके द्वारा, न कि फलव्याप्तिके द्वारा) अविद्या और उसके कार्योंकी निवृत्तिसे श्रुति बोधित करती है।

इस प्रकार जब देवगण उस तत्त्वको नहीं जान सकते , तब मनुष्योंमें भला कौन जान सकता है? मनुष्योंके साथ तो अल्पज्ञता सर्वतोभावेन अनुविद्ध है॥ ६॥

● ७. दुर्धर–दुर्विज्ञेयतासन्दर्भ

● ७. **सङ्गति :**– जगत्सर्जनकी दुर्विज्ञेयताके तुल्य ही सृष्ट जगत्की दुर्धरता और दुर्विज्ञेयता —

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **मन्त्र :–**

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥ ७॥

● **पदच्छेद :– इयम्, विसृष्टिः, यतः, आबभूव, यदि वा, दधे, यदि वा न। यः अस्य, अध्यक्षः, परमे, व्योमन्, सः, अंग, वेद, यदि, वा, न, वेद॥ ७॥**

● **मन्त्रार्थ :– इयम्** - यह **विसृष्टिः** - गिरिनदीसमुद्रादिरूपसे विविध और विचित्र सृष्टि **यतः** -जिस उपादानात्मक परमात्मासे **आबभूव** - **(आजाता)** उत्पन्न हुई, **(सोऽपि किल) यदि वा दधे** - वह भी इसे क्या सचमुचमें धारण करता है, **यदि वा न** - या नहीं? **(यदि धारयेदीश्वर एव धारयेन्नान्य इत्यर्थः)** अभिप्राय यह है कि यदि इसे कोई धारण कर सकता है तो परमेश्वर ही, अन्य नहीं। यह कार्यात्मक जगत् निराधार तो है नहीं। ब्रह्मरूप आधार नैल्याधार नभतुल्य अधिष्ठानात्मक ही है। ऐसी स्थितिमें उसे इसे धारण करनेमें भला क्या आयास करना पड़ता है? वह तो निज विद्यमानतामात्रसे नैल्याधार नभतुल्य जगदाधार है। अथ वा स्थूणानिखननन्यायसे जगदाश्रयकी दुर्विज्ञेयताका ही ऋचा प्रतिपादन करती हुई कहती है **इयम् विसृष्टिः यतः** (= यस्मात्परमात्मनः) आबभूव (= आ समन्तादजायत), –यह विविधरूपा सृष्टि जिस परमात्मासे सर्वतोभावेन समुत्पन्न हुई **(तं को वेद)** उसे कौन जानता है? अभिप्राय यह है कि **'यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः'** (केन० २.११.३) –जिसके लिये वह अमत है, उसीके लिये वह मत (विदित) है, जिसके लिये वह मत है, उसके लिये वह अमत (अविदित) ही है। **(स एव उपादानभूतः परमात्मा स्वयमेव निमित्तभूतोऽपि सन्) यदि वा दधे यदि वा न (= इदं जगत्ससर्ज यदि वा न ससर्ज)** - उसी उपादानभूत परमात्माने स्वयम् ही निमित्त होकर इस सृष्टिको रचा है या नहीं, इस तथ्यको कौन जानता है? **अस्य** - इस भूत-भौतिक जगत्का **अङ्ग** - लोक-वेदप्रसिद्ध **परमे व्योमन् (व्योमनि)** - विभु सच्चिदानन्दस्वरूपनिजमहिमामें अथवा स्वशक्तिभूता मायारूप परमव्योममें प्रतिष्ठित **यः** - जो **अध्यक्षः** - परमाश्रय परमेश्वर है, **सः** - वह भी स्वयम्को या (तां **सृष्टिम्**) स्वयम्से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समुत्पन्न उस सृष्टिको **वेद** - जानता है **यदि वा न वेद** - या नहीं जानता है? अभिप्राय यह है कि 'सर्वज्ञ सर्वेश्वर स्वयंको या सृष्टिको नहीं जानता, ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्वप्रकाश अनुभवस्वरूप परमात्मा स्वयंको अनुभाव्य (अनुभवका विषय) बनाकर जानता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्वप्रकाश ज्ञातृत्वशून्य परमात्मा पुरुषमें पुरुषान्तरकल्पित स्थाणुको पुरुषद्वारा जाने जानेके तुल्य अज्ञजनकल्पित जगत्को जानता है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता॥

● **भावार्थ :–** जिस विवर्तोपादानकारणसे अर्थात् कल्पित कार्यके उपादानकारणसे इस विविध-विचित्र परस्पर विपरीत (विलक्षण) सृष्टिका उदय हुआ है, वह भी इस सृष्टिको अपने स्वरूपमें धारण करता है या नहीं? अन्य कोई धारण कर ही कैसे सकता है? यदि धारण कर सकता है तो ईश्वर ही। इस सृष्टिका जो अध्यक्ष परमेश्वर है, वह परमव्योममें रहता है। वह भी कहीं इसको जानता है अथवा नहीं? परमका अर्थ है उत्कृष्ट एवं सत्य। व्योमका अर्थ है आकाश — आकाशवत् निर्मल स्वयंप्रकाश। यह व्योमशब्द विपूर्वक तर्पणार्थक अव् धातुसे भी बनता है। ऐसी दशामें व्योमका अर्थ हुआ विशेष तृप्त – निरतिशय आनन्दस्वरूप। यदि गत्यर्थक अव् धातुसे व्योमशब्द निष्पन्न मानें तो उसका अर्थ होगा विशेषरूपसे व्याप्त — देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छिन्न। यदि ज्ञान अर्थमें व्युत्पत्ति मानें तो उसका अर्थ होगा विशिष्ट ज्ञानरूप। ऐसे अपने आत्मामें ही वह प्रतिष्ठित है। **'स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि'** (छान्दोग्योपनिषत् ७.२४.१)। अथवा अपने स्वरूपमें भी नहीं। स्वयंमें प्रतिष्ठा-प्रतिष्ठेयभाव (आधाराधेयभाव) नहीं है– **'यदि वा न महिम्नीति'** (छा०)। जगत्के अध्यक्षका परमव्योममें रहनेका भाव यही है। ऐसा देशकालादि त्रिविधपरिच्छेदशून्य परमात्मा सृष्टिके मूलकारण – अपने आपको जानता भी है अथवा नहीं? अथवा अपनेमें अज्ञानकल्पित प्रपञ्चको वह जानता भी है या नहीं? **'यदि वा न वेद'** का अभिप्राय यह है कि जब स्वदृष्टिसे सृष्टि है ही नहीं, तब जानेगा किसको! अन्य कोई तो जाननेसे रहा।

● **व्याख्येय :–** **'इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न' = जिस उपादानस्वरूप परमात्मासे यह विसृष्टि–विचित्र अभिव्यक्ति हुई है, वह भी इसे धारण करता है या नहीं ?'

● **सायणभाष्यम्** – उक्तप्रकारेण यथेदं जगत्सर्जनं दुर्विज्ञानं एवं सृष्टं तज्जगद्दुर्धरमपीत्याह–इयमिति। यत उपादानभूतात्परमात्मन इयं विसृष्टिः विविधा गिरिनदीसमुद्रादिरूपेण विचित्रा सृष्टिराबभूव आजाता सोऽपि किल यदि वा दधे धारयति यदि वा न धारयति। एवं च को नाम अन्यो धर्तुं शक्नुयात्। यदि धारयेदीश्वर एव धारयेन्नान्य इत्यर्थः। एतेन कार्यस्य धारयितृत्वप्रतिपादनेन ब्रह्मण उपादानकारणत्वमुक्तं भवति। तथा च पारमार्षं सूत्रम्–'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्' (वेदान्तसूत्रम् १.४.२३) इति।

यद्वा अनेनार्धर्चेन पूर्वोक्तं सृष्टेर्दुर्ज्ञानत्वमेव द्रढयति। को वेदेत्यनुवर्तते। इयं विविधा सृष्टिर्यत आबभूव आ समन्तादजायतेति को वेद, न कोऽपि। नास्त्येव जगतो जन्म न कदाचिदनीदृशं जगदिति बहवो भ्रान्ता भवन्त्यपि। यतः 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' (पा० सू० १.४.३०) इत्यपादानसंज्ञायां पञ्चम्यास्तसिल्। यस्मात्परमात्मन उपादानभूतादाबभूव तं परमात्मनं को वेद, न कोऽपि। प्रकृतितः परमाणुभ्यो वा जगज्जन्मेति बहवो हि भ्रान्ताः। तथा स एव उपादानभूतः परमात्मा स्वयमेव निमित्तभूतोऽपि सन् यदि वा दधे विदधे इदं जगत्ससर्ज यदि वा न ससर्ज। असन्दिग्धे सन्दिग्धवचनमेतच्छास्त्राणि चेत्प्रमाणं स्युरिति यथा। स एव विदधे। तं को वेद। अजानन्तोऽपि बहवो जडात्प्रधानादकर्तृकमेवेदं जगत्स्वयमजायतेति विपरीतं प्रतिपन्ना विदधतो विधानमजानन्तोऽपि। स एवोपादानभूत इत्यपि को वेद। न कोऽपि। उपादानादन्यस्तटस्थ एवेश्वरो विदधे इति हि बहवः प्रतिपन्नाः। देवा अपि यन्न जानन्ति तदर्वाचीनानामेषां तत्परिज्ञाने कैव कथेत्यर्थः।

● **व्याख्या** – जिस प्रकार इस जगतका सर्जन दुर्विज्ञेय है, उसी प्रकार जगत् दुर्धर भी है। जिस उपादानस्वरूप परमात्मासे यह जगत उत्पन्न हुआ है, वह भी इसे धारण करता है या नहीं? [illegible] करनेवाला अन्य कोई हो ही नहीं सकता, इसी अभिप्रायसे उसका धारक परमात्मा ही मान्य है। इस प्रकार जगत्का धारक-उपादानकारण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमात्मा सिद्ध होता है। इसी अभिप्रायका द्योतक ब्रह्मसूत्र भी है—

'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' (१.४.२३) = 'ब्रह्म जगत्का न केवल निमित्तकारण, अपितु उपादानकारण भी है।'

अथवा इस आधी ऋचाके द्वारा पूर्वोक्त सृष्टिके दुर्विज्ञानत्वको ही श्रुति दृढ करती है। यह विविध विचित्रताओंसे भरपूर सृष्टि जिससे अभिव्यक्त होती है, उसे कौन जानता है? कोई भी तो नहीं।

इस सम्बन्धमें विविध प्रकारके दार्शनिक भ्रान्त हैं। पूर्व-मीमांसकोंके मतमें महाप्रलयकी स्वीकृति ही नहीं है। उनका उद्घोष यह है कि **'न कदाचिदनीदृशं जगत्'** = 'कभी ऐसा नहीं था जब कि यह जगत् ऐसा नहीं था।' वे खण्डप्रलय ही मानते हैं। उन्हें जगत्कर्त्ताके रूपमें ईश्वरको माननेकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती। ऐसी स्थितिमें **'यतो वा इमानि भूतानि'** (तैत्तिरीय० ३.१) आदि श्रुतियोंके अनुसार अपादानार्थक पञ्चमी विभक्तिके योगसे जिस उपादानरूप चेतनका बोध होता है, जिससे जगत्की उत्पत्ति होती है, उसे भला कौन जानता है, अर्थात् कोई नहीं।

सांख्य और योगके आचार्यगण ऐसा मानते हैं कि त्रिगुणात्मक प्रधान ही कार्यप्रपञ्चका उपादान कारण है। सुख-दुःख-मोहात्मक प्रपञ्चमें अनुगत सत्त्व, रजस् और तमस्से यह सिद्ध होता है कि त्रिगुणोंकी साम्यावस्थारूपा प्रकृति ही महाप्रलयमें विद्यमान होगी। इस फलबलकल्प्य तथ्यके अनुसार वे आनुमानिक त्रिगुणात्मक प्रधानको ही प्रपञ्चका उपादानकारण मानते हैं। सांख्योंके मतमें जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान प्रधान ही मान्य है।

नैयायिक और वैशेषिक ऐसा मानते हैं कि परिणामवादी सांख्योंका मत उपयुक्त नहीं है। पूर्व विद्यमानका कारणव्यापारसे अभिव्यञ्जन उचित नहीं है। पृथ्वी, जल, तेज और वायुके परमाणु ही ईश्वरेच्छा, काल, जीवोंके परिपक्व फलोन्मुख कर्मोंके योगसे भूतचतुष्टयात्मक प्रपञ्चके आरम्भक होते हैं। उत्पत्तिके पूर्व कारणमें कार्यका सत्त्व नहीं होता। आकाश, दिक्, काल, मन, परमाणु अनात्मपदार्थ होते हुए भी महाप्रलयमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वरूपसे विद्यमान होते हैं। ऐसा माननेवाले नैयायिक और वैशेषिक जहाँ आंशिक प्रलयको स्वीकार करते हैं, वहाँ अनेकोपादानकारणवादी सिद्ध होते हैं।

कुछ विचारक 'अतीन्द्रिय परमाणुओंका पुञ्जीभूत यह प्रपञ्च है', ऐसा मानते हैं। ऐसे संयोगवादियोंके मतमें सूक्ष्म पदार्थ भी सहावस्थानके प्रभावसे इन्द्रियगोचर हो सकते हैं। यथा सूक्ष्म केश दूरसे दृष्टिगोचर न होनेपर भी केशोंका समूह दृष्टिगोचरताको प्राप्त होता है।

इस प्रकार आरम्भ, परिणाम और संयोगवादी दार्शनिक जगत्कारणके सम्बन्धमें विभ्रान्त हैं।

ऐसी स्थितिमें **'तदैक्षत'** (छा० ६.२.३), **'स ईक्षांचक्रे'** (प्रश्नोपनिषत् ६.३), **'सोऽकामयत'** (तैत्तिरीय० २.६) आदि श्रुतियोंके अनुसार चेतन परमात्माको जगत्का निमित्तकारण मानना और **'बहु स्याम्'** (तैत्ति० २.६, छा० ६.२.३) आदि श्रुतियोंके अनुसार उसीको उपादानकारण मानना और उस अभिन्ननिमित्तोपादानकारणसे प्रपञ्चकी अभिव्यक्ति स्वीकार करना उपयुक्त है अथवा नहीं? कार्य जड हो और कारण चेतन हो तो दोनोंमें तादात्म्यकी असिद्धि ही बनी रहती है। जबकि मृद्घट, तन्तुपट, सुवर्णभूषणादि स्थलोंमें कार्य-कारणमें तादात्म्य परिलक्षित होता है। यद्यपि चेतनाशून्य नखलोमादि चेतनासम्पन्न देहसे उत्पन्न होते हैं और चेतनाशून्य रेतस्से चेतनासम्पन्न देह उत्पन्न होती है। चेतनासम्पन्न मकड़ीसे चेतनाशून्य जाले व्यक्त होते हैं। परन्तु प्रकृतमें चार्वाकोंके तुल्य जड भूतचतुष्टयसे चेतन जीवोंको और जड जगत्को उत्पन्न मानें या चेतन परमात्मासे जड जगत् और चेतन जीवों (प्राणियों) को उत्पन्न मानें, इसमें यदि अपौरुषेय वेद (श्रुति) का आलम्बन न लिया जाय तो चेतनको ही जगत्कारण मानने और देहातिरिक्त जीवको स्वीकार करनेमें कौन विनिगमक होगा?

यद्यपि जड जगत्का मूल जड प्रधानादिको माननेपर अनवस्थादोषकी प्रसक्ति अनिवार्य है तथा नश्वर शरीरको आत्मा माननेपर अकृताभ्यागम और कृतविप्रणाशदोषकी प्रसक्ति अनिवार्य है; अत एव यह अत्यन्त समीचीन सिद्ध तथ्य है कि चेतन परमात्मा ही स्थावर-जङ्गमात्मक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है; परन्तु असन्दिग्ध स्थलमें भी 'यदि मैं पतिव्रता हूँ तो मेरे पातिव्रत्यके प्रभावसे ऐसा हो जाय', 'यदि वेद प्रमाण हैं तो मेरा बाल बाँका न हो' आदि सन्दिग्धवचनतुल्य **'यदि वा दधे यदि वा न'** यह वचन है। विज्ञोंको परोक्ष, तटस्थ और रहस्यात्मक वचन आह्लादित करते हैं, जबकि अज्ञोंको विमोहित। वस्तुस्थिति यह है कि कार्य-कारणमें तादात्म्यकी सिद्धिके लिये तथा एकोपादानकी सिद्धिके लिये जड जगत्तुल्य अचित्-अनिर्वचनीया मायाको परिणामोपादान मानना जहाँ आवश्यक है, वहाँ जडके मूलमें जड माननेपर प्राप्त अनवस्थादोषके वारणके लिये सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माको जगत्का अधिष्ठानात्मक उपादान मानना आवश्यक है। उक्त तथ्यका प्रकाश भी आगम और आगमिक युक्तियोंके विना कहाँ सम्भव है?

श्रुतिका तात्पर्य यह है कि अविद्यादशामें प्रपञ्च भासता है, उसका आधार परमात्मा अवश्य है, परन्तु बोधदशामें जब सृष्टि बाधित हो जाती है, तब स्वरूपभूत अद्वय तत्त्वमें कौन किसको धारण करेगा? **'मत्स्थानि सर्वभूतानि'**, **'न च मत्स्थानि भूतानि'** (भगवद्गीता ९.४, ५)।

सत्यवत् प्रतीयमाना सृष्टिका परमात्मा विधाता (निर्माता) है और तत्त्वज्ञानसे सृष्टिका बाध हो जानेसे उसका वह निर्माता नहीं भी है। **'नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्'** (कठो० १.२.१८), — **'कार्यकारणता मिथ्या'**। इसीसे कोई 'विना किसी चेतनके जडप्रधानसे यह सृष्टि स्वयं हो गयी' ऐसा मानते हैं या प्रधानको ही तमस्के योगसे उपादान और सत्त्वके योगसे निमित्त मान बैठते हैं। सच पूछो तो उन्हें जगत्में अचिन्त्य रचनाचातुरी (अद्भुत विधानकौशल)का तो कुछ पता ही नहीं है। आखिर वे परमात्माको सृष्टिका निमित्तकारण माननेमें भी क्यों डरते हैं, इसीलिये न कि उनके मतमें कर्तृत्व विकार है। चेतन निर्विकार होनेसे कर्ता नहीं हो सकता। अज्ञ जीवोंके समान वह प्रकृतिकृत कृत्योंका कर्तृत्व क्यों अपने ऊपर मढ़ेगा, भोक्ता होनेके लिये तो अज्ञ जीव ही पर्याप्त है। फिर ईश्वरकी जब कोई उपयोगिता ही नहीं है, तब उसकी मान्यता ही क्यों? परन्तु ऐसा माननेवाले

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस रहस्यको नहीं समझ पाते कि वस्तु निर्विकार होनेपर भी सब व्यवस्था सध सकती है। यदि वे ईश्वररूपसे कर्तृत्व, ब्रह्मरूपसे अकर्तृत्वके विधान (प्रकार) को और लीलाकर्मत्वके स्वरूपको समझें तो ऐसा अनर्गल प्रलाप ही क्यों करें!

''इत्थंभावेन कथितो भगवान्भगवत्तमैः।
नेत्थंभावेन हि परं द्रष्टुमर्हन्ति सूरयः॥''
(भागवते २.१०.४४)

''महात्माओंने अचिन्त्यैश्वर्य श्रीभगवान्‌को कर्त्ता, भोक्ता और संहर्त्ताके रूपमें वर्णन किया है; परन्तु तत्त्वज्ञोंको (तत्त्वविचारकोंको) केवल इसी रूपमें उनका दर्शन नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे तो इससे परे भी हैं॥''

''नास्य कर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते।
कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययारोपितं हि तत्॥''
(भागवते २.१०.४५)

''सृष्टिकी रचना आदिका निरूपण करके पूर्ण परमात्मामें कर्म या कर्त्तापनका सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है। वह मायासे आरोपित होनेके कारण कर्तृत्वका प्रतिषेध करनेके लिये है।''

''त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो
वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात्।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुद्ध्यते
त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः॥''
(भागवते १०.३.१९)

''प्रभो! कहते हैं कि आप स्वयं समस्त क्रियाओं, गुणों और विकारोंसे रहित हैं। फिर भी इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहृति आपसे ही होती हैं। यह बात इसलिये असंगत नहीं है; क्योंकि आप ईश्वररूपसे कारण और ब्रह्मरूपसे अकारण हैं। तीनों गुणोंके आश्रय आप ही हैं। तीनों गुणोंका आपमें ही आरोप किया जाता है॥''

कोई कहते हैं कि उपादानसे विलक्षण तटस्थ परमात्माने ही जगत्‌का निर्माण किया है। सत्य है; जिसे देवता, मन, इन्द्रियाँ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोई भी विषय बनानेमें समर्थ नहीं, उसे किसी और प्राणीने जान लिया इसकी तो चर्चा ही क्या है? ऐसी स्थितिमें प्रमाणपद्धतिके द्वारा सृष्टिपरीक्षा करनेका क्या अर्थ है? अवश्य ही इसके मूलमें ईश्वर प्रमाणित होता है—

● **व्याख्येय :– 'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद॥'** = 'जो प्रसिद्ध परम उत्कृष्ट सत्, चित्, आनन्दरूप निज महिमासे महिमान्वित ईश्वर है, वह इस आरोपित प्रपञ्चको (और उसके अधिष्ठान स्वंयंको) जानता भी है या नहीं?'

● **सायणभाष्यम्– यद्येवं जगत्सृष्टिरत्यन्तदुरवबोधा न तर्हि सा प्रमाणपद्धतिमध्यास्त इत्याशङ्क्य तत्सद्भाव ईश्वरमेव प्रमाणयति। यो अस्येति। अस्य भूतभौतिकात्मकस्य जगतो योऽध्यक्ष ईश्वरः परमे उत्कृष्टे सत्यभूते व्योमन् व्योमन्याकाशे आकाशवन्निर्मले स्वप्रकाशे। यद्वा अवतेस्तर्पणार्थादन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति मनिन्। नेड्वशि कृतीतीट्प्रतिषेधः। ज्वरत्वरेत्यादिना वकारोपधयोरूठ्। सप्तम्या लुक्। न ङिसंबुद्ध्योरिति नलोपप्रतिषेधः। व्योमनि विशेषेण तृप्ते। निरतिशयानन्दस्वरूपे इत्यर्थः। यद्वा अवतिर्गत्यर्थः। व्योमनि विशेषेण गते प्राप्ते। देशकालवस्तुभिरपरिच्छिन्ने इत्यर्थः। अथवा अवतिर्ज्ञानार्थः। व्योमनि विशेषेण ज्ञातरि विशिष्टज्ञानात्मनि ईदृशे स्वात्मनि प्रतिष्ठितः। श्रूयते हि सनत्कुमारनारदयोः संवादे – 'स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि' (छा० उ० ७.२४.१) इति। ईदृशो यः परमेश्वरः सो अङ्ग। अङ्गेति प्रसिद्धौ। सोऽपि नाम वेद जानाति, यदि वा न वेद न जानाति। को नामान्यो जानीयात् सर्वज्ञ ईश्वर एव तां सृष्टिं जानीयात्, नान्य इत्यर्थः॥७॥**

इति श्रीसायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे
ऋक्संहिताभाष्ये दशमे मण्डलेऽष्टमाष्टके
सप्तमाध्याये एकादशेऽनुवाके
सप्तदशे वर्गे
सप्तर्चं प्रथमं
नासदीयसूक्तम्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **व्याख्या—** परमात्मा स्वरूपतः अनन्त है। देशकृत, कालकृत और वस्तुकृत परिच्छेदसे शून्य है। इस प्रकार वह विजातीयभेदशून्य है। जहाँ वह विजातीयभेदशून्य है, वहाँ सजातीय और स्वगतभेदशून्य भी- **'दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं स्वच्छं नित्योदितं ततम्'** (अन्नपूर्णोपनिषत् ५.६६), **'सोऽक्षरे परमे व्योमन्यधिवसति'** (श्रीत्रिपुरातापिन्युपनिषत् ५), **'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव जायन्ते। आकाश एव लीयन्ते। तस्मादेव जातानि जीवन्ति'** (श्रीत्रिपुरातापिन्युपनिषत् ५), **'सजातीयं न मे किञ्चिद्विजातीयं न मे क्वचित्। स्वगतं च न मे किंचिन्न मे भेदत्रयं क्वचित्॥'** (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.४७)। परमात्मा व्यापक होनेसे देशकृत परिच्छेदशून्य है। नित्य होनेसे कालकृत परिच्छेदशून्य है। सर्वात्मा होनेसे वस्तुकृत परिच्छेदशून्य है।

"न व्यापित्वाद्देशतोऽन्तो नित्यत्वान्नापि कालतः।
न वस्तुतोऽपि सार्वात्म्यादानन्त्यं ब्रह्मणि त्रिधा॥"
(पञ्चदशी ३.३५)

"देशकालान्यवस्तूनां कल्पितत्वाच्च मायया।
न देशादिकृतोऽन्तोऽस्ति ब्रह्मानन्त्यं स्फुटं ततः॥"
(पञ्चदशी ३.३६)

ब्रह्म स्वप्रकाश है। वह किसी अन्यसे प्रकाशित नहीं होता। स्वयं भी स्वयंसे प्रकाशित नहीं होता। स्वेतर सबका प्रकाशक होता है। अवभासनक्रियाका कर्तृत्व भी उसमें उपचरित ही होता है। वह अवेद्य होता हुआ अपरोक्ष होनेसे स्वप्रकाश है—

"अवेद्योऽप्यपरोक्षोऽतः स्वप्रकाशो भवत्ययम्।
सत्यं ज्ञानमनन्तं चेत्यस्तीह ब्रह्मलक्षणम्॥"
(पञ्चदशी ३.२८)

परमप्रेमास्पद होता हुआ सर्वोपप्लवशून्य, अभोग्य होता हुआ अपरोक्ष होनेके कारण ब्रह्म परमानन्दस्वरूप है।

"परप्रेमास्पदत्वेन परमानन्दरूपता।
सुखवृद्धिः प्रीतिवृद्धौ सार्वभौमादिषु श्रुता॥"
(पञ्चदशी १२.७२)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

''तत्प्रेमात्मार्थमन्यत्र नैवमन्यार्थमात्मनि।
अतस्तत्परमं तेन परमानन्दतात्मनः॥''
(पञ्चदशी १.९)

''अहमेव सुखं नान्यदन्यच्चेन्नैव तत्सुखम्।
अमदर्थं न हि प्रेयो मदर्थं न स्वतः प्रियम्॥''
(वराहोपनिषत् २.७)

ब्रह्मकी परमानन्दरूपता और स्वप्रकाशता एवं सद्रूपता उसकी आत्मरूपताको सिद्ध करती है। आत्माकी अपरिच्छिन्नता उसकी ब्रह्मरूपताको सिद्ध करती है। कहा भी है - **'आततत्वात्प्रमातृत्वादात्मा हि परमो हरिः', 'बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च (द्वा) आत्मैव ब्रह्म'** (भामत्यामध्यासभाष्ये...)। ऐसा परमात्मा सर्वज्ञ होनेसे सृष्टिको जानता है, उसकी प्रतिष्ठाके रूपसे स्वयंको मानता है। अखण्ड ज्ञानस्वरूप ब्रह्मरूपसे ज्ञातृत्वशून्य होनेके कारण वह सृष्टिको नहीं भी जानता और उसकी प्रतिष्ठारूपसे स्वयंको नहीं भी मानता है। श्रुतियोंने उसमें सृष्टि आदिका वर्णन क्यों किया है, उसे उपास्य क्यों बताया है और कर्मकाण्डमें उसका विधान क्यों किया है, इसका रहस्य भी वही जानता है—

''किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत्।
इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद् वेद कश्चन॥
मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम्।
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्।
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिद्ध्य प्रसीदति॥''
(श्रीमद्भागवते ११.२१.४२, ४३)

''वह वेदवाणी कर्मकाण्डमें क्या विधान करती है, उपासनाकाण्डमें किन उपास्य देवताओंका वर्णन करती है और ज्ञानकाण्डमें किन प्रतीतियोंका अनुवाद करके उनमें अनेकों प्रकारके विकल्प करती है– इन सब बातोंको– इस सम्बन्धमें श्रुतिके रस-रहस्यको मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता॥ सभी श्रुतियाँ कर्मकाण्डमें मेरा ही विधान करती हैं। उपासनाकाण्डमें उपास्यदेवोंके रूपमें मेरा ही वर्णन करती हैं और ज्ञानकाण्डमें आकाशादि-रूपमें मुझमें ही अन्य वस्तुओंका आरोप करके उनका निषेध कर देती हैं। सम्पूर्ण श्रुतियोंका बस, इतना ही तात्पर्य है कि वे मेरा आश्रय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेकर मुझमें भेदका आरोप करती हैं, मायामात्र कहकर उसका अनुवाद करती हैं और अन्तमें सबका आरोप (निषेध) करके मुझमें शान्त हो जाती हैं। अधिष्ठानरूपसे केवल मुझे ही शेष रखती हैं॥''

वेदार्थपारिजाते– **'यथा वयं ब्राह्मणा वा अब्राह्मणा वा'** इत्यत्र न संशयप्रतिपादनम्, **ब्राह्मणानिश्चये कर्मण्यनधिकारप्रसङ्गात्, किन्तु प्रवरानुमन्त्रणमन्त्रेण ब्राह्मण्यप्राप्तिप्रशंसायामेव तात्पर्यम्, यथा वा 'को हि तद्वेद यद्यमुष्मिंल्लोके अस्ति वा न वा'** (तै० सं० ६.१.१.१) **इत्यत्र न परलोकसंशयः प्रतिपिपादयिषितः, तथात्वेऽतीकाशादिविधान-वैयर्थ्यापातात्। किन्तु 'दिक्ष्वतीकाशान् करोति'** (तै० सं० ६.१.१.१) इत्यतीकाशविधानार्थवादेन तत्प्रशंसनमेव, अतीकाशाभावे धूमोपद्रवेणेहैव मरणं संभाव्यते, परलोककथां को वेद, अतस्तत्परिहारार्थमतीकाशानवश्यं कुर्यादित्यर्थः, तथैव प्रकृते सृष्टेः परमात्मनश्च दुर्ज्ञानत्वबोधनायैव वेदनावेदनविकल्पोपन्यासः, वस्तुतन्त्रे ज्ञाने विकल्पासम्भवात्। 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' (मुण्डकोप० १.१.९) **इति श्रुत्या परमात्मनः सामान्यविशेषाभ्यां सर्वज्ञत्वं सर्ववित्त्वं चोक्तम्। स एव विविधवैचित्र्योपेतामनन्तानन्तब्रह्माण्डतद्भोक्तृतत्कर्मादिविशिष्टां सृष्टिं वेद नान्ये प्रकृतिपरमाण्वादयो देवादिजीवा वा, जडत्वादसर्वज्ञत्वाच्च। विश्वविधातारं परमात्मानं तु सर्वद्रष्टृरूपत्वाद्, नान्यो जानाति द्रष्टुर्दृष्ट्यविषयत्वात्। प्रत्यक्चैतन्याभिन्नत्वेन स्वात्मरूपेणैव तज्ज्ञानम्, तटस्थस्यापरोक्षत्वासम्भवात्। मनोवचनातीतत्वाद्वा दुर्ज्ञानत्वम्, 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** (तै० उ० २.४.१) **इति श्रुतेः। लक्षणया वृत्तिव्याप्त्या ज्ञेयत्वेऽप्यभिधया फलव्याप्त्याऽव्याप्यत्वाच्च दुर्ज्ञानत्वम्।** (पृ० १२३१, १२३२)

वेदार्थपारिजातकार श्रीकरपात्रमहाभागके अनुसार–''जैसे 'हम ब्राह्मण हैं या अब्राह्मण' इस वाक्यका संशय उत्पन्न करनेमें तात्पर्य नहीं है। ब्राह्मणका निश्चय न होनेपर कर्मोंमें अधिकार ही नहीं सिद्ध हो पायेगा। प्रवरानुमन्त्रणमन्त्रसे जो ब्राह्मण्यकी प्राप्ति होती है, उसकी प्रशंसामें उक्त वाक्यका तात्पर्य माना जाता है। वैसे ही 'यह कौन जानता है कि परलोक कुछ है भी या नहीं' इस वाक्यका परलोकमें संशय उपस्थित करनेमें तात्पर्य नहीं है, क्योंकि इस स्थितिमें अतीकाशप्रभृतिका विधान व्यर्थ हो जायगा, किन्तु अतीकाशके विधायक अर्थवादसे उसकी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रशंसामें ही तात्पर्य है। अतीकाशका विधान न करनेपर अर्थात् धूवाँ निकलनेके लिये यज्ञशालामें चारों ओर यथास्थान अवकाश न छोड़ने पर धूमके उपद्रवसे यहीं मृत्यु हो सकती है, उस स्थितिमें यज्ञकी निष्पत्तिके विना परलोककी स्थिति कहाँ रह जायगी? इसलिये इस विषम परिस्थितिका जिसमें कि परलोककी स्थिति संशयमें पड़ जाती है, परिहार करनेके लिये दिशाओंमें अतीकाशका विधान अवश्य करना चाहिये, यही इस वाक्यका तात्पर्य निकलता है। वैसे ही प्रकृतमें भी सृष्टि और परमात्मा इन दोनोंके रहस्यको समझ पाना कठिन है, इसी बातको सूचित करनेके लिये यहाँ 'जानता है, नहीं जानता' इस विकल्पको रखा गया है। ज्ञानकी सत्ता वस्तुके अधीन है, इसमें कोई विकल्प नहीं उठता। **'यः सर्वज्ञः'** इत्यादि मुण्डक श्रुति परमात्माको सामान्यरूपसे सर्वज्ञ और विशेषरूपसे सर्ववित् मानती है। वही विविध विचित्रताओंसे भरे अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड, उनके भोक्ता और उन भोक्ताओंके कर्मसहित सृष्टिको जान सकता है। अन्य प्रकृति, परमाणु प्रभृति अथवा देव आदि नाना योनियोंके जीव इसको नहीं जान सकते। प्रकृति, परमाणुप्रभृति जड हैं और देवादि असर्वज्ञ हैं। विश्वके विधाता परमात्माको दूसरा कोई नहीं जान पाता। परमात्मा सबका द्रष्टा है, वह दृश्य कैसे बन सकता है? वह प्रत्यक् चैतन्यसे अभिन्न है। उसे हम आत्मरूपमें ही ज़ान सकते हैं। उसे यदि तटस्थ माना जाय तो उसका अपरोक्ष ज्ञान हो ही नहीं सकता। यह परमात्माकी सृष्टि मन और वचनसे अतीत होनेसे भी दुर्ज्ञेय है। 'जहाँसे मनसहित वाणी भी उसको प्राप्त किये विना लौट आती हैं', यह तैत्तिरीयश्रुति भी इसी तथ्यका प्रतिपादन करती है॥''

परमात्मा अध्यक्ष है। चराचरसर्जनादिरूप जगद्विपरिवर्तन ब्रह्माधिष्ठितप्रकृतिकर्तृक है—

''मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥''

(भगवद्गीता ९.१०)॥७॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

''कर्त्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः।
द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे॥''
(श्रीमद्भागवते ५.१९.१२)

''जो विश्वकी उत्पत्ति आदिमें कर्त्ता होकर भी कर्तृत्वके अभिमानसे नहीं बँधते, शरीरमें रहते हुए भी उसके धर्म भूख-प्यास आदिके वशीभूत नहीं होते तथा द्रष्टा होनेपर भी जिनकी दृष्टि दृश्यके गुण-दोषोंसे दूषित नहीं होती, उन असङ्ग एवं विशुद्ध साक्षिस्वरूप भगवान् नर-नारायणको नमस्कार है॥''

ऋग्वेदान्तर्गत 'नासदीयसूक्तम्' की
श्रीहरिहरप्रकाशिका टीका सम्पूर्ण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

नासदीयसूक्तम्

(श्रीकरपात्रस्वामिकृत वेदार्थपारिजातः)

(पृ० १२१९-१२३२)

● **मन्त्र :—**

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥

(ऋक्संहिता १०.१२९.१)

● **भाष्यम्— अस्मिन्नेव सूक्ते तन्महिनाजायतैकमिति मन्त्रे सृष्टिवर्णनदर्शनान्नासीदिति मन्त्रे निरस्तसमस्तप्रपञ्चा सृष्टेः प्रागवस्था (अर्थात् प्रलयावस्था) प्रतिपाद्यते। तदानीं प्रलयदशायामवस्थितं यदस्य जगतो मूलकारणम्, तदसत् शशविषाणखपुष्पादितुल्यं निरुपाख्यं नासीत्। तादृशस्य सद्भूतप्रपञ्चोत्पत्तिं प्रति कारणत्वानुपपत्तेः। नो सत् तन्मूलकारणं सदात्मवदत्यन्ताबाध्यं सदपि नासीत्। यद्यपि सदसती परस्परविलक्षणे, तत एव भावाभावरूपयोस्तयोः सहावस्थानमपि न सम्भवति, तत एव तादात्म्यमपि तयोर्न सम्भवति, किन्तु सत्त्वासत्त्वाभ्यां निर्वक्तुमनर्हमनिर्वाच्यमेवासीत् तन्मूलकारणम्।**

● **भाष्यार्थ :—** इसी नासदीयसूक्तमें **'तन्महिना जायतैकम्'** (३) इस मन्त्रमें सृष्टिका वर्णन दृष्टिगोचर होनेसे **'नासदासीत्'** (१) इस मन्त्रमें समस्त कार्यप्रपञ्चसे विमुक्त (विरहित) सृष्टिकी पूर्वावस्था अर्थात् प्रलयावस्थाका प्रतिपादन किया जाता है। उस प्रलयदशामें अवस्थित जो जगत्का मूलकारण था, वह असत् अर्थात् शशशृङ्ग-आकाशकुसुमादितुल्य निरुपाधिक नहीं था। कारण यह है कि अर्थक्रियाकारी सद्रूप कार्यप्रपञ्चकी उत्पत्तिके प्रति शशशृङ्गादितुल्य असत्का कारण होना असङ्गत है। कार्यात्मक प्रपञ्चका मूलकारण जहाँ असत् नहीं था; वहाँ आत्मसदृश अत्यन्त अबाध्य सत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी नहीं था। सत् और असत् यद्यपि (जब कि) परस्पर विलक्षण हैं, 'सत्' भावरूप और 'असत्' अभावरूप है। यही कारण है कि भावाभावरूप उन दोनोंकी सहस्थिति भी सम्भव नहीं है, अत एव दोनोंका तादात्म्य भी सम्भव नहीं। फिर भी सत्त्वरूपसे और असत्त्वरूपसे निरूपणके अयोग्य अनिर्वचनीय ही कार्यप्रपञ्चका मूलकारण था। अभिप्राय यह है कि जगत्का मूलकारण सत्, असत् या सदसत् न होकर इनसे विलक्षण कोई मायानामक अनिर्वचनीय तत्त्व ही था।

● **भाष्यम्— ननु 'आनीदवातम्' (२) इति तस्य सत्त्वमेवाग्रे विवक्ष्यत इति चेन्न, पारिशेष्यान्मायाया एव सत्त्वासत्त्वनिषेधेनानिर्वाच्यत्वोपपत्तेः।**

● **भाष्यार्थ :—** ". 'आनीदवातम्' (२)इस वक्ष्यमाणवचनके अनुसार तो जगत्कारणका सत्त्व ही सिद्ध होता है। फिर यहाँ **'नो सदासीत्'** ऐसा कहकर उसके सत्त्वका निषेध क्यों किया गया है?" ऐसा कथन उपयुक्त नहीं। वस्तुस्थिति यह है कि **'आनीदवातम्'** से परमसत्य परमात्मतत्त्वके सत्त्वका प्रतिपादन श्रुतिको अभीष्ट है। जबकि **'नासदासीन्नो सदासीत्'** इस वचनके द्वारा असत् और सत् दोनोंका महाप्रलयमें निषेधकर पारिशेष्यन्यायसे दोनोंसे विलक्षण अनिर्वचनीया मायाको जगत्कारण सिद्ध करना श्रुतिको अभीष्ट है।

● **भाष्यम्— न च तथापि तत्र तदानीमिति विशेषणं निरर्थकम्, तादृशानिर्वाच्यत्वस्य मायायाः सृष्टिकालेऽपि पारमार्थिकसत्त्वाभावेनोपपत्तेरिति वाच्यम्, जिज्ञासुबुद्धावनायासेन तदारोहार्थं तदानीमित्युक्तेः सार्थक्यात्। यद्यपि मृण्मयस्यामत्रजातस्य स्वकालेऽपि मृण्मात्रत्वं तथापि स्वोत्पत्तेः प्राक् सर्वं मृत्तिकैवासीद् इति बुद्धावनायासेन यथायाति, न तथा वर्तमानकाले, तथैव यद्यपि सृष्टिकालेऽपि मायाया अनिर्वाच्यत्वमेव तथाप्याञ्जस्येन बुद्ध्यारोहाय तदानीमित्युक्तिः।**

● **भाष्यार्थ :—** "ऐसा होनेपर भी **'तदानीम्'**— 'उस समय' ऐसा विशेषण निरर्थक ही है; क्योंकि सृष्टिकालमें भी पारमार्थिक सत्त्व न होनेसे उस प्रकारकी अनिर्वाच्या मायाकी उपपत्ति (युक्तियुक्त सिद्धि) सम्भव ही है।" यह कथन उपयुक्त नहीं। जिज्ञासुकी बुद्धिमें अनायास ही मायाकी अनिर्वचनीयताको प्रतिष्ठित करनेके लिये 'तदानीम्' इस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उक्तिकी सार्थकता है। उदाहरणार्थ यद्यपि मृण्मय घटादि कार्योंकी मृण्मयता (मिट्टीरूपता) अपनी (उनकी) विद्यमानताकी दशामें भी है; तथापि (फिर भी) 'घटादिकार्यप्रपञ्च अपनी उत्पत्तिके पूर्व मृत्तिका ही था' यह बात बुद्धिमें जिसप्रकार प्रतिष्ठित हो जाती (जम जाती) है, घटादिकार्योंकी विद्यमानताकी दशामें वैसी नहीं प्रतिष्ठित हो पाती। ठीक इसी प्रकार सृष्टिकालमें मायाकी अनिर्वचनीयता ही है, तथापि सुगमतापूर्वक उक्त तथ्यको हृदयंगम करानेकी भावनासे **'तदानीम्'** पदका प्रयोग सर्वथा उपयुक्त ही है।

● **भाष्यम्— न च व्यावहारिकसत्तावतां पृथिव्यादीनां शक्त्यात्मना तदानीमपि सत्त्वात् कथं नो सदासीदिति सत्त्वनिषेध इति वाच्यम्, तत्र पारमार्थिकसत्त्वस्यैव निषेधविषयत्वात्। तदेवोच्यते— 'नासीद्रजः' (१)। 'लोको रजांसीत्युच्यते' (निरुक्ते ४.१९) इति रीत्या रजःशब्देन लोका उच्यन्ते। रजांसीति स्थाने रज इति सामान्यापेक्षमेकवचनमपि सङ्गच्छते। तथा च व्योम्नः पृथङ्निर्देशाद् व्योम्नोऽधस्तनाः पातालादयः पृथिव्यन्ता नासन्निति रजःशब्देन त एव निषिद्ध्यन्ते। व्योमान्तरिक्षं नासीत्। पर इति सकारान्तं पदं परस्तादित्यर्थे। तथा च व्योम्नः परस्तादुपरि देशे द्युलोकप्रभृतिसत्यलोकान्तं यदस्ति तदपि नासीत्। अनेन चतुर्दशभुवनगर्भं ब्रह्माण्डं स्वरूपेण निषिद्धं भवति।**

● **भाष्यार्थ**:— यह कथन भी उपयुक्त नहीं है कि "व्यावहारिक सत्तावाली पृथिव्यादिका शक्तिरूपसे उस समय भी सत्त्व (अस्तित्व) था। ऐसी स्थितिमें **'नो सदासीत्'**— 'सत् नहीं था' की उक्तिसे उनका निषेध उपयुक्त नहीं।" वस्तुस्थिति यह है कि **'नो सदासीत्'** की उक्तिसे श्रुतिका तात्पर्य्य पारमार्थिक सत्त्वका निषेध है, न कि व्यावहारिक सत्त्वका निषेध। इसी तथ्यका **'नासीद्रजः'** (१) कहकर प्रतिपादन किया जा रहा है। **'लोको रजांसीत्युच्यते'** (निरुक्त ४.१९) के अनुसार रजः शब्दसे लोक कहा जाता है। **'रजांसि'** के स्थानमें **'रजः'** इस एकवचनका प्रयोग सामान्य (जाति) की अपेक्षासे सुसङ्गत है। 'व्योम' का पृथक्-निर्देश होनेसे व्योमसंज्ञक अन्तरिक्ष और उससे उपलक्षित उसके नीचेके पातालादि पृथिवीपर्यन्त (पृथिव्यादि पातालपर्यन्त) **'रजः'** शब्दसे निर्दिष्ट जो लोक हैं, वे निषिद्ध किये गये हैं। **'परः'** यह सकारान्तपद **'परस्तात्'** इस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थमें प्रयुक्त है। इस प्रकार व्योमसंज्ञक अन्तरिक्ष अर्थात् भुवर्लोकके ऊपर द्युलोकप्रभृति सत्यलोकपर्यन्त जो लोक है, वह भी नहीं था (जो लोक हैं, वे भी नहीं थे)। इस प्रकार **'नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्'** की उक्तिसे चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड (चतुर्दशभुवनगर्भ ब्रह्माण्ड) स्वरूपतः निषिद्ध हो जाता है।

● **भाष्यम्— अथ तदावरकत्वेन पुराणेषु प्रसिद्धानि पृथिव्यादीनि महदन्तान्यावरणानि च आवरीवशब्देनोच्यन्ते। तान्यपि निषिद्ध्यन्ते। आवरीवः किमासीत्, नासीदित्यर्थः। अत्राक्षेपार्थकः किंशब्दः। तथा किमावरणीयं तत्त्वमावरकं पृथिव्यादिमहदन्तमावरीव अत्यन्तमावृणुयात्। आवर्याभावात्तदावरकमपि नासीदित्यर्थः। वृणोतेर्यङ्लुगन्तात् छान्दसे लङि तिपि रूपमेतत्। यद्वा किं तत्त्वमावरकमावृणुयात्? आव्रियमाणवत्तदपि स्वरूपेण नासीदित्यर्थः। आवृण्वत् तत्त्वं कुह कुत्र देशेऽवस्थायावृणोति। आधारभूतस्तादृशो देशोऽपि नासीदित्यर्थः। कस्य भोक्तुःशर्मन् शर्मणि सुखादिलक्षणे भोगे निमित्तभूते सति तदावरकं तत्त्वमावृणुयात्। जीवानामुपभोगार्था सृष्टिर्भवति। तस्यां सत्यामेव ब्रह्माण्डस्य पृथिव्यादिभिरावरणं भवति। प्रलयदशायां भोक्तारो जीवाः उपाधिप्रलयात् प्रलीना इति कश्चिद् भोक्ता न सम्भवतीत्यावरणस्य निमित्ताभावादपि तदावरणं न घटते। एतेन भोग्यप्रपञ्चवत् भोक्तृप्रपञ्चोऽपि तदानीं नासीदित्युक्तं भवति। एवमवस्थानप्रदेशमावरणनिमित्तं चाक्षिप्य तदावरणं निषिद्धम्।**

● **भाष्यार्थ :—** 'आवर्य (आवरणके विषय)के निषेधसे आवरक (आवरण करनेवाला)का निषेध' इस नियमको चरितार्थ करनेकी भावनासे श्रुति लोकावरकरूपसे अर्थात् लोकगर्भ (भुवनगर्भ) ब्रह्माण्डावरकरूपसे पृथिव्यादि महत्-पर्यन्त आवरक जो कि पुराणप्रसिद्ध हैं, वे ही **'आवरीवः'** शब्दसे कहे गये है। **'किमावरीवः'** की उक्तिसे उन्हींका निषेध किया जाता है। क्या महाप्रलयमें आवरक था? नहीं था। यहाँ आक्षेपार्थक किंशब्द है। इस प्रकार किस आवरणकी विषयवस्तुको पृथिव्यादि महत्पर्यन्त आवरक अत्यन्त आवरण करता? अभिप्राय यह है कि भुवनगर्भ ब्रह्माण्डरूप आवर्य नहीं था तो क्या महाप्रलयमें पृथिव्यादिमहत्पर्यन्त आवरक विद्यमान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था? नहीं। इस कथनका भी तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्माण्डोपादान पृथिव्यादि महदन्त तत्त्व भी तो कार्यात्मक ही थे, जब कार्यमात्रका निषेध श्रुतिको अभीष्ट है तो आवर्यकी तरह उनसे पूर्वसिद्ध किन्तु कार्यकोटिके आवरक भी नहीं थे। केवल (ब्रह्माधिष्ठिता) चरमकारण सत्-असत्-विलक्षण अनिर्वाच्य मायानामक वस्तु ही शेष थी। यङ्लुगन्त वृणोति धातुसे लङ्लकारमें तिप् प्रत्यय होनेसे **'आवरीवः'** यह छान्दसरूप बनता है। 'आभूषणरूप आवर्यके न रहनेपर सुवर्णरूप आवरक भी नहीं रहता' यह कोई नियम तो नहीं? कहीं ऐसी आशङ्का न हो, इसलिये भिन्न प्रकारसे अर्थ करना भी उपयुक्त है। ऐसी स्थितिमें **'किमावरीवः'** का यह अर्थ भी किया जा सकता है कि वह आवरक तत्त्व कौन था जो कि आवरण करता, कोई भी तो नहीं। आवरणके विषयके तुल्य आवरण करनेवाला भी तो उस समय स्वरूपेण कोई नहीं था। **'कुह'** आवरण करता हुआ तत्त्व किस देशमें अवस्थित होकर आवरण करता? आधारभूत वैसा कोई देश भी तो नहीं था। **'कस्य शर्मन्'** किस भोक्ताके सुखादिलक्षण निमित्तभूत भोगके रहते वह आवरक आवरण करता? जीवोंके उपभोगके लिये सृष्टि (लोक)-रचना होती है। सृष्टिके रहते ही सृष्टिगर्भ (लोकगर्भ) ब्रह्माण्डका पृथिव्यादिके द्वारा आवरण होता है। प्रलयदशामें उपाधिके प्रलीन होनेसे जीव स्वयम् भी प्रलीन हो जाते हैं, स्वरूपसे शेष नहीं रहते। ऐसी स्थितिमें जब कोई भोक्ता ही सम्भव नहीं होता तो आवरणके निमित्तका अभाव हो जानेसे भी उस समय आवरण चरितार्थ नहीं होता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भोग्यप्रपञ्चके तुल्य भोक्तृप्रपञ्च भी उस समय नहीं था। इस प्रकार आधारप्रदेश और आवरणके निमित्तका निषेध स्वयम् आवरणका भी निषेध कर देता है।

● भाष्यम्— अम्भः किमासीदित्यम्भसो जलस्यापि निषेधः। यद्यपि ब्रह्माण्डनिषेधेन तदन्तर्गतस्याम्भसोऽपि निषेधः प्राप्त एव, तथापि 'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्' (तैत्तिरीयसंहिता ७.१.५.१) इति श्रुत्यापां सद्भावं कश्चिदाशङ्केतेति पृथक् तत्प्रत्याख्यानं युक्तमेव। गहनं दुष्प्रवेशं गभीरं दुरवस्थानमत्यगाधमम्भोऽपि किमासीत्तदानीम्, तदपि नासीदित्यर्थः। न च तर्हि श्रुतेः का गतिरिति वाच्यम्, तस्या अवान्तरप्रलयपरत्वेन महाप्रलये तत्सद्भावासिद्धेः ॥१॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **भाष्यार्थ :–** **'अम्भः किमासीत्'** – 'क्या जल था' इस कथनसे जलका भी निषेध कर दिया गया है। यद्यपि ब्रह्माण्डनिषेधसे उसके अन्तर्गत जलका भी निषेध प्राप्त ही है, अर्थात् आवरणसहित ब्रह्माण्डनिषेधसे उसके अन्तर्गत जलका भी निषेध हो ही जाता है (स्थूलजल ब्रह्माण्डान्तर्गत और सूक्ष्मजल आवरणान्तर्गत है), तथापि **'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्'** (तैत्तिरीयसंहिता ७.१.५.१) – 'प्रलयमें यह जगत् अपनेमें लीन करनेवाला सलिलसंज्ञक जल था' – इस श्रुतिसे महाप्रलयमें जलके सद्भावकी आशंका किसीको हो सकती है, ऐसी स्थितिमें पृथक्से जलका प्रत्याख्यान (निराकरण) उपयुक्त ही है। उस समय चारों ओर फैला हुआ गहन (दुष्प्रवेश) और गभीर (दुरवस्थान) अर्थात् अत्यन्त अगम्य (अगम) और अगाध (अथाह) जल भी था क्या? वह भी तो नहीं था। 'ऐसी स्थितिमें जलका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतिकी क्या गति होगी' ऐसा कथन उपयुक्त नहीं। जलप्रतिपादिका श्रुति अवान्तरप्रलयपरक होनेसे महाप्रलयमें उसका सद्भाव असिद्ध है। अभिप्राय यह है कि अवान्तरप्रलयमें जलकी सार्थकता मान लेनेपर जलप्रतिपादिका श्रुतिकी तथा महाप्रलयमें जलकी सत्ता अस्वीकार करनेपर प्राप्त श्रुतिकी सार्थकता सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार दोनों श्रुतियाँ सुसङ्गत हो जातीं हैं, कोई भी श्रुति निरवकाश नहीं होती॥ १॥

● **मन्त्र :–**

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राव्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परःकिञ्चनास॥ २॥

● **भाष्यम्–** ननूक्तस्य प्रतिसंहारस्य प्रतिहर्त्रपेक्षत्वात् प्रतिसंहर्ता मृत्युरासीदिति चेत्, तदपि निषिद्ध्यते, 'न मृत्युरासीत्' इति संहारकस्य कालस्यापि तदानीं महाकारणे विलीनत्वात्। ननु यदि मृत्युर्नासीत्तदा तदभावकृतममृतं सर्वप्राणिनाममरणमेवास्तु, इति चेत्तत्राह–तर्हि तदानीमसृतमपि नासीत्। सर्वप्राणिनां भोगहेतुभूतं परिपक्वं सर्वं कर्म यदोपभुक्तं भवति, तदा भोगाभावान्निष्प्रयोजनमिदं जगदिति परमेश्वरस्य मनसि सञ्जिहीर्षोपजायते। तथैव सर्वं जगदुपसंहरति। किमनेन मृत्युना संहर्त्रा तदभावकृतं वा कथममरणं स्यात्। अत एव महाकारणे मृत्योरपि लयः श्रूयते। 'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः। मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥' (कठोपनिषत् २.२.५) प्राणिनां पूर्वमेव

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संहृतत्वात् प्राणिनामवस्थानरूपममृतं तु कुतस्त्यम्?

● **भाष्यार्थ :–** 'उक्त प्रतिसंहार प्रतिसंहर्ता (संहारक) सापेक्ष होनेसे महाप्रलयमें प्रतिसंहर्ता मृत्यु था' यह कथन भी उपयुक्त नहीं। उसका भी निषेध **'न मृत्युरासीत्'** इस वचनसे प्राप्त है। कारण यह है कि संहारक काल भी उस समय महाकारणमें विलीन था। अब प्रश्न उठता है कि यदि महाप्रलयमें मृत्युसंज्ञक महाकाल भी नहीं था तो उसका अभाव करनेवाला (रजनीका अभाव करनेवाला रवितुल्य) सम्पूर्ण प्राणियोंका अमरणरूप अमृत तो था ही? परन्तु **'अमृतं न तर्हि'**– 'उस समय अमृत भी नहीं था' कहकर श्रुति अमृतका भी निषेध करती है। वस्तुस्थिति यह है कि सम्पूर्ण प्राणियोंके भोगमें कारणभूत परिपक्व सभी कर्म जब उपभुक्त (भोगा हुआ) होता है, तब भोगके अभावमें यह जगत् निष्प्रयोजन हो जाता है, तब परमेश्वरके मायारूपी मनमें संहारकी इच्छा उत्पन्न होती है, उसीके फलस्वरूप सम्पूर्ण जगत्का उपसंहार होता है। पुनः मृत्यु और उसके अभावका करनेवाला अमृत दोनों ही निष्प्रयोजन हो जाते हैं; अतः मृत्युके तुल्य अमृत भी उस समय नहीं होता। यही कारण है कि महाकारणमें मृत्युका भी लय '.....मृत्युर्यस्योपसेचनम्' (कठोपनिषत् १.२.२५) सुना जाता (श्रुतिसिद्ध) है। अभिप्राय यह है कि प्राणियोंके अवस्थानरूप अमृतकी स्थिति पूर्वसंहृत प्राणियोंकी अनवस्थितिके कारण असम्भव है।

अभिप्राय यह है कि दाह्यतुल्य संहार्य भोग्य और भोक्तृप्रपञ्चका दाहतुल्य मृत्युसंज्ञक संहार हो जानेपर दाहकतुल्य अमृतसंज्ञक संहारक महाकाल भी महाप्रलयमें शेष नहीं रहता। अथवा सर्वसंहारक मृत्युसंज्ञक काल तथा ज्ञानमय अमृतसंज्ञक जीव भी महाप्रलयमें शेष नहीं रहता। कालका भी लयस्थान जीव शिवतादात्म्यापन्न होकर स्थित रहता है। कार्यप्रपञ्चका उपादानात्मक लयस्थान महाकारण माया भी वक्ष्यमाण मायाश्रय महेश्वरसे एकीभूत रहती है।

ध्यान रहे, **'मृत्यु'** अग्नितुल्य है। महाप्रलय उत्तरसर्गकी अपेक्षा मृत्युकी अभिव्यक्तिकी पूर्वावस्था है। पूर्वसर्गकी अपेक्षा वह मृत्युके ध्वंसकी उत्तरावस्था है। अत एव 'महाप्रलयमें मृत्यु नहीं था', यह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कथन युक्तियुक्त है। अग्निकी अभिव्यक्तिके पूर्व और अग्निके ध्वंसके पश्चात् अग्निका असत्त्व दृष्टान्त है।

निरपेक्ष अमृत ब्रह्म और ब्रह्माश्रिता माया है। महाप्रलयमें उसका सत्त्व ही श्रुतिका प्रतिपाद्य है; अत एव उसका प्रतिषेध अप्राप्त है। सापेक्ष अमृत प्रलयमें अवशिष्ट महः, जनः, तपः और सत्यम् संज्ञक परमेष्ठिलोक, महः अथवा आकाशसंज्ञक प्रथमकार्यात्मक परमेष्ठिदेह और प्रथमकार्योपहित परमेष्ठिपद है; जो कि प्रलयमें मृत्युका अविषय होनेसे शेष रहता है। उसीका प्रतिषेध यहाँ विवक्षित है। व्यष्टि, समष्टि सूक्ष्म और कारणशरीरपर्यन्त जीवभाव है। महाकारण मायामें सूक्ष्म और कारणप्रपञ्चका विलय हो जानेके कारण जीवसंज्ञक अमृतका भी परमात्मावशेषरूप प्रतिषेध महाप्रलयमें उपयुक्त ही है—

"एतावज्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः।
धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ॥"

(श्रीमद्भागवते ३.१०.९)

"आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं विभाव्यते।
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार उच्यते॥"

(श्रीविष्णुपुराणे २.८.९५)

"तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत्काले लीयतेऽव्यये॥
कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे।
आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः॥"

(श्रीमद्भागवते ११.२४.२६, २७)

"भूः, भुवः, स्वःपर्यन्त काम्यकर्मोके फलस्वरूप मिलनेवाले लोकविशेष हैं। निष्कामकर्मके फलस्वरूप मिलनेवाला परमेष्ठिपद महः, जनः, तपः और सत्यम्-रूप है॥ पञ्चभूतोंके लयपर्यन्त परमेष्ठिस्थान **'अमृत'** रूपसे सुशोभित और निरूपित है। महःपर्यन्त प्रलयका ताप प्राप्त है। निरुपद्रव जनः, तपः और सत्यम्रूप त्रिलोकीकी स्थितिपर्यन्त इस कालको ही **'अपुनर्मार'** कहा जाता है। त्रिगुण अव्यक्तमें विलीन होते हैं। अव्यक्त क्षोभक अव्यय कालमें लीन होता है। काल ज्ञानमय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवमें लीन होता है। 'जीव' मुझ अज आत्मामें लीन होता है। आत्मा समस्त विकल्पादिदोषोंसे विनिर्मुक्त है। वह आत्मस्थ ही रहता है, किसीमें लीन नहीं होता॥''

● **भाष्यम्— ननु तथापि सर्वस्याधिकरणभूतः कालः स्यादित्यत आह—राञ्या अह्नश्च प्रकेतः प्रज्ञानं नासीत्, तद्धेतुभूतयोः सूर्याचन्द्रमसोरभावात्। एतेनाहोरात्रनिषेधेन तदात्मको मासर्तुसंवत्सरावयवकः कालोऽपि प्रत्याख्यातः। ननु तर्हि कथं तदानीमिति कालवाची प्रत्ययः? इति चेन्न, तादृक्प्रत्ययस्योपचारात्। यथेदानीन्तननिषेधस्य कालोऽवच्छेदकस्तथा मायापि तदवच्छेदहेतुरित्यवच्छेदकसाम्येनाकालेऽपि कालवाचिप्रत्ययोपपत्तेः।**

● **भाष्यार्थ :—** तथापि यह प्रश्न उठता है कि काल तो सबका अधिकरण (आश्रय) रूप है। उसका निषेध महाप्रलयमें कैसे सम्भव है? भोक्तृ और भोग्यप्रपञ्चका प्रतिषेध हो जानेपर भी सर्वाश्रय कालकी विद्यमानता तो हो ही सकती है? (भावी प्रपञ्चके लिये अपेक्षित मायामें क्षोभ भी तो कालकृत ही मान्य है। वह तभी सम्भव है, जब काल महाप्रलयमें स्वरूपतः शेष हो।) उत्तर है, नहीं। दिन और रातके सूचक सूर्य और चन्द्रकी स्थिति न रहनेसे अहोरात्र नहीं थे। दिन, रातके निषेधसे उनसे निष्पन्न होनेवाले मास, ऋतु, संवत्सर आदि अवयववाले कालका भी निराकरण कर दिया गया। अब प्रश्न उठता है कि यदि श्रुतिको महाप्रलयमें कालका भी प्रतिषेध ही अपेक्षित है तो कालवाचक **'तदानीम्'** (उस समय) यह पद ही क्यों प्रयुक्त है? इसका उत्तर यह है कि यह पद उपचारार्थ है, अर्थात् गौण ही है। वस्तुस्थिति यह है कि जैसे 'इस समय' निषेधका अवच्छेदक काल है, वैसे माया भी निषेधका अवच्छेदक होनेसे अवच्छेदकसमानतासे अकालमें भी कालवाचक प्रत्ययकी सङ्गति सम्भव है। अभिप्राय यह है कि घट-पट-पृथिव्यादि कार्योंके साथ कालकी एकरूपताकी प्रतीति आनुभविकी (अनुभवसिद्ध) नहीं है। कारण यह है कि वर्तमानत्वादिरूप कालका स्फुरण सर्वथा विशेषणरूपसे ही चरितार्थ है। **'इदानीं जायते', 'तदानीं नश्यति'**— 'इस समय उत्पन्न होता है', 'उस समय नष्ट होता है' इस प्रकार जन्म-नाशके अवच्छेदकरूपसे कालकी प्रतीति होनेपर भी लयाधारत्वादिरूप

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(लयावशेषत्व, निर्विशेषत्वादिरूप) उपादानकारणता कालमें चरितार्थ नहीं है। सत्-असत्-विलक्षणा अनिर्वाच्या माया मुख्य ईक्षणादिमें समर्थ न होनेपर भी ब्रह्माधिष्ठिता होनेसे विशुद्ध सत्त्वके योगसे ईक्षणादिमें समर्थ अत एव निमित्त और तमःप्रधाना अवष्टम्भादि गुणोंके योगसे भूत-भौतिकप्रपञ्चका परिणामोपादान हो सकती है, अत एव महाप्रलयमें कालातीत महामाया ही कालगर्भित पृथिव्यादिके निषेधका अवच्छेदक अर्थात् निमित्तोपादानरूपसे अवशिष्ट रह सकती है। **'तदानीम्'** इस कालवाचक पदका प्रयोग कालवासनावासित साधकों के मनमें वस्तुस्थिति को अवतरित करनेकी भावनासे है।

● **भाष्यम् — नन्वेवं कस्यचित्परमार्थवस्तुनः सत्त्वाऽभावे शून्यपर्यवसाय्येव सर्वं स्यादिति चेत्तत्राह—आनीत्, तद् वेदान्तप्रसिद्धं ब्रह्मतत्त्वमानीत्, अननं प्राणनं कुर्वत् आसीत्। ननु तर्हि प्राणनकर्त्तुर्जीवभावापन्नस्यैव ब्रह्मणोऽस्तित्वं सिद्ध्यतीति चेत्तत्राह-अवातम्। अप्राणं शुद्धं ब्रह्मेत्यर्थः, "अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः" (मुण्डकोपनिषत् २.१.२) इति श्रुतेः। यद्यपि "आनीत्" इत्युक्त्या धात्वर्थक्रिया, तत्कर्त्ता तस्य च भूतकालसम्बन्ध इति त्रयोऽप्यर्थाः प्रतीयन्ते, तथापि न तत्र "आग्नेयोऽष्टाकपालो भवति" (मै० सं० १.१०.१) इतिवत् तत्समुदायो विधीयते, येन शुद्धब्रह्मणः सत्त्वं न सिद्ध्यति। किन्तु कर्त्तृत्वमनूद्य भूतकालसत्तालक्षणो गुणो विधीयते, "दध्ना जुहोति" (आप० श्रौत० ६.२५) इतिवत्। तत्र च होम-मनूद्य दधिलक्षणो गुणो विधीयते। तत्राप्यनेन कर्त्तृत्वविशिष्टस्य न पूर्वकालसत्ता विधीयते, तन्निषेधानुपपत्तिप्रसङ्गात्। अतोऽनेनेदानीन्तनेन कर्तृत्वेनोपलक्षितं यन्निरुपाधिकं परं ब्रह्म तस्यैव भूतकालसत्ता विधीयते। तेन प्राणनादिक्रिया तत्कर्त्तृत्वादिरहितं शुद्धं ब्रह्मैव बोध्यते।**

● **भाष्यार्थः—** "परन्तु माया भी तो कोई परमार्थ वस्तु नहीं है। आगे श्रुति स्वयं ही उसे "तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्" (३) कहकर लौकिकोंकी दृष्टिसे वास्तवी तथा यौक्तिकों (आनुमानिकों) की दृष्टिसे अनिर्वचनीया, स्वयंकी दृष्टिमें स्वतः तुच्छा कहेगी। ऐसी स्थितिमें यही क्यों न माना जाय कि महाप्रलयमें किसी भी पारमार्थिकवस्तुका अस्तित्व न होनेपर शून्यपर्यवसायी ही सब कुछ था, अर्थात् शून्यही शेष था।" ऐसा कहना उपयुक्त नहीं। वह वेदान्तप्रसिद्ध ब्रह्मतत्त्व आनीत् अर्थात्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनन, प्राणन करता हुआ स्थित था। "तब तो प्राणनकर्त्ता जीवभावापन्न ब्रह्मका ही अस्तित्व सिद्ध होता है, न कि प्राणादिसे अतीत शुद्धब्रह्मका" यह कथन भी उपयुक्त नहीं। "**अवातम्**" प्राणरहित शुद्धब्रह्म ही शेष था। यह तथ्य "अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः" (मुण्डकोपनिषत् २.१.२) इस श्रुत्यन्तरसे भी अनुमोदित है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि "आनीत्" इस उक्तिसे धात्वर्थक्रिया, उसका कर्त्ता और उसका भूतकालसम्बन्ध ये तीनों ही तत्त्व प्रतीत होते हैं, तथापि यहाँ आग्नेय अष्टाकपालके सदृश समुदायका विधान नहीं मान्य है, जिससे कि शुद्धब्रह्मकी सत्ता सिद्ध न हो सके। अपितु "**दध्ना जुहोति**" इस वाक्यसे जिस प्रकार होमका अनुवाद कर दधिलक्षणगुण (हवनीय द्रव्य) का विधान किया जाता है, उसी प्रकार यहाँ कर्त्ताका अनुवाद कर उसकी भूतकालकी सत्तावाले गुणमात्रका विधान किया जाता है। ऐसी स्थितिमें इस श्रुतिवाक्यमें कर्तृत्वविशिष्टकी पूर्वकालिकसत्ता नहीं सिद्ध की जा रही; क्योंकि ऐसा मानने पर तो उसका निषेध ही नहीं सध पायेगा। इस समय इस प्रकार कर्तृत्वसे उपलक्षित निरुपाधिक (कार्यप्रपञ्चरूप उपाधिसे विरहित) परब्रह्म है, उसीकी भूतकालकी सत्ता विदित होती है। इसप्रकार प्राणनप्रभृतिक्रिया और कर्तृत्वसे विरहित शुद्धब्रह्मका ही यहाँ अधिगम (बोध) होता है।

● **भाष्यम् — नन्वीदृशस्य ब्रह्मणो मायासम्बन्धाऽसंभवात् सांख्याभिमता स्वतन्त्रा प्रकृतिरेव सिद्ध्यतीति कुतः नो सदिति निषेधः? तत्राह — स्वधया। स्वस्मिन् धीयते ध्रियते आश्रित्य वर्त्तत इति स्वधा माया तया सहाविभागापन्नं ब्रह्मैवासीत्। अत्र सहशब्दप्रयोगाऽभावेऽपि "सहयुक्तेऽप्रधाने" (पा० सू० २.३.१९) इति सहार्थप्रयोगेऽपि तृतीया भवति "वृद्धो यूना" (पा० सू० १.२.६५) इति निर्देशाल्लिङ्गात्। "स्वधया" इत्यत्र प्रकृतिप्रत्ययाभ्यां तस्याः स्वातन्त्र्यं निषिध्यते। यथा गोधूमादिबीजेषु तत्तदङ्कुरादिजननानुगुणाः शक्तयः सन्ति, तथैव ब्रह्मणि प्रपञ्चोत्पादनानुगुणाः शक्तयः सन्ति। तासां समष्टिरेव माया भवति। सा च न जीवादिकार्याश्रया, कारणस्य कार्याश्रयत्वानुपपत्तेः। नापि स्वाश्रया, आत्माश्रयत्वाऽयोगात्। पारिशेष्याद् ब्रह्माश्रयैव सा। भ्रमोपादानत्वेन सैवाविद्यापि जेगीयते। यद्यप्यसङ्गे ब्रह्मणि तत्सम्बन्धो न सम्भाव्यते, तथापि तस्मिन्नविद्ययैव तत्स्वरूपमिव सम्बन्धोऽपि कल्प्यते।**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा शुक्तिकायां रजतस्याध्यासिकसम्बन्धो भवति तथैव मायाधिष्ठाने ब्रह्मणि मायाया आध्यासिकः सम्बन्धः - सम्बन्धोऽप्याध्यासिक एव। यथा वह्निशक्तिर्वह्निविलक्षणा भवति, तथैव सतः शक्तिरपि सद्विलक्षणैव। तत एव तस्याः सद्रूपता प्रत्याख्याता। यथा भेदो भिद्यं भिन्दन् स्वमपि ततो भिनत्ति, यथा वा नैयायिकानामात्मा प्रमेयजातमिव स्वमपि प्रमिणोति, तथैव सा माया विश्वप्रपञ्चं कल्पयन्ती स्वमपि कल्पयति, स्वपरनिर्वाहकाणां भावनां बहुलमुपलब्धेः।

● **भाष्यार्थ :–** "परन्तु इस प्रकारके असङ्गादिलक्षणलक्षित ब्रह्मका मायासम्बन्ध भी तो असङ्गत है; अतः सांख्यसम्मत स्वतन्त्रा मायाशक्तिरूपा प्रकृति ही सिद्ध होती है। ऐसी स्थितिमें सत्का निषेध कैसे सम्भव है?" ऐसी आशङ्काका निराकरण करनेकी भावनासे श्रुति कहती है **'स्वधया'**। स्वधाशब्दका अर्थ है, 'स्वयंमें सबको समेटकर स्थित रहनेवाली' अर्थात् प्रकृति या माया। उससे अविभागापन्न (विभागसे असम्पन्न) ब्रह्म ही उस समय शेष (विद्यमान) था। ध्यान रहे, यहाँ सहशब्दका प्रयोग न होनेपर भी **'वृद्धो यूना'** इस निर्देशसे तृतीया विभक्ति हो सकती है। ऐसी स्थितिमें 'स्वधया' इस पदमें विद्यमान प्रकृति और प्रत्ययसे प्रकृतिका स्वातन्त्र्य असिद्ध (निषिद्ध) हो जाता है। जैसे गेहूँ आदिके बीजमें उस-उस अंकुरादिको उत्पन्न करनेके अनुरूप शक्तियाँ सन्निहित होती हैं, वैसे ही परब्रह्ममें प्रपञ्चोत्पादनके अनुरूप शक्तियाँ सन्निहित हैं। उन समग्र शक्तियोंका समूह माया है। वह मायाशक्ति कार्योपाधिक जीव और कार्यात्मक जगत्के समाश्रित नहीं है। कारण यह है कि कारण कार्यके समाश्रित रहे, यह असिद्ध है। आत्माश्रयदोषके कारण वह स्वयम् भी स्वयम्के समाश्रित रहे, यह सम्भव नहीं। पारिशेष्यन्यायसे ब्रह्मके समाश्रित ही वह सिद्ध होती है। अभिप्राय यह है कि द्रव्य, गुण, जाति, क्रिया, सम्बन्धादिरूप विकल्पोंकी भी जननी अत एव प्रसवधर्मिणी मायाशक्ति निराश्रित रहे, अथवा कार्योपाधिक जीवके समाश्रित रहे, अथवा स्वकार्यात्मक जगत्के समाश्रित रहे अथवा स्वाश्रित रहे, ऐसा सम्भव न होनेसे परब्रह्मके समाश्रित मान्य है। भ्रमोपादान होनेसे माया ही अविद्या भी कही जाती है। यद्यपि असङ्ग ब्रह्ममें उसका सम्बन्ध सम्भावित नहीं होता अर्थात् कथमपि नहीं सधता, तथापि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अविद्याकी तरह उसके सम्बन्धकी भी कल्पना हो जाती है। अभिप्राय यह है कि स्वप्रकाश परब्रह्ममें अविद्याके स्वरूपके सदृश ही उसका कल्पिततादात्म्यसम्बन्ध भी सध जाता है। जैसे शुक्तिकामें रजतका आध्यासिक सम्बन्ध होता है, वैसे ही मायाधिष्ठान ब्रह्ममें मायाका आध्यासिक सम्बन्ध है। जैसे वह्निशक्ति वह्निविलक्षण होती है; वैसे ही ब्रह्मसंज्ञक सत्की शक्ति भी सद्विलक्षण ही सिद्ध होती है। इसी अभिप्रायसे मायाकी सद्रूपताका निराकरण कर दिया गया है। जैसे भेद भेदनके विषयका भेदन करता हुआ स्वयंको भी उससे भिन्न कर लेता है अथवा जैसे नैयायिकोंका आत्मा प्रमेयवर्गको प्रमित (प्रकाशित) करता हुआ स्वयंको भी प्रमित करता है; वैसे ही वह माया विश्वप्रपञ्चकी कल्पना करती हुई स्वयंको भी कल्पित करती है। स्वपरनिर्वाहक (प्रकाशक, साधक) दीपादि पदार्थोंकी बहुल उपलब्धि अनुभवगम्य है। अभिप्राय यह है कि अपने और परायेके परिचायक पदार्थोंकी कमी नहीं है।

● **भाष्यम्— ननु ब्रह्मणोऽविभागापन्नत्वेन तस्या अनिर्वाच्यत्वमिव ब्रह्मणोऽपि तथात्वं किं न स्यादिति? ब्रह्मणो वा सत्त्वे तस्या अपि सत्त्वप्रसङ्गः इति कुतो नो सदासीदिति सत्त्वनिषेधः? इति चेन्न, अयुक्तिदृष्ट्यैक्यावभासेऽपि युक्त्या विविच्यमाने मायांशस्याऽनिर्वाच्यत्वं ब्रह्मणश्च सत्त्वमिति प्रतिपादितत्वात्।**

● **भाष्यार्थः—** अब प्रश्न उठता है कि ''महाप्रलयमें जब ब्रह्मसे माया और मायासे ब्रह्म अविभागापन्न ही मान्य है, तब मायाके सदृश ब्रह्मको भी अनिर्वचनीय ही क्यों न माना जाय अथवा ब्रह्मके तुल्य ही मायाको भी सत् ही क्यों न माना जाय? फिर 'नो सदासीत्' की उक्तिसे मायाके सत्त्वका निषेध क्यों किया गया है?'' परन्तु अयुक्तिदृष्टिसे ऐक्यप्रतीति होनेपर भी युक्तिपूर्वक विवेचन करने पर मायांशकी अनिर्वचनीयता और ब्रह्मकी सद्रूपताका प्रतिपादन हो जानेसे उक्त कथन उपयुक्त नहीं।

● **भाष्यम्— न च दृग्दृश्यौ द्वावेव पदार्थौ आनीदवातं स्वधयेति चेदङ्गीक्रियेते, तर्हि कुतो नासीद्रज इत्यादिना लोकानां निषेध इति तत्राह—'तस्माद्धान्यन्नपरः किञ्चनास' (२)। तस्मात्मायासहिताद् ब्रह्मणोऽन्यत् भूतभौतिकं न आस न बभूव। ननु तदानीमन्यस्य सत्त्वे निषेधो न शक्यः, असत्त्वे चाप्रसक्तत्वान्न निषेधोपयोगः, इत्यत आह-परः**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टेः परस्तात् सृष्टेरूर्ध्वं वर्तमानमिदं जगत् तदानीं न बभूव। अन्यथोक्तरीत्या क्वचिदपि निषेधो न स्यादिति भावः ॥२॥

● **भाष्यार्थ :**— ''जब दृक् (द्रष्टा) और दृश्य दो ही पदार्थ **''आनीदवातं स्वधया''** इस वचनके अनुसार यदि मान्य हैं, तब **'नासीद्रजः'** (१) इत्यादि वचनोंके द्वारा लोकोंका निषेध क्यों किया गया है?'' यह कथन उपयुक्त नहीं है। कारण यही है कि **''तस्माद्धान्यन्नपरः किञ्चनास'** (२) उस मायासहित ब्रह्मसे अन्य भूत-भौतिक कुछ भी नहीं था। यदि यह कहा जाय कि 'उस प्रलयावस्थामें किसी अन्यका सत्त्व होनेपर निषेध संभव नहीं और असत्त्व होनेपर अप्राप्तका प्रतिषेध संभव नहीं।' तो इसका उत्तर यह है कि सृष्टि होनेके पश्चात् होनेवाला वर्तमान यह जगत् प्रलयावस्थामें नहीं रहता। यदि ऐसा अर्थ न किया जाय तो उक्त रीतिसे किसीका निषेध ही संभव नहीं होता॥ २॥

● **मन्त्र :—**

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥ ३॥

● **उत्थानिकाभाष्यम्— ननु यदि पूर्वमिदं जगन्नासीत् कथं तर्हि तस्य जन्म, जायमानस्य जनिक्रियायां कर्तृत्वेन कारकत्वात्। कारकत्वं च कारणावान्तरभेद इति कारकस्य सतो नियतपूर्वक्षणवर्तित्वेनावश्यंभावात्। यदि तद्दोषपरिजिहीर्षया जनिक्रियायाः प्रागपि कार्यं विद्यते, तदापि कथं तस्य जन्म, कार्यस्य सत्त्वेन कारकव्यापारवैयर्थ्यात्।** अत आह— '**तम आसीत्**'।

● **भाष्यार्थ :**— सत्कार्यवादी सांख्योंके अनुसार यह प्रश्न उठता है कि यदि महाप्रलयमें यह जगत् था ही नहीं तो सर्गदशामें उसका जन्म भी कैसे सम्भव है? क्योंकि जो जन्म लेता है, उसकी स्थिति अर्थात् जन्मलेनेकी क्रिया (जनिक्रिया) कर्तृकारकसे निष्पन्न होती है। कारणका अवान्तरभेद ही कारक है। ऐसी स्थितिमें कारककी स्थिति क्रियोत्पत्तिके अव्यवहित पूर्वक्षणमें अनिवार्य है। यदि उक्त दोषके परिहारकी इच्छासे जनिक्रियाके पूर्वक्षणमें कार्यकी विद्यमानता मान ली जाती है, तब भी असत्कार्यवादी वैशेषिकादिके अनुसार उसका जन्म कैसे संभव है? कार्योत्पत्तिके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्व ही उसका सत्त्व स्वीकार कर लेनेपर कारकव्यापार व्यर्थ सिद्ध होनेके कारण कार्योत्पत्तिके पूर्व कार्यका अस्तित्व स्वीकार करना असङ्गत ही है। उक्त आक्षेपोंका परिहार करनेके लिये कहा गया है– **'तम आसीत्'**।

● **भाष्यम्– अग्रे सृष्टेः प्राक् प्रलयदशायां भूतभौतिकं सर्वं जगत् तमोभावरूपमज्ञानमासीत्, मायाऽपरनामकतमःशबलितं ब्रह्मासीदित्यर्थः। यथा नैशं तमः सर्वं पदार्थजातमावृणोति, तद्वत् तदज्ञानात्मकं तम आत्मतत्त्वस्यावरकत्वाद् मायाऽपरनामकं भावरूपं तम आसीदित्यर्थः। तेनैव तमसा सर्वं भूतं भौतिकं जगदपि गूढं संवृतं कारणभूतेन तेनाच्छादितं भवति। आच्छादकात्तस्मात्तमसो नामरूपाभ्यां यदाविर्भवनम्, तदेव तस्य जन्म भवति। ये तु कारणावस्थायामसदेव कार्यं कारणव्यापारादुत्पद्यत इति मन्यन्ते, तदेतेनापाकृतं भवति, असतो भावाऽयोगात्। "नासतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः" (भगवद्गीता २.१६) इति भगवदुक्तेः।**

● **भाष्यार्थ :–** सृष्टिके पूर्व प्रलयदशामें भूत-भौतिक सम्पूर्ण जगत् तमस् अर्थात् भावरूप अज्ञान ही था। अभिप्राय यह है कि जिसका माया नामान्तर है ऐसे तमस्से शबलित ब्रह्म ही था। जैसे रात्रिका अन्धकार सम्पूर्ण पदार्थसमूहको ढक लेता है, वैसे ही वह अज्ञानान्धकाररूप तमस् आत्मतत्त्वका आच्छादक होनेसे मायासञ्ज्ञक भावरूप तमस् था, ऐसा कहा गया है। अभिप्राय यह है कि महाप्रलयमें ब्रह्माधिष्ठित मायानामक तमस्से सम्पूर्ण भूत-भौतिक जगत् गूढ-संवृत अर्थात् आच्छादित होता है। आच्छादक उस तमस्से नामरूपका जो आविर्भाव है, वही जगत्का जन्म है। जो असत् कार्यवादी "कारणावस्थामें असत् ही कार्य कारणव्यापारसे समुत्पन्न होता है" ऐसा मानते हैं। उनका अभिमत उक्त कथनसे असत् सिद्ध होता है। कारण यह है कि असत्का भाव (आविर्भाव) असिद्ध है। **"नासतो विद्यते भावः"** – 'असत्का भाव संभव नहीं' इस भगवद्वचनसे उक्त तथ्य सिद्ध है।

● **भाष्यम्– ननु यदि कारणभूते तस्मिंस्तमसि तज्जगदात्मकं कार्यं विद्यते तर्हि कथं नासीद्रज इति पृथिव्यादिलोकनिषेधः? इति चेन्न,**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तम आसीदित्युक्त्या कार्यस्य भावरूपस्याज्ञानात्मकमूलकारणरूपतैवासीत्, यतः सर्वं तम आसीत् तमोरूपमेवासीदिति नासीद्रज इति स्वरूपेण कार्यनिषेधोऽपि युज्यते।

● **भाष्यार्थ :**— फिर भी कहा जा सकता है कि "यदि उस तमस्में जगद्रूप कार्य विद्यमान रहता है तब "नासीद्रजः" ऐसा कहकर श्रुतिने पृथिव्यादि लोकोंका निषेध कैसे किया है?" परन्तु ऐसा कथन भी उपयुक्त नहीं। **"तम आसीत्"** – 'तमस् था' इस कथनसे कार्यप्रपञ्चकी भावरूप अज्ञानात्मक अपने मूलकारण तमस्रूपता ही थी; क्योंकि सभी तमस् था, अर्थात् तमोरूप ही था। अतः **"नासीद्रजः"** इस उक्तिसे निषिद्ध रजस्संज्ञक लोकोपलक्षित कार्यप्रपञ्चका भी स्वरूपतः निषेध सध जाता है।

● **भाष्यम्— ननु तथापि तम आवरकत्वाद् आवरणकर्तृ भवति। जगच्चावर्यत्वाद् आवरणकर्म भवति, कथं तयोः कर्तृकर्मणोस्तादात्म्यमिति चेत्तत्राह–अप्रकेतम् - अप्रज्ञायमानम्। यद्यपि तमसो जगतश्च कर्तृकर्मभावो यौक्तिकस्तथापि व्यवहारदशायामिव तदानीं नामरूपाभ्यां विस्पष्टं न ज्ञायत इति तादात्म्यवर्णनमपि सङ्गच्छते। अत एव मनुरप्याह– "आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥" (मनुस्मृतिः १.५) इति। कुतश्च न प्रज्ञायते तत्राह–सलिलमिति। षल गतावित्यस्माद् धातोरिलचिप्रत्यये सलिलमिति रूपं भवति। इदं दृश्यमानं सर्वं जगत् सलिलं कारणेन संगतमविभागापन्नम्-आः-आसीत्। अस्तेर्लङि तिपि "बहुलं छन्दसि" (पा० सू० ७.३.९७) इतीडभावे, "हल्ङ्याभ्यः" (पा० सू० ६.१.६८) इति तिलोपे, "तिप्यनस्तेः" (पा० सू० ८.२.७३), इति पर्युदासाद्दकाराऽभावः। यद्वा सलिलमिति लुप्तोपमं पदम्, सलिलमिवेत्यर्थः। यथा क्षीरेणाऽविभागापन्नं सलिलं दुर्विज्ञानं भवति, तथैव तमसाऽविभागापन्नं जगन्न शक्यविज्ञानं भवतीत्यभिप्रायः।**

● **भाष्यार्थ :**— फिर भी कहा जा सकता है कि "तमस् आवरक होनेसे आवरणकर्तृ (आवरण करनेवाला) है और जगत् आवार्य (आच्छाद्य) होनेसे आवरणकर्म अर्थात् आवृत होनेवाला है। ऐसी स्थितिमें तमस् और जगत्में तादात्म्य कैसे सध सकता है?" उक्त कथनका उत्तर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह है कि **"अप्रकेतम्"** (-अप्रज्ञायमानम्) कहकर श्रुति उक्त आक्षेपका परिहार करती है। यद्यपि तमस् और जगत्का कर्तृकर्मभाव यौक्तिक है, तथापि सर्गदशाके सदृश प्रलयदशामें नामरूपोंके द्वारा जगत् सुस्पष्ट नहीं था। अत एव दोनोंका तादात्म्यवर्णन भी सुसंगत होता है। इसलिये श्रीमनुने भी कहा है— **"आसीदिदं तमोभूतम्"** – "यह जगत् पहले तमःस्वरूप अत एव अज्ञेय, अप्रतर्क्य और अनिर्देश्य था, मानो चतुर्दिक् सुषुप्तिका साम्राज्य ही था।" अब प्रश्न उठता है कि "यह जगत् कारणभावापन्न होता हुआ भी विदित क्यों नहीं होता?" इसका उत्तर यह है कि **"सलिलम्"** सब कुछ सलिल था। गत्यर्थक षल्धातुसे इलच्प्रत्यय करनेपर सलिल शब्दकी निष्पत्ति होती है। यह सम्पूर्ण जगत् अपने कारण तमस्से संगत अर्थात् तादात्म्यापन्न (अविभागापन्न) था। **"सर्वम् आ इदम्"** इस उक्तिमें **"आः"** का अर्थ **"आसीत्"** है। अस्धातुसे लङ्लकारमें तिप्प्रत्यय करनेपर "बहुलं छन्दसि" इस सूत्रसे इट्प्रत्यय न होनेपर "हलङ्याभ्यः" इससे 'ति' का लोप हो जानेपर "तिप्यनस्तेः" इससे दकारके न होनेपर उक्त रूप बनता है। अथ वा कोशप्रसिद्ध अर्थके अनुसार "सलिलम्" लुप्तोपम पद है। "सलिलसदृश" इसका अर्थ है। जिसप्रकार क्षीरसे अविभागापन्न नीर दुर्विज्ञेय होता है, उसी प्रकार तमस्से अविभागापन्न जगत् दुर्विज्ञेय होता है।

● **भाष्यम् – ननु विविधवैचित्र्योपेतस्य प्रपञ्चस्य कथमतितुच्छेन तमसा क्षीरेण नीरस्येवाभिभवः ? यदि च क्षीरवत्तमोऽपि प्रबलमेवोच्येत तर्हि दुर्बलस्य प्रपञ्चस्य सर्गसमयेऽपि कथमुद्भवसंभवः ? इत्याशङ्कायामाह – 'तुच्छ्येनाभु' — आ समन्ताद् भवतीत्याभु अज्ञानम्। तुच्छ्येनेत्यत्र छान्दसो यकारः। तुच्छकल्पेन खपुष्पादितुल्येन सदसद्विलक्षणेन आभुना-अज्ञानेन अपिहितं छादितमासीत्। यद्यप्यज्ञानं बाध्यत्वान्न ब्रह्मवत् सत्। वियदादिप्रपञ्चोपादानत्वाच्च न खपुष्पवदसत् इति सदसद्विलक्षणत्वाद् अनिर्वाच्यमेव, तथापि बाधदशायां तत्खपुष्पवन्निरुपाख्यमेव भवतीत्यसत्कल्पतैव तस्य। एकमेकीभूतं कारणेन तमसाऽविभागापन्नमपि तत्कार्यजातं तपसः पर्यालोचनरूपस्य महिना – माहात्म्येन अजायतोत्पन्नम्। "यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तपः'' (मुण्डकोपनिषत् १.१.९) इति श्रुत्या ''इदमिदानीमुत्पादयितव्यम्'' इत्यादिज्ञानात्मकसंकल्पस्यैव तपोरूपत्वमुक्तम्॥३॥

● **भाष्यार्थ :–** प्रश्न उठता है कि विविध विचित्रतासम्पन्न संसार अति तुच्छ तमस्से क्षीरसे नीरतुल्य कैसे अभिभूत हो सकता है? यदि दुग्धके तुल्य तमस् भी प्रबल ही कहा जाय तब तो दुर्बल संसारका सर्गसमयमें भी भला उद्भव कैसे संभव है? ऐसी आशंका होनेपर श्रुतिका उद्घोष है— ''**तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्**''। ''आसमन्ताद् भवतीत्याभु-अज्ञानम्'' जो सर्वत्र विद्यमान रहता है या सब ओरसे अभिव्यक्त होता है वह आभु अर्थात् उपादानात्मक अज्ञान है। ''तुच्छ्य'' यह शब्द तुच्छका प्रतिरूप है। यकारका आधिक्य छान्दस है। श्रुतिके कथनका तात्पर्य यह है कि आकाशकुसुमादिवत् तुच्छकल्प सदसद्विलक्षण अज्ञानसे यह जगत् आच्छादित था। यद्यपि अज्ञान बाध्य होनेसे ब्रह्मसदृश 'सत्' नहीं है तथा आकाशादि कार्यप्रपञ्चका उपादान होनेसे आकाशकुसुमादिवत् 'असत्' भी नहीं है। ऐसी स्थितिमें सदसद्विलक्षण होनेसे अनिर्वचनीय ही सिद्ध है, तथापि बाधदशामें वह आकाशकुसुमादिसदृश निरुपाख्य ही सिद्ध होता है। अत एव अज्ञान असत्कल्प कहने योग्य है। अभिप्राय यह है कि लौकिकदृष्टिसे अज्ञान वास्तव और यौक्तिकदृष्टिसे अनिर्वाच्य सिद्ध होनेपर भी वैदिकदृष्टिसे वह तुच्छ ही मान्य है। वस्तुस्थिति यह है कि कार्यप्रपञ्चके तुल्य ही उसका उपादान अज्ञान समसत्ताक मान्य है। रज्जुसर्प रज्जुविज्ञानशून्योंके मतमें वास्तव है, रज्जुविज्ञानानन्तर मिथ्या है; परन्तु रज्जुदृष्टिसे अथ वा जिसे रज्जुमें सर्पभ्रम नहीं हुआ — रज्जुको जिसने रज्जु ही जाना उसकी दृष्टिसे असत् ही है। जगत् रज्जुसर्पतुल्य है। ब्रह्म रज्जुतुल्य है। जगदुपादान रज्जुके अज्ञानतुल्य है। रज्जुसर्पतुल्य जगत् और रज्ज्वज्ञानतुल्य माया वस्तुतः तुच्छ अर्थात् असत् है तथा रज्जुसदृश ब्रह्म सत् है। असत् और मिथ्याका मौलिक लक्षण एक ही है। जो न हो और न प्रतीत ही हो, वह असत् है और जो न होता हुआ ही प्रतीत हो, वह मिथ्या है। ''न होना'' दोनोंका यह मौलिक लक्षण एक ही है। इस प्रकार कारणरूप तमस्से अविभागापन्न होता हुआ भी तमस्का कार्यभूत यह जगत् पर्यालोचनरूप ईश्वरीय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तपके अमोघप्रभावसे समुत्पन्न हुआ। "यस्य ज्ञानमयं तपः" इस मुण्डकश्रुतिके अनुर्शीलनसे सर्वेश्वरके ज्ञानात्मक तपसे जगत्का समुद्भव सिद्ध है। अभिप्राय यह है कि "इदमिदानीमुत्पादयितव्यम्"— "इस समय इस वस्तुको उत्पन्न करना चाहिये" इत्यादि ज्ञानात्मक संकल्प ही यहाँ तप मान्य है, न कि कृच्छ्रचान्द्रायणादि॥ ३॥

● **मन्त्र :–**

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥ ४॥

● **भाष्यम्**— ननु जगतः पुनरुत्पत्त्यै यदीश्वरस्य स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप-तपः कारणम्, तदेव किन्निबन्धनम्, इत्यत आह—कामस्तदग्रे। अग्रे अस्य विकारजातस्य सृष्टेः प्रागवस्थायां परमेश्वरस्य मनसि कामः समवर्तत सम्यगजायत। परमेशमनसि प्रपञ्चसिसृक्षा सञ्जातेत्यर्थः। तदीयसिसृक्षापि किन्निबन्धनेत्याकाङ्क्षायामाह—मनस इति। मनसोऽन्तःकरणस्य सम्बन्धिवासनाशेषेण मायायां विलीनेऽन्तःकरणे समवेतं प्रथममतीते कल्पे प्राणिभिः कृतं पुण्यापुण्यात्मकं कर्म तादृशं रेतो भाविनः प्रपञ्चस्य बीजभूतं यत् यतः कारणात् सृष्टिसमये आसीद् अभवत्, भूष्णु वर्धिष्णु अजायत परिपक्वं सत्फलोन्मुखमासीत्। ततो हेतोः फलप्रदस्य सर्वसाक्षिणः परमेश्वरस्य कर्माध्यक्षस्य मनसि सिसृक्षाऽजायत। तस्यां सत्यां स्रष्टव्यं पर्यालोच्य ततः सर्वं जगत् सृजति। अत्र कामाधिकरणत्वेन परमेश्वरस्य मायारूपं मन आक्षिप्तम्, 'अप्राणो ह्यमनाःशुभ्रः' (मुण्डकोपनिषत् २.१.२) इति श्रुतेरन्यादृशस्य मनसोऽभावात्। मन्त्रे श्रुतस्य मनस इत्यत्रैकवचनं सामान्यापेक्षम्। तानि च सर्वजीवसम्बन्धीन्यन्तःकरणानि प्रलये वासनाशेषेण मायायां विलीनानि भवन्ति। तेषु सर्वप्राण्यन्तःकरणेषु प्राक्कल्पकृतं पुण्यापुण्यात्मकं कर्मादृष्टरूपेण समवेतं भवति। तदेव च भाविनःप्रपञ्चस्य रेतो बीजं भवति। प्रलयप्राक्कालिकेनेश्वरसङ्कल्पेन तदेवादृष्टरूपं कर्म भूष्णु वर्धिष्णु परिपक्वं सत् फलोन्मुखं भवति। तत एव परेशस्य मायावृत्त्यात्मके मनसि सिसृक्षा जायते। एतावता कामस्य कर्मादृष्टस्य च मन एवाधिकरणं नात्मेत्यपि सिद्धयति। तदेतत्सर्वमाम्नायते— 'सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च।' (तैत्तिरीयारण्यके ८.६)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **भाष्यार्थ :—** प्रश्न उठता है कि 'जगत्की पुनः उत्पत्तिमें यदि ईश्वरका स्रष्टव्यपर्यालोचनरूप तप ही हेतु था तो वही किस निमित्तसे था?' इस शङ्काका समाधान **'कामस्तदग्रे'** इस मन्त्रसे दिया गया है। इस विकारवर्गकी सृष्टिकी पूर्वावस्थामें अर्थात् सर्गके प्रारम्भमें परमेश्वरके मनमें काम (प्रपञ्चसर्जनकी इच्छा) उत्पन्न हुआ। सर्जनेच्छा भी किस निमित्तसे हुई? ऐसी आकांक्षा होनेपर यह कहा गया है कि प्राणियोंके मनसे सम्बन्धित वासनाशेषसे अर्थात् अन्तःकरणमें समवेत वासनायोगसे ईश्वरीय मनरूपी मायामें सर्जनेच्छा समुदित हुई। अभिप्राय यह है कि पूर्वकल्पमें प्राणियोंके द्वारा अनुष्ठित शुभाशुभ कर्म भावी प्रपञ्चके प्रति बीजभूत था। वह प्राणियोंके अन्तःकरणमें समवेत था। प्राणियोंका अन्तःकरण प्रलयक्रमसे प्रपञ्चोपादान ईश्वरीय मनरूपी मायामें विलीन था। फलदेनेके अभिमुख प्राणियोंके परिपक्व कर्मके कारण फलप्रद सर्वसाक्षी कर्माध्यक्ष परमेश्वरके मनमें सिसृक्षा (सृष्टिरचनेकी इच्छा) उत्पन्न हुई। ध्यान रहे, प्राणिकर्मवासना शेषसे सर्वेश्वर स्रष्टव्यका पर्यालोचन करके सबको रचता है। यहाँ कामाधिकरणरूपसे परमेश्वरका मायारूपी मन आक्षिप्त है। कारण यह है कि **'अप्राणो ह्यमनाःशुभ्रः'** इस मुण्डकश्रुतिके अनुसार परमेश्वर अमना है। अभिप्राय यह है कि जीव कार्योपाधिक चित्पदार्थ है। वेदान्तनयानुसार कार्यात्मक मन उसकी उपाधि है। ईश्वर कारणोपाधिक चित्पदार्थ है। कारणात्मिका माया उसकी उपाधि है। यही कारण है कि परमेश्वरके मायारूप मनमें सर्जनेच्छा समुदित हुई। मन्त्रमें श्रुत **'मनसः'** यह एकवचन सामान्यापेक्ष है। सर्व प्राणियोंके शुभाशुभकर्म अदृष्टरूपसे अन्तःकरणमें समवेत रहता हुआ मायामें विलीन रहता है। पूर्वकालिक ईश्वरीय संकल्पके योगसे वही अदृष्टरूप कर्म समुन्नत और परिपक्व होकर फलोन्मुख होता है। उसीसे मायावृत्तिरूप परमेश्वरके मनमें सिसृक्षा समुदित होती है। इस प्रकार अदृष्टरूप कर्म और कामका मन ही अधिकरण है, न कि आत्मा। **'विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च'** (तैत्तिरीयोपनिषत् २.५), **'प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्'** (भगवद्गीता २.५५) आदि श्रुति-स्मृतियोंके अनुशीलनसे उक्त तथ्य सिद्ध है। ईश्वरीय बहुभवनकी इच्छारूपा सर्जनेच्छा और तपःपूर्वक सर्जन शास्त्रसिद्ध है— **'सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च।'** (तैत्तिरीयारण्यके ८.६)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **भाष्यम्** – मन्त्र इत्थं स्वात्मनावगमितेऽर्थे विद्वदनुभवं प्रमाणयति – सतः सत्त्वेनानुभूयमानस्य सर्वस्य जगतः बन्धुं बन्धकं हेतुभूतं वा कल्पान्तरीयप्राण्यनुष्ठितं कर्मसमूहं कवयः क्रान्तदर्शिन अतीतानागतवर्तमानज्ञा योगिनो हृदि हृदये निरुद्धया मनीषया बुद्ध्या 'सुपां सुलुक्'० (पाणिनीयसू० ७.१.३९) इति तृतीयाया लुक्। प्रतीष्य विचार्य, अन्येषामपीति सांहितिको दीर्घः। असति सद्विलक्षणेऽव्याकृते कारणे निरविन्दन् निष्कृष्यालभन्त। विविच्याजानन्नित्यर्थः। सतो व्यावहारिकसत्तावतः सर्वस्य जगतो बन्धकं हेतुभूतं वा कल्पान्तरीयप्राण्यनुष्ठितं कर्मसमूहं कवयो हृदि निरुद्धया मनीषया बुद्ध्या प्रतीष्य विचार्य असति सद्विलक्षणे अव्याकृते कारणे विविच्य ज्ञातवन्तः। जगतः कारणभूतं प्राणिकर्मसमूहं महाप्रलयदशायां मायोपहिते ब्रह्मण्यन्तर्निलीनं योगिन एव विविच्य ज्ञातुं शक्नुवन्ति, नान्ये। अत्र व्यवहारार्हत्वेन जगतः सत्त्वमुक्तम्। व्यवहारानर्हत्वेन कारणस्याव्याकृतस्यासत्त्वमुक्तम्। प्राणिकर्मसमूहस्य बन्धनहेतुत्वाद् बन्धुत्वमुक्तम्, 'कर्मणा बध्यते जन्तुः' (..., संन्यासोपनिषत्) इति स्मृतेः। सतो जगतः कार्यस्याव्यवहितप्राक्क्षणवर्तित्वेन कारणभूतस्य प्राणिकर्मसमूहस्य कार्यहेतुत्वेन तत्सम्बन्धित्वाद् बन्धुत्वमुक्तम्॥ ४॥

● **भाष्यार्थ** :– इस प्रकार मन्त्र अपने द्वारा प्रतिपादित विषयकी परिपुष्टिमें तत्त्वज्ञमनीषियोंके अनुभवको प्रमाणरूपसे प्रस्तुत करता है— 'सतो बन्धुम्' – सत्स्वरूपसे अनुभवगोचर सम्पूर्ण जगत्का 'बन्धु' – बन्धक अथवा हेतुभूत प्राणियोंके द्वारा अनुष्ठित कल्पान्तरीय कर्मसमूहको अतीत, अनागत और वर्तमानके जानकार क्रान्तदर्शी योगियोंने हृदयमें स्थित बुद्धिसे विचारकर उसे जगत्के निमित्तकारणरूपसे जाना तथा उसे उससे भिन्न जगत्के उपादानकारणभूत अव्याकृतसंज्ञक अव्यक्तात्मक असत्में स्थित जाना। **'मनीषा'** यह पद **'मनीषया'** तृतीयान्त है। **'सुपां सुलुक्'** इस सूत्रसे यहाँ विभक्तिका विलोप हो गया है। **'प्रतीष्या'** (= प्रतीष्य) में दीर्घ छान्दस है। सत्संज्ञक सम्पूर्ण संसारका बन्धक अथवा हेतुभूत प्राणियोंके द्वारा अनुष्ठित किन्तु अभुक्त कर्मसमूहको त्रिकालज्ञ ऋषियोंने असत् संज्ञक अविद्यामें लीन होते हुए भी उससे विविक्त जाना। तात्पर्य्य यह है कि महाप्रलयदशामें मायोपहित ब्रह्ममें अन्तर्निलीन जगत्के कारणभूत मायामें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कालकृत क्षोभका तथा सिसृक्षाका मूल हेतु प्राणियोंद्वारा पूर्वकल्पमें अनुष्ठित किन्तु अभुक्त कर्मसमूह ही है, इस रहस्यको त्रिकालज्ञ योगिवृन्द ही जान सकते हैं, अन्य कोई नहीं। यहाँ व्यवहारार्ह (व्यवहारके योग्य) होनेसे जगत्‌को सत् कहा गया है तथा व्यवहारके अयोग्य होनेसे जगत्कारण मायाको **असत्** कहा गया है। प्राणिकर्मसमूह बन्धनमें हेतु होनेसे बन्धु कहा गया है। **'कर्मणा बध्यते जन्तुः'** – 'जीव कर्मसे बँधता है' यह स्मृति है। अथवा सत् संज्ञक जगदात्मक कार्यप्रपञ्चके अव्यवहित पूर्वक्षणवर्ती कारणभूत प्राणिकर्मसमूह बन्धुतुल्य सहयोगी होनेसे बन्धु है॥ ४॥

● **मन्त्र :–**

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्॥ ५॥

● **भाष्यम् – एवममिद्याकामकर्माणि सृष्टेर्हेतुत्वेनोक्तानि। साम्प्रतं तेषां स्वकार्यजनने शैघ्र्यं प्रतिपाद्यते। नासदासीदित्यादिनाऽविद्या प्रतिपादिता। 'कामस्तदग्रे' इति कामः प्रतिपादितः। 'मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्' इत्यादिना कर्म प्रतिपादितम्। एषामविद्याकामकर्मणां वियदादिप्रपञ्चं सृजतां रश्मिः रश्मिसदृशः कार्यवर्गो वितत आसीत्। यथा सूर्यरश्मिरुदयानन्तरमेव निमेषमात्रेण युगपत्सर्वं जगद् व्याप्नोति, तथा शीघ्रं सर्वत्र व्याप्नुवन् कार्यवर्गो विततो विस्तृत आसीत्। 'विचार्यमाणानाम्' (पा० सू० ८.२.९७) इति प्लुतः। तत्रोदात्त इत्यनुवृत्तेः स चोदात्तः। 'स्वित्' इति वितर्के। स कार्यवर्गः प्रथमतः तिरश्चीनः तिर्यगवस्थितो मध्ये स्थित आसीत् किंवा अधः अधस्तादासीत् आहोस्विदुपरि उपरिष्टात् 'उपरिस्विदासीदिति च' (पा० सू० ८.२.१०२) इत्यनुदात्तः प्लुतः। 'आत्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निः' (तैत्तिरीया० ८.५) इत्यादिपञ्चमीश्रुत्या 'तत उद्गातारं ततो होतारम्' इतिवत् क्रमप्रतिपत्तौ सत्यामपि विद्युत्प्रकाशवत् सर्गस्य शीघ्रव्यापनेन तस्य क्रमस्य दुर्लक्ष्यत्वात् त्रिषु स्थानेषूपर्यधोमध्यस्थानेषु प्राथम्यं कुत्रेति न निर्धारयितुं शक्यते। एवं नाम शीघ्रं सर्वतो दिक्षु सर्गो निष्पन्नः। तदेव विभज्यते। सृष्टेषु कार्येषु मध्ये केचिद् भावा रेतोधाः बीजभूतस्य कर्मणो विधातारः कर्त्तारो भोक्तारश्च जीवा आसन्। अन्ये भावा महिमानः, स्वार्थिक**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इमनिच्, महान्तो वियदादयो भोग्या आसन्। एवं मायासहितः परमेश्वरः सर्वं जगत् सृष्ट्वा स्वयं चानुप्रविश्य भोक्तृभोग्यादिरूपेण विभागं कृतवान्। 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तैत्तिरीया० ८.६) इति श्रुतेः। तत्र च भोक्तृभोग्ययोर्मध्ये स्वधा अन्नं भोग्यप्रपञ्चः, अवस्तात् अवरो निकृष्ट आसीत्। प्रयतिः प्रयतिता भोक्ता परस्तात् पर उत्कृष्ट आसीत्। ईश्वरो भोग्यप्रपञ्चं भोक्तृप्रपञ्चं च कृतवानित्यर्थः। 'विभाषा परावराभ्याम्' (पा० सू० ५.३.२९) इति प्रथमार्थेऽस्तातिः। 'अस्ताति च' (पा० सू० ५.३.४०) इत्यवरशब्दस्यावादेशः। अवस्तादिति संहितायाम् अक्षादित्वात् प्रकृतिभावः।

● **भाष्यार्थ :–** इस प्रकार अविद्याकामकर्म सृष्टिकारणरूपसे कहे गये हैं। सम्प्रति स्वकार्योत्पादनमें शीघ्रताका प्रतिपादन किया जाता है। **'नासदासीत्'** (१) आदिके द्वारा अविद्याका प्रतिपादन किया गया है। **'कामस्तदग्रे'** (४) कहकर कामका प्रतिपादन किया गया है। **'मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्'** (४) आदिकी उक्तिसे कर्म प्रतिपादित किया गया है। आकाशादिकार्यप्रपञ्चका सर्जन करते समय रश्मिसदृश कार्यवर्ग विस्तृत था। अभिप्राय यह है कि जैसे सूर्यरश्मि उदयके अनन्तर ही निमेषमात्रमें (पलक गिरते-गिरते) सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर लेती है, वैसे ही शीघ्र सर्वत्र फैला हुआ कार्यवर्ग विस्तृत था। मन्त्रमें प्लुतत्व, उदात्तत्व आदिका विधान वैदिकव्याकरणके अनुसार होता है। 'स्वित्' शब्द वितर्क (सम्भावना) के अर्थमें प्रयुक्त है। इसका अभिप्राय यह है कि कार्यवर्ग पहले तिरछा अर्थात् मध्यमें स्थित था, किं वा (अथवा क्या) नीचे स्थित था या ऊपर? इसकी सम्भावना इसलिये नहीं की जा सकती क्यों कि यह सब बड़ी शीघ्रतासे सम्पन्न हो गया। **'आत्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः'** (तैत्तिरीयोपनिषत् २.१) – 'आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु समुद्भूत हुआ' इस पञ्चमी श्रुतिसे 'तब उद्गाताको, पुनः होता को' के तुल्य क्रमप्राप्ति सिद्ध होनेपर भी विद्युत्प्रकाशवत् आकाशादिसर्गकि शीघ्र व्यापने (फैलने)से उसका क्रम दुर्लक्ष्य होनेसे मध्य, ऊपर और नीचे इन तीनों स्थानोंमें पहले किसमें सृष्टि हुई, इस तथ्यका निर्धारण सम्भव नहीं। इस प्रकार शीघ्र ही सभी दिशाओंमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टि सम्पन्न हो गयी, इतना ही कहना पर्याप्त है। सृष्टिकार्योंका वर्गीकरण (विभाजन) इस प्रकार है कि सृष्टिकार्योंमें कोई भाव (कोई पदार्थ) **'रेतोधा'** अर्थात् बीजभूत कर्मका विधाता कर्त्ता और भोक्ता जीव था। अन्य भाव महान् आकाशादिसंज्ञक भोग्य थे। **'महिमानः' (महान्तः)** इस पदमें स्वार्थमें इमनिच् प्रत्यय होता है। इस प्रकार मायासहित परमेश्वरने सम्पूर्ण संसारका सर्जनकर और स्वयम् उसमें अनुप्रवेशकर भोक्तृ-भोग्यादिरूपसे विभाग किया। सर्जनानन्तर प्रवेश **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** (८.३) इस तैत्तिरीयारण्यक श्रुतिसे सिद्ध है। उस भोक्तृ-भोग्यप्रपञ्चमें स्वधा अर्थात् अन्नसंज्ञक भोग्यप्रपञ्च अवर अर्थात् निकृष्ट और भोक्ता वर (पर) अर्थात् उत्कृष्ट था। अभिप्राय यह है कि ईश्वरने विभागपूर्वक भोक्तृप्रपञ्च और भोग्यप्रपञ्चको रचा। **'विभाषा....'** आदि पाणनीयसूत्रके अनुसार प्रथमा विभक्तिके अर्थमें अस्तातिप्रत्यय होता है। **'अस्ताति च'** इस सूत्रसे अवरशब्दका अव आदेश होता है। **'अवस्तात्'** यहाँ संहितामें अक्षादिगणमें पठित होनेसे प्रकृतिभाव होता है।

● **भाष्यम्— एषामविद्याकामकर्मणां रश्मितुल्यः कार्यवर्गः सूर्योदयानन्तरं रश्मिरिव विततो युगपदेव सर्वत्र विस्तृतः, तथा च प्रथमतः तिरश्चीनः तिर्यगवस्थितः मध्ये स्थित आसीत्। स्वित् आहोस्वित् अधस्तात् आसीत्। अथवोपरिष्टात् स्थित आसीद् इति वितर्क्यते। आकाशादिसृष्टौ क्रमप्रतिपत्तावपि शैघ्र्यातिशयाद् विद्युत्प्रकाशवत् क्रमस्य दुर्लक्ष्यत्वात् प्राथम्यं क्वेति विचार्यते। तत्र सृष्टेषु कार्येषु रेतोधा बीजभूतस्य कर्मणो धातारः कर्त्तारो जीवा आसन्। अन्ये महिमानो महान्त आकाशादयश्चासन्। एवं परमेश्वरो भोक्तृभोग्यादिरूपेण प्रपञ्चं निर्माय तदनुप्रविश्य भोक्तृभोग्यादिरूपेण विभागं कृतवान्। तयोश्च स्वधा अन्नं भोग्यजातम् अवस्तात् निकृष्टं प्रयतिः प्रयतिता भोक्ता परस्तात् पर उत्कृष्टः। उभयोर्भोक्तृभोग्यभावेन शेषशेषिभावेन शेषिणो भोक्तुरुत्कर्षः, शेषस्य भोग्यस्यापकर्षः। अत्र ऊर्ध्वमूलमधःशाखमित्यत्र कारणत्वाद् व्यापकत्वात् सूक्ष्मत्वात् स्वच्छत्वात् परमात्मन उत्कृष्टत्वाद् ऊर्ध्वत्वम्। कार्यत्वाद् व्याप्यत्वात् स्थूलत्वादस्वच्छत्वाद् महदादिकार्याणामपकृष्टत्वादधःपदवाच्यता, तथैव प्रकृतेऽपि भोग्यत्वात् अन्नापरपर्यायस्य स्वधापदवाच्यस्य भोग्यस्य**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शेषत्वादवरत्वम्। रेतोधातुः कर्मकर्तुर्भोक्तुर्जीवस्य शेषित्वात् परत्वमुत्कृष्टत्वमुक्तम्॥ ५॥

● **भाष्यार्थ :–** उक्त तथ्यको पुनः प्रकारान्तरसे व्यक्त करते हैं। इन अविद्या, काम और कर्मोंका कार्यवर्ग सूर्योदयके अनन्तर रश्मितुल्य युगपत् सर्वत्र विस्तृत हो गया। अत एव पहले यह मध्यमें फैला या नीचे अथ वा ऊपर यह वितर्क उठता है। अभिप्राय यह है कि उक्त पञ्चमी श्रुतिसे आकाशादि-सृष्टिमें क्रम प्राप्त है, तथापि विद्युत् प्रकाशवत् अतिशीघ्र व्यापनेके कारण क्रम दुर्लक्ष्य होनेसे प्रथम अभिव्यक्ति किस दिशामें हुई–ऐसा विचार प्रस्तुत है। सृष्ट पदार्थोंमें बीजभूत कर्मोंका धाता अर्थात् कर्ता जीव था और उनसे अन्य आकाशादि थे। कर्त्ता जीव ही भोक्ता है। आकाशादिप्रपञ्च ही भोग्य है। इस प्रकार परमेश्वरने भोक्तृ-भोग्यप्रपञ्चका निर्माण कर उसमें अनुप्रविष्ट (सामान्य रूपसे पूर्व विद्यमान होनेपर भी विशेषरूपसे प्रविष्ट) होकर भोक्ता और भोग्यका सुस्पष्ट विभाग किया। उनमें स्वधासंज्ञक अन्न तो परार्थ होनेसे अवर था (है) और अन्नादसंज्ञक भोक्ता वर-पर अर्थात् उत्कृष्ट था (है)। अभिप्राय यह है कि जगत् और जीवमें भोग्य-भोक्तृभाव और शेष-शेषिभाव होनेसे अपरार्थ भोक्ता-शेषीका उत्कर्ष है। **'ऊर्ध्वमूलमधःशाखम्'** (भगवद्गीता १५.१) इस भगवद्वचनसे जगत् 'अधः' अर्थात् अपकृष्ट और जगदीश्वर ऊर्ध्व अर्थात् उत्कृष्ट मान्य है। अभिप्राय यह है कि कारण होनेसे, व्यापक होनेसे, सूक्ष्म होनेसे, स्वच्छ होनेसे, निर्विशेष होनेसे, प्रत्यक् होनेसे परमात्मा उत्कृष्ट अत एव ऊर्ध्व है। कार्य होनेसे, व्याप्य होनेसे, स्थूल होनेसे, अस्वच्छ होनेसे, सविशेष होनेसे, पराक् होनेसे महदादि अपकृष्ट हैं; अत एव अधःपदवाच्य हैं। उक्त रीतिसे प्रकृतमें भी अन्नात्मक स्वधापदवाच्य भोग्यवर्ग भोग्य होनेसे शेष है, शेष होनेसे अपर है तथा कर्मकर्त्ता तथा फलोपभोक्ता जीव भोक्ता होनेसे शेषी है, शेषी होनेसे पर अर्थात् उत्कृष्ट है, ऐसा कहा गया है॥ ५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **मन्त्र :–**

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता
कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को
वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥

● **भाष्यम्** – एवं भोक्तृभोग्यरूपेण सृष्टिः संग्रहेणोक्ता। 'एतावद्वा इदं सर्वमन्नं चैवान्नादश्च। सोम एवान्नमग्निरन्नादः' (श० ब्रा० १४।४।२।१३) इतिवत्। अथेदानीं सा सृष्टिर्दुर्विज्ञानेति न विस्तरेणाभिहितेत्याह–को अद्धेति। कः पुरुषः, अद्धा पारमार्थ्येन वेद जानाति? क इह अस्मिंल्लोके प्र वोचत् प्रब्रूयात्, इयं दृश्यमाना विसृष्टिः विविधा भूतभौतिक-भोक्तृभोग्यादिरूपेण बहुप्रकारा सृष्टिः कुतः कारणादुपादानात् कुतः कस्माच्च निमित्तकारणाद् आ जाता समन्तात् प्रादुर्भूता? एतदुभयं सम्यक् को वेद? को वा विस्तरेण वक्तुं शक्नुयाद् इत्यर्थः। ननु देवाः सर्वज्ञास्ते ज्ञास्यन्ति वक्तुं च शक्नुवन्तीत्यत आह–अर्वाग्देवाः, देवाश्चास्य जगतो विसर्जनेन वियदादिभूतोत्पत्त्यनन्तरं यद्विविधं सर्जनं सृष्टिः, तेन अर्वाग् अर्वाचीनाः कृताः भूतसृष्टेः पश्चाज्जाता इत्यर्थः। तथाविधास्ते स्वोत्पत्तेः प्राक्कालीनां सृष्टिं कथं जानीयुः? अजानन्तो वा कथं प्रब्रूयुः। उक्तं दुर्वितर्क्यत्वं निगमयति–अथ एवं सति देवा अपि न जानन्ति किल, तद्व्यतिरिक्तः को नाम मनुष्यादिः, वेद तज्जगत्कारणं जानाति, यतः कारणात् कृत्स्नं जगद् आबभूव अजायत। न कोऽपि तज्जगत्कारणं वेदेत्यर्थः।

● **भाष्यार्थ :–** इस प्रकार भोक्ता और भोग्यरूपसे सृष्टि समास· ·: (संक्षिप्तरीतिसे) कही गयी। जैसे कि शतपथब्राह्मणने 'यह सब अन्न (भोग्य) और अन्नाद (भोक्ता) रूप, इतना ही तो है? सोम (चन्द्र) ही अन्न है और अग्नि ही अन्नाद है' कहकर आधिदैविकरीतिसे अन्न–अन्नादात्मक जगत्को सोमाग्निरूप कहकर समासशैलीमें सृष्टिका प्रतिपादन किया है। अब वह सृष्टि सुगमतापूर्वक समझमें न आनेवाली (दुर्विज्ञेय) होनेके कारण विस्तारपूर्वक नहीं निरूपित की गयी (की जा सकती) इस रहस्यका प्रतिपादन करती हुई श्रुति कहती है–

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'को अद्धा वेद'। कौन पुरुष सृष्टिको यथार्थरूपसे जानता है? इस लोकमें इसे भली-भाँति बता भी कौन सकता है? यह दृश्यमाना भूत-भौतिक, भोग्य-भोक्तृ आदि रूपसे विविध प्रकारकी विसृष्टि किस उपादान और निमित्तकारणसे सब ओरसे अभिव्यक्त हुई—इन दोनों बातोंको भली-भाँति कौन जानता है? अभिप्राय यह है कि कौन इन तथ्योंको विस्तारपूर्वक सुस्पष्ट रीतिसे बता सकता है? ऐसा मानना और कहना भी उपयुक्त नहीं कि देवता तो दिव्यदर्शी सर्वज्ञ होते हैं, वे इसे जान सकते हैं और बता भी सकते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि देवता तो अर्वाचीन हैं। अभिप्राय यह है कि आकाशादि भूतोत्पत्तिके अनन्तर होनेवाली जो विविध सृष्टि है, उसके पश्चात् उत्पन्न किये गये हैं; ऐसे वे अपनी उत्पत्तिके पूर्वकालिक सृष्टिको भला कैसे जान सकते हैं? तात्पर्य्य यह है कि देवता भी अपनी उत्पत्ति और अपनी उत्पत्तिके पूर्वकी सृष्टिको कैसे जान सकते हैं? अपनी उत्पत्तिके पश्चात् होनेवाली सृष्टिको ही जान सकते हैं। तब अपनी उत्पत्तिके पूर्वकी सृष्टिको न जानते हुए भी कैसे कह सकते हैं? उक्त दुर्विज्ञेयत्वका ही श्रुति निरूपण करती है—अब ऐसी स्थितिमें जब कि देवता ही नहीं जानते हैं तो फिर उनके अतिरिक्त प्रज्ञा और प्राणशक्तिमें दुर्बल मनुष्यादि उस जगत्कारणको जान ही कैसे सकते हैं, जिस कारणसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ। कोई भी उस जगत्कारणको नहीं जानता है; ऐसा अभिप्राय है।

● भाष्यम्— इयं दृश्यमाना विसृष्टिः बहुप्रकारा भूतभौतिकभोक्तृभोग्यादिरूपा सृष्टिः कस्माद् उपादानात् कारणात् कस्माच्च निमित्तकारणाज्जायते, एतदुभयं सम्यक् को वेद? कश्च विस्तरेण वक्तुं शक्नुयात्? अस्य जगतो विसर्जनेन वियदादिभूतसृष्ट्यनन्तरं विविधभौतिकसर्जनसृष्टिस्तेन तेषां भौतिकत्वात् तेऽप्यर्वाचीनाः कृताः, भूतसृष्टेः पश्चाज्जाताः। अतो विशिष्टाः सर्वज्ञकल्पा अपि देवाः प्राक्कालीनां सृष्टिं कथं जानीयुः? अजानन्तश्च कथं ब्रूयुः? अतो देवा अपि न जानन्ति यदा तदा तद्भिन्नः कः मनुष्यादिः, यतः कृत्स्नं जगत् आबभूव तज्जगत्कारणं वेद जानाति, न कोऽपि वेदेत्यर्थः॥ ६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **भाष्यार्थ :–** उक्त तथ्यका प्रतिपादन ही शब्दान्तरसे किया जाता है। यह दीखनेवाली विविध प्रकारकी भूत-भौतिक, भोक्तृ-भोग्यादिरूपा सृष्टि किस उपादान और किस निमित्तकारणसे उत्पन्न होती है, इन दोनों बातोंको भलीभाँति कौन जानता है और कौन विस्तारपूर्वक बता ही सकता है? इस आकाशादि भूतप्रपञ्चरूप जगत्की उत्पत्तिके पश्चात् होनेवाली सृष्टिके अन्तर्गत जो भौतिक देहधारी देवगण हैं; वे भी भूतादिकी अपेक्षा नवीन ही उत्पन्न किये गये हैं। ऐसी स्थितिमें सर्वज्ञकल्प विशिष्ट देवगण भी अपनी उत्पत्तिकी पूर्वकालिक सृष्टिको कैसे जान सकते हैं और न जानते हुए भी कैसे कह सकते हैं? अत एव जब देवता भी नहीं जानते तब उनसे भिन्न कौन मनुष्यादि यह सम्पूर्ण जगत् जिस निमित्तोपादानकारणसे उत्पन्न हुआ, उसे जान सकते हैं? कोई भी तो नहीं?॥ ६॥

● **मन्त्र :–**

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा
दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो
अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥ ७॥

● **भाष्यम्–** उक्तप्रकारेण यथेदं सर्जनं दुर्विज्ञानमेवं सृष्टं जगत् दुर्धरमपीत्याह–यत उपादानात् परमात्मन इयं विसृष्टिः विविधा गिरिनदीसमुद्रादिरूपेण विचित्रा सृष्टिः, आबभूव आजाता सोऽपि किल यदि वा दधे धारयति यदि वा न धारयति एवं को नाम अन्यो धर्तुं शक्नुयात्, यदि धारयेदीश्वर एव धारयेन्नान्यः। एतेन कार्यस्य धारयितृत्वप्रतिपादनेन परमात्मन उपादानकारणत्वमुक्तं भवति, निमित्तमात्रस्य कुलालस्येव धारयितृत्वासम्भवात्। 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' (ब्र० सू० १.४.२३) इति बादरायणेन ब्रह्मणः प्रकृतित्वस्यापि प्रतिपादनेनाभिन्ननिमित्तोपादानत्वमुक्तम्। यद्वानेनार्धर्चेन पूर्वोक्तं सृष्टेर्दुर्विज्ञानत्वमेव द्रढयति, को वेदेत्यनुवर्तते, इयं विविधा सृष्टिर्यत आबभूव इति को वेद, न कोऽपीत्यर्थः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

● **भाष्यार्थ :**— उक्त प्रकारसे जैसे यह सर्जन (उत्पत्ति) दुर्विज्ञान है, उसी प्रकार सृष्ट जगत् भी दुर्धर है; इस तथ्यका प्रतिपादन इस सूक्तके सातवें अन्तिम मन्त्रमें किया गया है। जिस उपादानरूप परमात्मासे यह विविध पर्वत, नदी, समुद्रादिरूपसे विचित्र सृष्टि प्रादुर्भूत हुई वह भी क्या इसे धारण करता है, अथ वा नहीं? यदि नहीं, तब तो उसके अतिरिक्त कौन है जो इसे धारण कर सकता है? यदि धारण कर सकता है तो ईश्वर ही, अन्यथा अन्य कोई भी नहीं। कार्यप्रपञ्चके धारकत्व प्रतिपादनरूप इस कथनसे परमात्माका उपादानकारणत्व प्रतिपादित होता है। अभिप्राय यह है कि इस धारकवचनसे परमात्मा जगत्का उपादानकारण सिद्ध होता है। यदि परमेश्वर जगत्का निमित्तकारण मात्र हो तो कुलाल (कुम्भकार) के तुल्य कुम्भादिरूप कार्यप्रपञ्चका धारक कथमपि सिद्ध न हो। अभिप्राय यह है कि परमेश्वरको कुलालतुल्य जगत्का केवल निमित्तमात्र माना जाय तो जगद्धारण असम्भव हो। **'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्'** (ब्र० सू० १.४.२३) इस सूत्रके माध्यमसे श्रीबादरायणके द्वारा ब्रह्मके उपादानत्वका भी प्रतिपादन होनेसे जगत्का ब्रह्मको अभिन्ननिमित्तोपादानकारण कहा गया है। अथवा इस आधी ऋचासे पूर्वोक्त सृष्टिके दुर्विज्ञानत्वको श्रुति दृढ करती है, **'को वेद'** यह पद अनुवृत्त मान्य है। ऐसा माननेपर यह अर्थ प्राप्त होता है कि यह विविधरूपा सृष्टि जिससे आविर्भूत हुई, उसने भी इसे बनाया या नहीं, (कहीं यह उससे स्वतः ही तो उद्भूत नहीं हो गयी) यह कौन जानता है?

● **भाष्यम्— ननु नास्त्येव जगतो जन्म 'न कदाचिदनीदृशं जगत्' इति बहवो वदन्ति, इति चेन्न, प्रकृते जनिकर्तुरेव दुर्ज्ञानत्वप्रतिपादनात्। 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' (पा० सू० १।४।३०) इत्यपादानसंज्ञायां पञ्चम्यास्तसिल्। यस्मात्परमात्मन उपादानभूतात् सर्वं जगद् आबभूव तं परमात्मानं को वेद, न कोऽपीत्यर्थः। प्रकृतितः परमाणुभ्यो वा जगज्जन्मेति बहवो भ्रान्ताः। तथा स एवोपादानभूतः परमात्मा स्वयमेव निमित्तभूतोऽपि। स यदि दधे विदधे इदं जगत्ससर्ज यदि वा न ससर्ज, असन्दिग्धे सन्दिग्धवचनमेतत्, 'यदि वेदाः प्रमाणं स्युः' इतिवत्। स एव विदधे**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तं को वेद। अजानन्तोऽपि बहवो जडात् प्रधानाज्जगज्जातमिति वदन्ति, बहवश्चाकर्तृकमेवेदं जगत् स्वयमजायतेति विपरीतं प्रतिपन्नाः। विदधतो विधानमजानन्तोऽपि विप्रतिपद्यन्ते। स एवोपादानभूत इत्यपि को वेद, न कोऽपीत्यर्थः। उपादानादन्यस्तटस्थ एवेश्वरो विदधे इत्यप्यन्ये वदन्ति। देवा अपि यन्न जानन्ति ततोऽप्यर्वाचीनानामेषां तत्परिज्ञाने कैव कथा?

● **भाष्यार्थ :–** "जगत्का जन्म नहीं ही है 'न कदाचिदनीदृशं जगत्' – 'ऐसा कभी नहीं था कि जगत् ऐसा नहीं था'–" बहुतोंका यह कथन उपयुक्त नहीं है। प्राप्त सन्दर्भमें जगज्जन्मका निषेध अप्राप्त है, जगत्कर्ताके दुर्विज्ञानत्वमात्रका प्रतिपादन प्राप्त है। **'जनिकर्तुः प्रकृतिः' इस पाणिनिसूत्रके अनुसार अपादानसंज्ञा होनेपर यहाँ पञ्चमी विभक्तिका बोधक तसिल् प्रत्यय विहित है। जिस उपादानरूप परमात्मासे सम्पूर्ण जगत् आविर्भूत हुआ उस परमात्माको कौन जानता है, कोई भी तो नहीं। प्रकृतिसे अथ वा परमाणुओंसे जगत्का जन्म हुआ इस प्रकार बहुत-से भ्रान्त हैं। अभिप्राय यह है कि सांख्यवादी और योगी प्रकृतिसे प्रपञ्चोत्पत्ति मानते हैं, जबकि वैशेषिक और नैयायिक पृथ्वी, जल, तेज और वायुसंज्ञक भूतचतुष्टयके परमाणुओंसे जगज्जन्म मानते हैं। इस प्रकार परमात्मासे ही जगज्जन्म न माननेवाले अर्थात् परमात्माको न माननेवाले तथा मानते हुए भी 'जगत्का न केवल निमित्त अपितु उपादान भी' स्वीकार न करनेवाले बहुत-से विचारक भ्रान्त हैं। सांख्यवादी तो प्रकृतिको ही जगत्का निमित्तोपादान मान बैठते हैं। परन्तु श्रुति तो ऐसा मानती है कि वही उपादानभूत परमात्मा स्वयं ही निमित्तभूत भी है। अर्थात् जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण परमात्मा ही है। 'यदि वा दधे यदि वा न'–** 'उसने जगत्को बनाया भी अथवा नहीं?' यह असन्दिग्धमें भी संदिग्ध वचन है। **'यदि वेदाः प्रमाणं स्युः'–** 'यदि वेद प्रमाण हैं' के तुल्य यह तथ्य हृदयंगम करने योग्य है। वस्तुतः उस परमात्माने ही यह जगत् बनाया है; परन्तु उसे कौन जानता है? न जानते हुए भी बहुत (कई) ऐसा कहते हैं कि जड प्रधान (प्रकृति)से जगत् उत्पन्न हुआ। बहुत (कई) ऐसा कहते हैं कि विना कर्त्ताके ही यह जगत् स्वयम् उत्पन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो गया। इस प्रकार जगद्रचना और जगत्कर्त्तांके सम्बन्धमें परस्परविरुद्ध धारणावाले ये महानुभाव हैं। अभिप्राय यह है कि 'वह परमात्मा ही उपादानरूप है' इस तथ्यको भी कौन जानता है? कोई भी तो नहीं। कुछ महानुभाव ऐसा भी कहते हैं कि उपादानसे भिन्न तटस्थ ही वह परमात्मा है। जब देवता भी जिसे नहीं जानते, तब उनसे भी अर्वाचीन (आधुनिक) मनुष्यादि उसके परिज्ञानमें भ्रान्त हैं, इस सम्बन्धमें कहना ही क्या?

● **भाष्यम्— यद्येवं जगत्सृष्टिरत्यन्तमेव दुरवबोधा स्यात्, तदा न प्रमाणपद्धतिमध्यास्त इत्याशङ्क्य तत्सद्भावे ईश्वरमेव प्रमाणयति —योऽस्याध्यक्ष इति। ईश्वरः परमे उत्कृष्टे सत्यभूते व्योमन् व्योम्न्याकाशे आकाशवन्निर्मले स्वप्रकाशे, यद्वा विपूर्वात्तर्पणार्थादवतेः 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' (पा० सू० ३।२।७५) इति मनिन्प्रत्यये 'नेड्वशि कृति' (पा० सू० ७।२।८) इतीण्निषेधे 'ज्वरत्वर०' (पा० सू० ६।४।२०) इत्यादिना वकारोपधयोरूठि सप्तम्या लुकि च व्योमन्निति। तथा च व्योमनि विशेषेण तृप्ते निरतिशयानन्दस्वरूप इत्यर्थः। यद्वा गत्यर्थादवतेः, व्योमनि विशेषेण गते व्याप्ते देशकालवस्तुभिरपरिच्छिन्ने, ज्ञानार्थाद्वावतेः, विशेषेण ज्ञातरि विशिष्टज्ञानात्मनि ईदृशे स्वात्मनि प्रतिष्ठितः, 'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि' (छा० उ० ७।२४।१) इति श्रुत्यन्तरात्। ईदृशो यः परमेश्वरः सोऽङ्ग वेद। अङ्गेति सम्बोधने प्रसिद्धौ च। सोऽपि नाम वेद जानाति यदि वा न वेद न जानाति, को नामाऽन्यो जानीयात्। सर्वज्ञ ईश्वर एव तां सृष्टिं जानीयाद् नान्यः इत्यर्थः। यथा—'वयं ब्राह्मणा वा अब्राह्मणा वा' इत्यत्र न संशयप्रतिपादनम्, ब्राह्मणानिश्चये कर्मण्यनधिकारप्रसङ्गात्, किन्तु प्रवरानुमन्त्रणमन्त्रेण ब्राह्मण्यप्राप्तिप्रशंसायामेव तात्पर्यम्, यथा वा 'को हि तद्वेद यद्यमुष्मिँल्लोकेऽस्ति वा न वा' (तै० सं० ६।१।१।१) इत्यत्र न परलोकसंशयः प्रतिपिपादयिषितः, तथात्वेऽतीकाशादिविधानवैयर्थ्यापातात्। किन्तु 'दिक्ष्वतीकाशान् करोति' (तै० सं० ६।१।१।१) इत्यतीकाशविधानार्थवादेन तत्प्रशंसनमेव, अतीकाशाभावे धूमोपद्रवेणैव मरणं सम्भाव्यते, परलोककथां को वेद, अतस्तत्परिहारार्थमतीकाशानवश्यं कुर्यादित्यर्थः, तथैव प्रकृते**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टेः परमात्मनश्च दुर्ज्ञानत्वबोधनायैव वेदनावेदनविकल्पोपन्यासः, वस्तुतन्त्रे ज्ञाने विकल्पासम्भवात्। 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' (मुण्डकोप० १।१।९) इति श्रुत्या परमात्मनः सामान्यविशेषाभ्यां सर्वज्ञत्वं सर्ववित्त्वं चोक्तम्। स एव विविधवैचित्र्योपेतामनन्तानन्तब्रह्माण्डतद्भोक्तृतत्कर्मादि-विशिष्टां सृष्टिं वेद नान्ये प्रकृतिपरमाण्वादयो देवादिजीवा वा, जडत्वादसर्वज्ञत्वाच्च। विश्वविधातारं परमात्मानं तु सर्वद्रष्टृरूपत्वाद्, नान्यो जानाति, द्रष्टुर्द्रष्टव्यविषयत्वात्। प्रत्यक्चैतन्याभिन्नत्वेन स्वात्मरूपेणैव तज्ज्ञानम्, तटस्थस्यापरोक्षत्वासम्भवात्। मनोवचनातीतत्वाद्वा दुर्ज्ञानत्वम्, 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' (तै० उ० २।४।१) इति श्रुतेः। लक्षणया वृत्तिव्याप्त्या ज्ञेयत्वेऽप्यभिधया फलव्याप्त्याऽव्याप्यत्वाच्च दुर्ज्ञानत्वम्॥ ७॥

● **भाष्यार्थः**— यदि इस प्रकार जगत्की सृष्टि (रचना) अत्यन्त ही दुरवगम (दुर्बोध) हो तो उसके जाननेके लिये कोई प्रमाणपद्धति ही शेष न रहे, ऐसी आशंका करके जगद्रचनाके सम्बन्धमें स्वयम् ईश्वरको ही प्रमाणरूपसे श्रुति प्रस्तुत करती है— **'योऽस्याध्यक्षः'**— अभिप्राय यह है कि ईश्वर जो कि भूत-भौतिक प्रपञ्चसहित प्रपञ्चोपादान मायाका भी अध्यक्ष है, वह परमव्योमरूप परम सत्य और व्यापक तथा आकाशतुल्य निर्मल अर्थात् स्वप्रकाश है, वह अपने चिद्व्योमात्मक स्वरूपमें स्थिति लाभकर अर्थात् किसी अन्यके समाश्रित और अन्यसे प्रकाशित न होकर स्थित है, वही सृष्टिरहस्यका प्रकाशक है। विपूर्वक तर्पणार्थक 'अव्' धातुसे मनिन् प्रत्यय होनेपर, इट्का निषेध होनेपर, ऊठ् एवं सप्तमीका लुक् होनेपर 'व्योमन्' पद बनता है, जिसका अर्थ है विशेषरूपसे तृप्त, निरतिशयानन्दस्वरूप। गत्यर्थक अव् धातुसे इसी प्रक्रियासे 'व्योमन्' पद बनानेपर अर्थ होगा आकाशमें विशेषरूपसे व्याप्त अर्थात् देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न। ज्ञानार्थक अव् धातुसे व्योमन् पद बनानेपर विशेषरूपसे ज्ञानात्मक आत्मामें प्रतिष्ठित अर्थ होता है। 'हे भगवन्! वह किसमें प्रतिष्ठित है?', 'अपनी महिमामें' इस तरह प्रश्न - प्रतिवचनात्मक छान्दोग्यश्रुतिमें इसी अर्थका प्रतिपादन हुआ है। **'अङ्ग वेद यदि वा न वेद'** में अङ्गशब्द सम्बोधन और प्रसिद्धिके अर्थमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रयुक्त हुआ है। उक्तलक्षणलक्षित परमेश्वर भी इस भूत-भौतिकरूप विसृष्टिको जानता है अथवा नहीं, फिर अन्य कौन ऐसा है जो इसे जान सके? अभिप्राय यह है कि सर्वज्ञ ईश्वर ही इस सृष्टिको जान सकता है, अन्य कोई नहीं। ब्राह्मणका अनिश्चय रहनेपर ब्राह्मणोपयुक्त कर्मोंमें अनधिकार होनेसे जैसे 'हम ब्राह्मण हैं अथ वा अब्राह्मण?' यहाँ संशयका प्रतिपादन नहीं है, किन्तु प्रवरानुमन्त्रणमन्त्रसे जो ब्राह्मण्यकी प्राप्ति होती है, उसकी प्रशंसामें उक्त वचनका तात्पर्य्य मान्य है। इसी प्रकार 'यह कौन जानता है कि परलोक है भी या नहीं?' इस वाक्यका परलोकमें संशय उत्पन्न करनेमें तात्पर्य्य नहीं है; क्योंकि ऐसी स्थितिमें अतीकाशका विधान व्यर्थ हो जायगा। वस्तुस्थिति- यह है कि अतीकाशके विधायक अर्थवादसे उसकी प्रशंसामें तात्पर्य्य है। अतीकाशका विधान न करनेपर धूमके उपद्रवसे यहीं मृत्यु होनेसे परलोककी स्थिति कहाँ रह जायगी? इसलिये इस विषम परिस्थितिका जिससे कि परलोककी स्थिति ही संशयमें पड़ जाती है, परिहार करनेके लिये दिशाओंमें अतीकाशका विधान अवश्य करना चाहिये—यही इस वाक्यका तात्पर्य्य सिद्ध होता है। उसी प्रकार प्राप्त प्रसङ्गमें भी क्योंकि वस्तुतन्त्रात्मक ज्ञानमें विकल्प सम्भव नहीं है; अतएव सृष्टि और परमात्माके दुर्ज्ञानत्वके बोधनके लिये ही 'जानता है अथवा नहीं जानता है' इस वेदन-अवेदनरूप विकल्पका न्यास (प्रस्थापन) किया गया है। 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इस मुण्डकश्रुतिके अनुसार परमात्माके सामान्य और विशेष रीतिसे सर्वज्ञत्व और सर्ववित्त्वका प्रतिपादन किया गया है। सर्वज्ञ और सर्ववित् परमेश्वर ही विविध विचित्रताओंसे सम्पन्न अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड, उनके भोक्ता और उन भोक्ताओंके कर्मोंसे संवलित सृष्टिको जान सकता है; न कि प्रकृतिपरमाण्वादि जडप्रपञ्च और देवादि असर्वज्ञ जीव उसे जान सकते हैं। सर्वद्रष्टृरूप अर्थात् सर्वद्रष्टा होनेसे तथा द्रष्टाकी दृष्टिगोचरता असम्भव होनेसे विश्वविधाता परमात्माको अन्य कोई नहीं जानता। प्रत्यक्चैतन्याभिन्नरूपसे अर्थात् आत्मरूपसे ही उसका ज्ञान सम्भव है; क्योंकि श्रुति उसे साक्षादपरोक्ष कहती है। तटस्थ (अपनेसे भिन्न) का अपरोक्षत्व असम्भव है; अतः प्रत्यगात्मस्वरूपसे ही उसका अधिगम सम्भव है। अथ वा 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सह' इस तैत्तिरीयोपनिषत्के अनुसार मनोवचनातीत होनेसे परमेश्वरको दुर्विज्ञेय माना गया है; अतएव अभिन्ननिमित्तोपादानरूपसे उसका निश्चय अशक्य माना गया है। अभिप्राय यह है कि परमात्मा लक्षणा और वृत्तिव्याप्तिसे ज्ञेय होनेपर भी अभिधा और फलव्याप्तिसे अविषय (अव्याप्य) होनेसे दुर्विज्ञेय कहा गया है॥ ७॥

नासदीयसूक्तहरिहरप्रकाशिकाटीकान्तर्गत—
परिशिष्टभागस्थश्रीकरपात्रभाष्यम्
सम्पूर्णम्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

नासदीयसूक्तम्

परिशिष्टम् ● श्रीसायणभाष्यम्

एकादशेऽनुवाके त्रयोविंशतिसंख्याकानि सूक्तानि। तत्र **'नासदासीत्'** इति सप्तर्चं प्रथमं सूक्तं त्रैष्टुभम्। परमेष्ठी नाम प्रजापतिर्ऋषिः। वियदादिभावानां सृष्टिस्थितिप्रलयादीनामत्र प्रतिपाद्यत्वात् तेषां[1] कर्ता परमात्मा देवता। तथा चानुक्रान्तं— **'नासत्सप्त प्रजापतिः परमेष्ठी भाववृत्तं तु'** इति। गतो विनियोगः॥

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥ १॥

न। असत्। आसीत्। नो इति। सत्। आसीत्। तदानीम्।
न। आसीत्। रजः। नो इति। विऽओम। परः। यत्।
किम्। आ। अवरीवरिति। कुह। कस्य। शर्मन्। अम्भः। किम्।
आसीत्। गहनम्। गभीरम्॥ १॥

'तपसस्तन्महिनाजायतैकम्' इत्यादिनाग्रे सृष्टिः प्रतिपादयिष्यते। अधुना ततः प्रागवस्था निरस्तसमस्तप्रपञ्चा या प्रलयावस्था सा निरूप्यते। v **तदानीं** प्रलयदशायामवस्थितं यदस्य जगतो मूलकारणं तत् v **असत्** शशविषाणवन्निरुपाख्यं v**न** v**आसीत्।** न हि तादृशात् कारणादस्य सतो जगत उत्पत्तिः संभवति। तथा v**नो** v**सत्** नैव सदात्मवत् सत्त्वेन निर्वाच्यम् v**आसीत्।** यद्यपि सदसदात्मकं प्रत्येकं विलक्षणं भवति तथापि भावाभावयोः सहावस्थानमपि[2] संभवति। कुतस्तयोः तादात्म्यमिति उभयविलक्षणमनिर्वाच्यमेवासीदित्यर्थः। ननु नो सदिति पारमार्थिकसत्त्वस्य निषेधः। तर्ह्यात्मनोऽप्यनिर्वाच्यत्वप्रसङ्गः। अथोच्येत। न[3]। आनीदवातमिति तस्य सत्त्वमग्रे वक्ष्यते, परिशेषान्मायाया एवात्र सत्त्वं निषिध्यत इति। एवमपि तदानीमिति विशेषणानर्थक्यं

१. त१.२.३.६.७-भ-एषां। २. ग-त-भ२.५—सद्भावावस्थानमपि।
३. ग-त१.२.३.६.७.८-भ-'न' नास्ति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यवहारदशायामपि तस्याः पारमार्थिकसत्त्वाभावात्[1]। अथ व्यावहारिकसतां पृथिव्यादीनां भावानां[2] विद्यमानत्वात् कथं नो सदिति निषेधः। तत्राह। √नासीद्रज इत्यादि। 'लोका रजांस्युच्यन्ते' (निरु० ४.१९) इति यास्कः। अत्र च सामान्यापेक्षमेकवचनम्। व्योम्नो वक्ष्यमाणत्वात्तस्याधस्तनाः पातालादयः पृथिव्यन्ता नासन्नित्यर्थः। तथा √**व्योम** अन्तरिक्षं तदपि √**नो** नैवासीत्। पर इति सकारान्तं परस्तादित्यर्थे वर्तते। परशब्दाच्छान्दसोऽस्तातेरर्थेऽसिप्रत्ययः। √**परः** व्योम्नः परस्तादुपरिदेशे द्युलोकप्रभृतिसत्यलोकान्तं √**यत्** अस्ति तदपि नासीदित्यर्थः। अनेन चतुर्दशभुवनगर्भं ब्रह्माण्डं स्वरूपेण निषिद्धं भवति। अथ तदावरकत्वेन[3] पुराणेषु प्रसिद्धानि यानि वियदादिभूतानि तेषामवस्थानप्रदेशं तदावरणनिमित्तं चाक्षेपमुखेन क्रमेण निषेधयति किमावरीवरिति। √**किम्** आवरणीयं तत्त्वमावरकभूतजातम् √ **आवरीवः**। अत्यन्तमावृणुयात्। आवार्याभावात् तदावरकमपि[4] नासीदित्यर्थः॥ वृणोतेर्यङ्लुगन्ताच्छान्दसे लङि तिपि रूपमेतत्॥ यद्वा। किमिति प्रथमैव। किं तत्त्वमावरकमावृणुयात्। आव्रियमाणवत्तदपि स्वरूपेण नासीदित्यर्थः। आवृण्वत् तत्तत्त्वं √**कुह** कुत्र देशेऽवस्थायावृणोति। आधारभूतस्तादृशो देशोऽपि नासीदित्यर्थः॥ किंशब्दात् सप्तम्यर्थे हप्रत्ययः। 'कु तिहोः' (पा० सू० ७.२.१०४) इति प्रकृतेः क्वादेशः॥ √ **कस्य** √**शर्मन्** कस्य वा भोक्तुर्जीवस्य शर्मणि[5] सुखदुःखसाक्षात्कारलक्षणे भोगे निमित्तभूते सति तदावरकं तत्त्वमावृणुयात्। जीवानामुपभोगार्था हि सृष्टिः। तस्यां हि सत्यां ब्रह्माण्डस्य भूतैरावरणं प्रलयदशायां च भोक्तारो जीवा उपाधिविलयात् प्रलीना[6] इति कस्य[7] कश्चिदपि भोक्ता[8] न संभवतीत्यावरणस्य निमित्ताभावादपि तन्न घटत इत्यर्थः। एतेन भोग्यप्रपञ्चवत् भोक्तृप्रपञ्चोऽपि तदानीं नासीदित्युक्तं भवति॥ किंशब्दादुत्तरस्य ङसः 'सावेकाचः०' इति प्राप्तस्योदात्तत्वस्य[9] 'न गोश्वन्साववर्ण०' इति प्रतिषेधः। 'सुपां सुलुक्०' इति शर्मणः सप्तम्या लुक्॥ यद्यपि सावरणस्य ब्रह्माण्डस्य निषेधेन तदन्तर्गतमप्सत्त्वमपि[10] निराकृतं तथापि

---

१. त-सत्त्वाभावात् इति तु न प्रलयदशाया एव वर्णनीयत्वेन तदुपादानौचित्यात् तदानीमपि तत्सत्त्वेन तदबाधात्। २. त१.३-भावानां तदपि; त७-भावानां तदपि। ३. ग-त१.२.३.६.७.८-भ-तदावरणत्वेन; त४.५-तदावरत्वेन। ४. त२.७-भ२.४.८ -तद्रक्षकमपि; त३.८-भ५-तद्रक्षकमपि; त६-ततक्षकमपि। ५. त१.३.७-भ२.८-मु-शर्मणि सुखे। ६. ग-त१.२.३.६.७.८-भ-मु-प्रविलीना। ७. ग-कस्यचिदपि भागो; त१.७-भ२.४. ८. कस्यचिदपि भोगो; त२.३.६.८-कांस्यंचिदपि भोगो। ९. ग-त४.५-भ२ प्राप्तस्योदात्तस्य; त१.२.३.६.७.८-भ-मु-प्राप्तस्य। १०. त१.२.६.७-भ२.८-मप्तत्त्वमपि; त४-°महत्त्वमपि; त५-°माप्राप्तत्वमपि; त८-भ२-°मतत्त्वमपि; भ४.७-°मसत्त्वमपि।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्' (तै० सं० ७.१.५.१) इति श्रुत्या कश्चिदपां सद्भावमाशङ्केत। तं प्रत्याचष्टे अम्भः किमासीत् इति। v **गहनं** दुष्प्रवेशं v **गभीरं** दुरवस्थानमत्यगाधम् ईदृशम् v **अम्भः** v **किमासीत्** । तदपि नैवासीदित्यर्थः। श्रुतिस्त्ववान्तरप्रलयविषया॥ १॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥ २॥

न। मृत्युः। आसीत्। अमृतम्। न। तर्हि। न। रात्र्याः। अह्नः।
आसीत्। प्रऽकेतः। आनीत्। अवातम्। स्वधया। तत्। एकम्।
तस्मात्। ह। अन्यत्। न। परः। किम्। चन। आस॥ २॥

ननूक्तस्य प्रतिसंहारस्य संहर्त्रपेक्षत्वात् स एव संहर्ता मृत्युर्विद्यत इत्यत आह v**न** v**मृत्युरासीत्** इति। ननु यदि स नासीत् तर्हि तदभावकृतम् v**अमृतम्** अमरणं प्राणिनामवस्थानं तदानीमपि स्यात् तत्राह। v**अमृतं** v**न** v**तर्हि** इति। तर्हि तस्मिन् प्रतिहारसमये। अयं भावः। सर्वेषां प्राणिनां परिपक्वं भोगहेतुभूतं सर्वं कर्म यदोपभुक्तमासीत् तदा भोगाभावान्निष्प्रयोजनमिदं जगदिति परमेश्वरस्य मनसि संजिहीर्षा जायते। तथैव स मृत्युः[1] सर्वं जगत् संहरत[2] इति किमनेन मृत्युना संहर्त्रा तदभावकृतं वा कथममरणं स्यादिति। एतदेवाभिप्रेत्य कठैराम्नायते–'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः। मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः' (क० उ० १.२.२५) इति। नन्वेतस्य सर्वस्याधिकरणभूतः कालो विद्यत इत्यत आह न रात्र्या इति। v **रात्र्याः** v **अह्नः** च v **प्रकेतः** प्रज्ञानं v **न** v **आसीत्**। तद्धेतुभूतयोः सूर्याचन्द्रमसोरभावात्। एतेनाहोरात्रनिषेधेन तदात्मको मासर्तुसंवत्सरप्रभृतिकः सर्वः कालः प्रत्याख्यातः। कथं तर्हि नो सदासीत्तदानीमिति कालवाची प्रत्ययः। उपचारादिति ब्रूमः। यथेदानींतननिषेधस्य कालोऽवच्छेदकस्तथा मायापि तदवच्छेदहेतुरित्यवच्छेदकत्वसाम्येनाकालेऽपि कालवाची प्रत्ययः। यदवादिष्म ब्रह्मणः परमार्थसत्त्वमग्रे वक्ष्यत इति तदिदानीं दर्शयत्यानीदिति। v**तत्** सकलवेदान्तप्रसिद्धं ब्रह्मतत्त्वम् v **आनीत्** प्राणितवत्। नन्वेवं प्राणनकर्तुर्जीवभावापन्नस्यैव ब्रह्मणः सत्त्वं स्यात् न विवक्षितस्य निरुपाधिकस्य ब्रह्मणः। 'अप्राणो ह्यमनाः शुद्धः' (मु० २.१.२) इति तस्य प्राणसंबन्धाभावात् तत्राह v **आनीदवातमिति।**

१. त१.२.३.४.५.६.८-भ२.८-मृत्युत्वं; भ४-मृत्यकं; मृत्युदकं।
२. १.२.३.६.७.८-भ-संह्रियते; त४.५-संहृत।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अयमाशयः। आनीदित्यत्र धात्वर्थक्रिया तत्कर्ता तस्य च भूतकालसंबन्ध इति त्रयोऽर्थाः प्रतीयन्ते। तत्र समुदायो न विधीयते यथाग्नेयोऽष्टाकपाल इति येन ब्रह्मणः सत्त्वं न स्यात्। किं तर्ह्यनेन कर्तृत्वमनूद्य भूतकालसत्तालक्षणो गुणो विधीयते दध्ना[1] जुहोतीति वाक्यान्तरविहिताग्निहोत्रानुवादेन तत्र गुणविधानम्। तत्राप्यनेन कर्तृत्वविशिष्टस्य न पूर्वकालसत्ता विधीयते[2] तन्निषेधानुपपत्तिप्रसङ्गात् अतोऽनेन कर्तृत्वेन इदानींतनेनोपलक्षितं यन्निरुपाधिकं परं ब्रह्म तस्यैव भूतकालसत्ता विधीयत इति न कश्चिद्दोष इति। नन्वीदृशस्य ब्रह्मणो मायया सह संबन्धासंभवात् सांख्याभिमता स्वतन्त्रा सद्रूपा सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका मूलप्रकृतिरेवाभिमतेति कथं[3] नो सदिति निषेधः। तत्राह v **स्वधया** इति। स्वस्मिन् धीयते ध्रियत आश्रित्य वर्तत इति स्वधा माया। तया तद्ब्रह्मैकमविभागापन्नमासीत्। 'सहयुक्तेऽप्रधाने' (पा० सू० २.३.१९) इति तृतीया सहशब्दयोगाभावेऽपि सहार्थयोगे भवति 'वृद्धो यूना०' (पा० सू० १.२.६५) इति निपातनाल्लिङ्गात्। अत्र प्रकृतिप्रत्ययाभ्यां तस्याः स्वातन्त्र्यं निवार्यते। यद्यपि असङ्गस्य ब्रह्मणस्तया सह संबन्धो न संभवति तथापि तस्मिन्नविद्यया तत्स्वरूपमिव संबन्धोऽप्यध्यस्यते यथा शुक्तिकायां रजतस्य। एतेन सद्रूपत्वमपि तस्याः प्रत्याख्यातम्। ननु यदि माया ब्रह्मणा सहाविभागापन्ना तर्हि तस्या अनिर्वाच्यत्वात् ब्रह्मणोऽपि तत्प्रसङ्ग इति कथं तस्य सत्त्वमुक्तम् आनीदवातमिति। ब्रह्मणो वा सत्त्वात्तस्या अपि सत्त्वप्रसङ्ग इति कथं नो सदासीदिति सत्त्वप्रतिषेधः। मैवम्। अयुक्तिदृष्टचैक्यावभासेऽपि[4] युक्त्या विविच्य मायांशस्यानिर्वाच्यत्वं ब्रह्मणः सत्त्वं च प्रतिपादितम्। ननु दृग्दृश्याविति द्वावेव पदार्थौ आनीदवातं स्वधयेति तौ चेदङ्गीक्रियेते तत्किमपरमवशिष्यते यत् नासीद्रजः इत्यादिना प्रतिषिध्येत तत्राह तस्मादिति। v **तस्माद्ध** तस्मात् खलु पूर्वोक्तान्मायासहितात् ब्रह्मणः v **अन्यत्** v **किं** v **चन** किमपि वस्तु भूतभौतिकात्मकं जगत् v **न** v **आस** न बभूव॥ 'छन्दस्युभयथा' इति लिटः सार्वधातुकत्वादस्तेर्भूभावाभावः॥ ननु तदानीमन्यस्य सत्त्वनिषेधो न शङ्क्यः। असत्त्वे चाप्रसक्तत्वान्न[5] निषेधोपयोग इत्यत आह पर इति। v **परः** परस्तात् सृष्टेरूर्ध्वं वर्तमानमिदं जगत् तदानीं न बभूवेत्यर्थः। अन्यथा उक्तरीत्या[6] क्वचिदपि निषेधो न स्यादिति भावः॥ २॥

---

१. भ२-यया दध्ना। २. त-भ-विधीयते वा। ३. त२.३.७.८-भ४.५.७.८-किं। ४. त१७-भ२.५-मु-अनुभवदृष्ट्या ऐक्यावभासेऽपि; त२.३.६.८-भ८-अनुभवदृष्ट्या ऐक्यावभावेपि; त४.५-आयुक्तिवत् दृष्ट्या ऐक्यावभासेपि; भ७-अनुभवदृष्ट्या ऐक्याभावेपि। ५. त४.५-एव प्रेरकत्वान्न। ६. त-भ-उक्तनीत्या।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळहमग्रे॑ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम्।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॒त्तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑य॒तैक॑म्॥ ३॥

तम॑ः। आ॒सी॒त्। तम॑सा। गू॒ळ्हम्। अग्रे॑। अ॒प्र॒ऽके॒तम्। स॒लि॒लम्। सर्व॑म्। आः। इ॒दम्।
तु॒च्छ्येन॑। आ॒भु। अपि॑ऽहितम्। यत्। आसी॑त्। तप॑सः। तत्। म॒हि॒ना। अ॒जा॒य॒त। एक॑म्॥ ३॥

ननूक्तप्रकारेण यदि पूर्वमिदं जगन्नासीत् कथं तर्हि तस्य जन्म। जायमानस्य जनिक्रियायां कर्तृत्वेन कारकत्वात् कारकं च कारणावान्तरविशेष इति कारकस्य सतो नियतपूर्वक्षणवर्तित्वस्य अवश्यंभावात्। अथैतद्दोषपरिजिहीर्षया जनिक्रियायाः प्रागपि तद्विद्यत इत्युच्यते[1]। कथं तस्य जन्म। अत आह तमसा गूळहमग्रे इति। v**अग्रे** सृष्टेः प्राक् प्रलयदशायां भूतभौतिकं सर्वं जगत् v**तमसा** v**गूळहम्**। यथा नैशं तमः सर्वपदार्थजातमावृणोति तद्वत्। आत्मतत्त्वस्यावरकत्वान्मायापरसंज्ञं भावरूपाज्ञानमत्र तम इत्युच्यते। तेन तमसा निगूढं संवृतं कारणभूतेन तेनाच्छादितं भवति। आच्छादकात् तस्मात्तमसो नामरूपाभ्यां यदाविर्भवनं तदेव तस्य जन्मेत्युच्यते। एतेन कारणावस्थायामसदेव कार्यमुत्पद्यते इत्यसद्वादिनोऽसत्कार्यवादिनो ये मन्यन्ते ते प्रत्याख्याताः। ननु कारणे तमसि तज्जगदात्मकं कार्यं विद्यते चेत् कथं नासीद्रज इत्यादिनिषेधः[2]। तत्राह v**तम** v**आसीत्** इति। तमो भावरूपाज्ञानं मूलकारणम्। तद्रूपता तदात्मनाम्। यतः सर्वं जगत् प्राक् तम आसीदतो निषिध्यत इत्यर्थः। नन्वावरकत्वादावरकं तमः कर्तृ आवार्यत्वाज्जगत्कर्म। कथं तयोः कर्मकर्त्रोस्तादात्म्यम्। तत्राह अप्रकेतमिति। v**अप्रकेतम्** अप्रज्ञायमानम्। अयमर्थः। यद्यपि जगतस्तमसश्च कर्मकर्तृभावो यौक्तिको विद्यते तथापि व्यवहारदशायामिव तस्यां दशायां नामरूपाभ्यां विस्पष्टं न ज्ञायत इति तादात्म्यवर्णनम्॥अत एव मनुना स्मर्यते–'आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः' (मनु. १.५) इति। कुतो वा न प्रज्ञायते तत्राह। v**सलिलम्**। 'षल गतौ'। औणादिक इलच्। v**इदं** दृश्यमानं v**सर्वं** जगत् सलिलं कारणेन संगतमविभागापन्नम् v**आः** आसीत्। अस्तेर्लङि तिपि 'बहुलं छन्दसि' इतीडभावे हल्ङ्याब्भ्यः' इति तिलोपे 'तिप्यनस्तेः' (पा० सू०

१. त-इत्युच्येत। २. त४.५.भ२-इत्यादिना तन्निषेधः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८.२.७३) इति पर्युदासाद्द्काराभावः। यद्वा सलिलमिति लुप्तोपमम्। सलिलमिव। यथा क्षीरेणाविभागापन्नं नीरं दुर्विज्ञानं तथा तमसाविभागापन्नं जगन्न शक्यविज्ञानमित्यर्थः। ननु विविधविचित्ररूपभूयसः[1] प्रपञ्चस्य कथमतितुच्छेन तमसा क्षीरेण नीरस्येवाभिभवः। तथा तमोऽपि क्षीरवद्बलवदित्येवोच्यते। तर्हि दुर्बलस्य जगतः सर्गसमयेऽपि नोद्भवसंभव इत्यत आह तुच्छचेन इति। आ समन्ताद्भवतीति v**आभु** v**तुच्छ्येन**। छान्दसो यकारोपजनः। तुच्छेन तुच्छकल्पनेन सदसद्विलक्षणेन भावरूपाज्ञानेन v**अपिहितं** छादितम् v**आसीत्**। दधातेः कर्मणि निष्ठा। दधातेर्हि। 'गतिरनन्तरः' इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम्। v**एकम्** एकीभूतं कारणेन तमसाविभागतां प्राप्तमपि तत्कार्यजातं v**तपसः** स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपस्य[2] v**महिना** माहात्म्येन v**अजायत** उत्पन्नम्। तपसः स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपत्वं[2] चान्यत्राम्नायते– 'यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः' (मु० उ० १.१.९) इति॥ ३॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥ ४॥

कामः। तत्। अग्रे। सम्। अवर्तत। अधि। मनसः। रेतः। प्रथमम्। यत्। आसीत्। सतः। बन्धुम्। असति। निः। अविन्दन्। हृदि। प्रतिऽइष्य। कवयः। मनीषा॥ ४॥

ननूक्तरीत्या यदीश्वरस्य पर्यालोचनं जगतः पुनरुत्पत्तौ कारणं तदेव[3] किंनिबन्धनमित्यत आह कामस्तदग्र इति। v**अग्रे** अस्य विकारजातस्य सृष्टेः प्रागवस्थायां परमेश्वरस्य मनसि v**कामः** v**समवर्तत** सम्यगजायत। सिसृक्षा जातेत्यर्थः। ईश्वरस्य सिसृक्षा वा किंहेतुकेत्यत आह मनस इति। v**मनसः** अन्तःकरणस्य संबन्धि वासनाशेषेण मायायां विलीनेऽन्तःकरणे समवेतम्। सामान्यापेक्षमेकवचनम्। सर्वप्राण्यन्तःकरणेषु समवेतमित्यर्थः। एतेनात्मनो गुणाधारत्वं प्रत्याख्यातम्। तादृशं v **रेतः** भाविनः प्रपञ्चस्य बीजभूतं v**प्रथमम्** अतीते कल्पे प्राणिभिः कृतं पुण्यात्मकं[4] कर्म v**यत्** यतः कारणात्

१. त-भ२.४.८-विविधविचित्रभूयसः। २. त१.२.६.७-भ५-यत्पर्यालोचनरूपत्वं परमेश्वरस्य तपः तस्य महिना महिम्ना महत्वेन। छांदसो वर्णलोपः। अजायत तस्मात्तमोरूपात् कारणात् पुनः प्रादुरासीत्। परमेश्वरस्य तपसः स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपत्वं; त३.४.५.८-भ२.४.८-यत् पर्यालोचनरूपत्वं। ३. त-भ-तदेव वा। ४. भ२-पुण्यापुण्यात्मकं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टिसमये v **आसीत्** अभवत्। भूष्णु वर्धिष्णवजायत परिपक्वं सत् फलोन्मुखमासीदित्यर्थः। तत्ततो हेतोः फलप्रदस्य सर्वसाक्षिणः कर्माध्यक्षस्य परमेश्वरस्य मनसि सिसृक्षा अजायतेत्यर्थः। तस्यां च जातायां स्रष्टव्यं पर्यालोच्य ततः सर्वं जगत् सृजति। तथा चाम्नायते— 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत यदिदं किंच' (तै० आ० ८.६) इति श्रुतिः। आत्मनेत्थमवगमितेऽर्थे विद्वदनुभवमप्यनुग्राहकत्वेन प्रमाणयति सत इति। v **सतः** सत्त्वेन इदानीमनुभूयमानस्य सर्वस्य जगतः v **बन्धुं** बन्धकं हेतुभूतं कल्पान्तरे प्राण्यनुष्ठितं कर्मसमूहं v **कवयः** क्रान्तदर्शिनः अतीतानागतवर्तमानाभिज्ञा योगिनः v **हृदि** हृदये निरुद्धया v **मनीषा** मनीषया बुद्ध्या। 'सुपांसुलुक्०' इति तृतीयाया लुक्। v **प्रतीष्य** विचार्य। 'अन्येषामपि०' इति सांहितिको दीर्घः। v **असति** सद्विलक्षणेऽव्याकृते कारणे v **निरविन्दन्** निष्कृष्यालभन्त। विविच्याजानन्नित्यर्थः ॥ ४॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ ५॥

तिरश्चीनः। विऽततः। रश्मिः। एषाम्। अधः। स्वित्। आसी३त्।
उपरि। स्वित्। आसी३त्।
रेतःऽधाः। आसन्। महिमानः। आसन्। स्वधा। अवस्तात्।
प्रऽयतिः। परस्तात् ॥ ५॥

एवमविद्याकामकर्माणि सृष्टेर्हेतुत्वेनोक्तानि। अधुना तेषां स्वकार्यजनने शैघ्र्यं प्रतिपाद्यते। येयं नासदासीदित्यविद्या प्रतिपादिता यश्च कामस्तदग्रे इति कामो मनसो रेतः प्रथमं यदासीदिति यत्कर्म v **एषाम्** अविद्याकामकर्मणां वियदादिभूतजातानि सृजतां v **रश्मिः** रश्मिसदृशो यथा सूर्यरश्मिः उदयानन्तरं निमेषमात्रेण युगपत् सर्वं जगत् व्याप्नोति तथा शीघ्रं सर्वत्र व्याप्नुवन् यः कार्यवर्गः v **विततः** विस्तृतः v **आसीत्**। स्विदासीत् इति वक्ष्यमाणमत्रापि संबध्यते। 'विचार्यमाणानाम्' (पा० सू० ८.२.९७) इति प्लुतः। तत्रोदात्त इत्यनुवृत्तेः स चोदात्तः। v **स्वित्** इति नितर्के। स कार्यवर्गः प्रथमतः किं v **तिरश्चीनः** तिर्यगवस्थितो मध्ये स्थित आसीत् किंवा v **अधः** अधस्तात् v **आसीत्। आहोस्वित्** v **उपरि** उपरिष्टात् किमासीत्। 'उपरि स्विदासीदिति च' (पा० सू० ८.२.१०२)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्यनुदात्तः प्लुतः। 'आत्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निः' (तै० आ० ८.१) इत्यादिकया पञ्चमीश्रुत्या तत उद्गातारं ततो होतारमितिवत् क्रमप्रतिपत्तौ सत्यामपि विद्युत्प्रकाशवत् सर्गस्य शीघ्रव्यापनेन[1] तस्य क्रमस्य दुर्लक्षणत्वादेतेषु त्रिषु स्थानेषु प्राथम्यं कुत्रेति विचार्यते। एवं नाम शीघ्रं सर्वतो दिक्षु सर्गो निष्पन्न इत्यर्थः। एतदेव विभजते। सृष्टेषु कार्येषु मध्ये केचिद्भावाः v **रेतोधाः** रेतसो बीजभूतस्य कर्मणो विधातारः कर्तारो भोक्तारश्च जीवाः v **आसन्** अन्ये भावाः v **महिमानः। स्वार्थिक इमनिच्। महान्तो वियदादयो भोग्याः** v **आसन्।** एवं मायासहितः परमेश्वरः सर्वं जगत् सृष्ट्वा स्वयं चानुप्रविश्य भोक्तृभोग्यादिरूपेण विभागं कृतवानित्यर्थः। अयमेवार्थस्तैत्तिरीयके 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तै० आ० ८.६) इत्यारभ्य प्रतिपाद्यते। तत्र च भोक्तृभोग्ययोर्मध्ये v **स्वधा।** अन्ननामैतत्। भोग्यप्रपञ्चः v **अवस्तात् अवरो निकृष्ट आसीत्।** v **प्रयतिः** प्रयतिता भोक्ता v **परस्तात्** पर उत्कृष्ट आसीत्। भोग्यप्रपञ्चं भोक्तृप्रपञ्चस्य शेषभूतं कृतवानित्यर्थः। 'विभाषा परावराभ्याम्' (पा० सू० ५.३.२९) इति प्रथमार्थे अस्तातिः। 'अस्ताति च' (पा० सू० ५.३.४०) इत्यवरशब्दस्यावादेशः। अवस्तादिति संहितायाम् अक्षादित्वात् प्रकृतिभावः॥५॥

को अ॒द्धा वे॑द॒ क इ॒ह प्र वो॑च॒त्कुत॒ आजा॑ता॒ कुत॑ इ॒यं विसृ॑ष्टिः।
अ॒र्वाग्दे॒वा अ॒स्य वि॒सर्ज॑ने॒नाथा॒ को वे॑द॒ यत॑ आब॒भूव॑॥६॥

कः। अ॒द्धा। वे॒द॒। कः। इ॒ह। प्र। वो॒च॒त्। कुत॑ः। आऽजा॑ता।
कुत॑ः। इ॒यम्। विऽसृ॑ष्टिः। अ॒र्वाक्। दे॒वाः। अ॒स्य। वि॒ऽसर्ज॑नेन।
अथ॑। कः। वे॒द॒। यत॑ः। आ॒ऽब॒भूव॑॥६॥

एवं भोक्तृभोग्यरूपेण सृष्टिः संग्रहेण प्रतिपादिता। 'एतावद्वा इदमन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नमग्निरन्नादः' (श० ब्रा० १४.४.२.१३) इतिवत्। अथेदानीं सा सृष्टिर्दुर्विज्ञानेति न विस्तरेणाभिहितेत्याह को अद्धेति। v **कः** पुरुषः v **अद्धा पारमार्थ्येन** v **वेद जानाति।** v **कः वा** v **इह अस्मिँल्लोके** v **प्र** v **वोचत्** प्रब्रूयात्। v **इयं** दृश्यमाना v **विसृष्टिः विविधा भूतभौतिकभोक्तृभोग्यादिरूपेण** बहुप्रकारा **सृष्टिः** v **कुतः** कस्मादुपादानकारणात्। v **कुतः** कस्माच्च निमित्तकारणात v **अजाता**

१. त४.५-भ७-शीघ्रव्यापने।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समन्ताज्जाता प्रादुर्भूता। एतदुभयं सम्यक् को वेद को वा विस्तरेण वक्तुं शक्नुयादित्यर्थः। ननु देवाः अजानन्तः। सर्वज्ञास्ते ज्ञास्यन्ति वक्तुं च शक्नुवन्तीत्यत[1] आह अर्वागिति। v देवाः च v अस्य जगतो v विसर्जनेन वियदादिभूतोत्पत्त्यनन्तरं विविधं यद्भौतिकं सर्जनं सृष्टिस्तेन v अर्वाक् अर्वाचीनाः कृताः। भूतसृष्टेः पश्चाज्जाता इत्यर्थः। तथाविधास्ते कथं स्वोत्पत्तेः पूर्वकालीनां सृष्टिं जानीयुः। अजानन्तो वा कथं प्रब्रूयुः। उक्तं दुर्विज्ञानत्वं[2] निगमयति। v अथ एवं सति देवा अपि न जानन्ति किल[3]। तद्व्यतिरिक्तः v कः नाम मनुष्यादिः v वेद तज्जगत्कारणं जानाति v यतः कारणात् कृत्स्नं जगत् v आबभूव अजायत[4] ॥ ६ ॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥

इयम्। विऽसृष्टिः। यतः। आऽबभूव। यदि।
वा। दधे। यदि। वा। न।
यः। अस्य। अधिऽअक्षः। परमे। विऽओमन्। सः।
अङ्ग। वेद। यदि। वा। न। वेद ॥ ७ ॥

उक्तप्रकारेण यथेदं जगत्सर्जनं दुर्विज्ञानं एवं सृष्टं तज्जगत् दुर्धरमपीत्याह इयमिति। v यतः[5] उपादानभूतात् परमात्मनः v इयं v विसृष्टिः विविधा गिरिनदीसमुद्रादिरूपेण विचित्रा सृष्टिः v आबभूव आजाता सोऽपि किल v यदि v वा v दधे धारयति v यदि v वा v न धारयति। एवं च को नाम अन्यो धर्तुं शक्नुयात्। यदि धारयेदीश्वर एव धारयेन्नान्य इत्यर्थः। एतेन कार्यस्य धारयितृत्वप्रतिपादनेन ब्रह्मण उपादानकारणत्वमुक्तं भवति। तथा च पारमार्षं सूत्रं – 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' (वे० सू० १.४.२३) इति। यद्वा। अनेनार्धर्चेन पूर्वोक्तं सृष्टेर्दुर्ज्ञानत्वमेव द्रढयति। को वेदेत्यनुवर्तते। इयं विविधा सृष्टिः यत[5] आबभूव आ समन्तादजायतेति को वेद। न कोऽपि। नास्त्येव जगतो[6] जन्म न कदाचिदनीदृशं जगदिति बहवो भ्रान्ता भवन्त्यपि। यतः। 'जनिकर्तुः

१. ग-भ-शक्ष्यंतीत्यत। २. ग-त१.२.३.६.७.८भ-दुर्ज्ञानत्वं। ३. त१.२.३.६.७.८-भ-'किल' नास्ति। ४. ग-त२.३.६.७.८-आजायत। ५. त-भ-'यतः' नास्ति। ६. त-भ-'जगतो' नास्ति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकृतिः' (पा० सू० १.४.३०) इत्यपादानसंज्ञायां पञ्चम्यास्तसिल्। यस्मात् परमात्मन उपादानभूतादाबभूव[१] तं परमात्मानं को वेद। न कोऽपि। प्रकृतितः परमाणुभ्यो वा जगज्जन्मेति हि बहवो भ्रान्ताः। तथा स एवोपादानभूतः परमात्मा स्वयमेव निमित्तभूतोऽपि सन् यदि वा दधे विदधे इदं जगत् ससर्ज यदि वा न ससर्ज। असंदिग्धे संदिग्धवचनमेतच्छास्त्राणि चेत्प्रमाणं स्युरिति यथा। स एव विदधे। तं को वेद। अजानन्तोऽपि बहवो जडात् प्रधानादकर्तृकमेवेदं जगत् स्वयमजायतेति विपरीतं प्रतिपन्ना विदधतो[२] विधानमजानन्तोऽपि[२] । स एव उपादानभूत इत्यपि को वेद। न कोऽपि। उपादानादन्यः तटस्थ एवेश्वरो विदधे इति हि बहवः प्रतिपन्नाः। देवा अपि यन्न जानन्ति तदर्वाचीनानामेषां तत्परिज्ञाने कैव कथेत्यर्थः। यद्येवं जगत्सृष्टिरत्यन्तदुरवबोधा न तर्हि सा प्रमाणपद्धतिमध्यास्त इत्याशङ्क्य तत्सद्भाव ईश्वरमेव प्रमाणयति यो अस्येति।' ∨ **अस्य** भूतभौतिकात्मकस्य जगतः ∨ **यः** ∨ **अध्यक्षः** ईश्वरः ∨ **परमे** उत्कृष्टे सत्यभूते ∨ **व्योमन्** व्योमन्याकाशे आकाशवन्निर्मले स्वप्रकाशे। यद्वा। अवतेस्तर्पणार्थात् 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति मनिन्। 'नेड्वशि कृति' इतीट्प्रतिषेधः। 'ज्वरत्वर०' इत्यादिना वकारोपधयोः ऊठ्। सप्तम्या लुक्। 'न ङिसंबुद्ध्योः' इति नलोपप्रतिषेधः॥ व्योमनि विशेषेण तृप्ते[३]। निरतिशयानन्दस्वरूपे इत्यर्थः। यद्वा। अवतिर्गत्यर्थः। व्योमनि विशेषेण गते व्याप्ते। देशकालवस्तुभिरपरिच्छिन्न इत्यर्थः। अथवा। अवतिर्ज्ञानार्थः। व्योमनि विशेषेण ज्ञातरि विशिष्टज्ञानात्मनि। ईदृशे स्वात्मनि प्रतिष्ठितः। श्रूयते हि सनत्कुमारनारदयोः संवादे-'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि' (छा० उ० ७.२४.१) इति। ईदृशो यः परमेश्वरः ∨ **सो** ∨ **अङ्ग**। अङ्गेति प्रसिद्धौ। सोऽपि नाम ∨ **वेद जानाति**। ∨ **यदि** ∨ **वा** ∨ **न** ∨ **वेद** जानाति। को नाम अन्यो जानीयात्। सर्वज्ञ ईश्वर एव तां सृष्टिं जानीयात् नान्य इत्यर्थः॥ ७॥

---

१. त-भ-उपादानाद्बभूव। २. त१.२.६.७.८-भ२.४.८-विदधानोपि विदधानं तं जानतोऽपि; त४.५-विदधतोपि दधानं जानंतोपि; भ७-विदधतं जातं जानंतोपि। ३. ग-भ२.४.८-तृप्ते नित्यतृप्ते।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

नासदीयसूक्तम्

परिशिष्टम् ● श्रीवेंकटमाधवभाष्यम्

'प्रजापतिः परमेष्ठी ऋषिः। भाववृत्तं देवता। त्रिष्टुप् छन्दः'।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥ १॥

न। असत्। आसीत्। नो इति। सत्। आसीत्। तदानीम्। न। आसीत्। रजः। नो इति। विऽओम। परः। यत्। किम्। आ। अवरीवरिति। कुह। कस्य। शर्मन्। अम्भः। किम्। आसीत्। गहनम्। गभीरम्॥ १॥

वेङ्कट० :– प्रजापतिः परमेष्ठी। भावानां वृत्तं प्रतिपाद्यं महाप्रलयावस्थायाम्। असच्छब्दः कारणवचनः। सच्छब्दः कार्यवचनः। अयं परिदृश्यमानः कार्यवर्गः कारणवर्गश्च न अभूत्। असच्छब्दः प्राणवचन इति। अत्र वाजसनेयकम्– 'असद्वा इदम् अग्र आसीत्। तदाहुः किं तदसद् आसीदित्यृषयो वाऽव तेऽग्रेऽसदासीत् तदाहुः के त ऋषय इति प्राणा वा ऋषयः' (माश० ६,१,१,१) इति। नो सदासीत् इत्ययं लोको न च अन्तरिक्षं न च परः परस्ताद् यद् भवति तदपि इति। यद्वा सच्छब्देन अन्तरिक्षम् उक्तम्। 'सद् इव अन्तरिक्षम्' इति ब्राह्मणम्। किम् तदानीम् भूतम् इदं सर्वम् आच्छादयामास, क्व वा तत् स्थितम्, कस्य वा गृहे। अम्भः च तदानीम् कीदृशम् आसीत् गहनम् गभीरम् इदानीं दृश्यमानम् इति॥ १॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥ २॥

न। मृत्युः। आसीत्। अमृतम्। न। तर्हि। न। रात्र्याः। अह्नः। आसीत्। प्रऽकेतः। आनीत्। अवातम्। स्वधया। तत्। एकम्। तस्मात्। ह। अन्यत्। न। परः। किम्। चन। आस॥ २॥

वेङ्कट० :– मृत्युः न आसीत्, न अपि अमृतम्। न च रात्र्याः अह्नः आसीत् प्रकेतः। अहोरात्रविभागो नासीत्। अजीवद् वातवर्जितम् स्वधया तत् एकम्। तस्मात् परम् तदानीम् न किम् च आसीत् अन्यत् इति। अत्र शाट्यायनकम्– 'तस्मिन्नसति सति न कस्मिंश्चन सत्यृतं ज्योतिष्मद्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदप्लुवत, सत्यं ज्योतिष्मद् उदप्लवत, तपो ज्योतिष्मद् उपप्लुवत। तद् यद् ऋतम् इति वाक् सा, यत् सत्यम् इति प्राणः सः, यत्तप इति मनस्तम्। तेषामन्नम् एव ज्योतिरासीत्' (जैब्रा० ३,३६०) इति॥ २॥

तम॑ आसीत् तम॑सा गूळ्हमग्रे॑ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम्।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॑त् तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑य॒तैक॑म्॥ ३॥

तम॑ः। आ॒सी॒त्। तम॑सा। गू॒ळ्हम्। अग्रे॑। अ॒प्र॒ऽके॒तम्। स॒लि॒लम्।
सर्व॑म्। आ॒ः। इ॒दम्। तु॒च्छ्येन॑। आ॒भु। अपि॑ऽहितम्। यत्।
आसी॑त्। तप॑सः। तत्। म॒हि॒ना। अ॒जा॒य॒त॒। एक॑म्॥ ३॥

वेङ्कट० :– अथ तमः आसीत् इति प्रकृत्यभिप्रायम् आहुः। तेन तमसा गूळ्हम् इदम् सर्वम् अग्रे अप्रज्ञातम् आसीत्। ईदृशम् इति वक्तुम् न आसीद् इति। तदुक्तं मनुना (१.५) – 'आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्' इति। ततः सलिलम् इदम् आसीत् सर्वम्। तुचिः क्षुदिना समानकर्मा। क्षोदनीयेन मृत्युना उदकेन यत् महो[1] ब्रह्म अपिहितम् आसीत्, तस्मात् ब्रह्मणः तपसः महिम्ना एकम् भूतम् अजायत। तदिदं मन इत्याहुः॥ ३॥

काम॒स्तदग्रे॒ सम॑वर्त॒ताधि॒ मन॑सो॒ रेत॑ः प्रथ॒मं यदासी॑त्।
स॒तो बन्धु॒मस॑ति॒ निर॑विन्दन् हृ॒दि प्र॒तीष्या॑ क॒वयो॑ मनी॒षा॥ ४॥

काम॑ः। तत्। अग्रे॑। सम्। अ॒व॒र्त॒त॒। अधि॑। मन॑सः। रेत॑ः। प्र॒थ॒मम्।
यत्। आसी॑त्। स॒तः। बन्धु॑म्। अस॑ति। निः। अ॒वि॒न्द॒न्। हृ॒दि।
प्र॒ति॒ऽइष्य॑। क॒वय॑ः। म॒नी॒षा॥ ४॥

वेङ्कट० :– ब्रह्मणः तदानीम् अग्रे कश्चित् कामः सम् अवर्तत[2], मनसः रेतः प्रथमम् यत् आसीत् इति। सतः बन्धुम् असति निः अविन्दन् हृदि अन्विष्य कवयः इदानीन्तनाः प्रज्ञानेन इति॥ ४॥

ति॒र॒श्चीनो॒ वित॑तो र॒श्मिरे॑षाम॒धः स्वि॑दा॒सी३दु॒परि॑ स्विदासी३त्।
रे॒तो॒धा आ॑सन् महि॒मान॑ आसन्त्स्व॒धा अ॒वस्ता॑त् प्रय॑तिः प॒रस्ता॑त्॥ ५॥

ति॒र॒श्चीन॑ः। विऽत॑तः। र॒श्मिः। ए॒षा॒म्। अ॒धः। स्वि॒त्। आ॒सी३त्।
उ॒परि॑। स्वि॒त। आ॒सी॒३त्। रे॒तः॒ऽधाः। आ॒स॒न्। म॒हि॒मान॑ः। आ॒स॒न्। स्व॒धा।
अ॒वस्ता॑त्। प्रऽय॑तिः। प॒रस्ता॑त्॥ ५॥

१. महं वि॰; २. अवर्ततेत अ॰

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेङ्कट० :– एषाम् दिवि स्थितानां देवानाम् इतोमुखः विततः रश्मिः भवति। सोऽयं रश्मिः एषाम् अधस्तात् किं लब्धव्यम्[1] आसीत् अपि वा उपरि इति प्रश्नः। तथा जलस्य प्रदातारो भवन्ति देवाः महिमवन्तश्च। उदकम् अधस्ताद् गच्छति, यजमानानां प्रदानम्[2] उपरि। येन देवाः महिमानः भवन्ति। तददिदं सर्वे किङ्कृतम् इति पश्नः॥५॥

को अ॒द्धा वे॑द॒ क इ॒ह प्र वो॑च॒त् कुत॒ आजा॑ता॒ कुत॑ इ॒यं विसृ॑ष्टिः।
अ॒र्वाग्दे॒वा अ॒स्य वि॒सर्ज॑ने॒नाथा॒ को वे॑द॒ यत॑ आब॒भूव॑ ॥६॥

कः। अ॒द्धा। वे॒द॒। कः। इ॒ह। प्र। वो॒च॒त्। कुतः॑। आऽजा॑ता।
कुतः॑। इ॒यम्। विऽसृ॑ष्टिः। अ॒र्वाक्। दे॒वाः। अ॒स्य। वि॒ऽसर्ज॑नेन।
अथ॑। कः। वे॒द॒। यतः॑। आ॒ऽब॒भूव॑॥६॥

वेङ्कट० :– कः सत्यम् इह जानाति। कः वा इह अस्माकम्[3] प्र ब्रवीति–कुतः इयम् विसृष्टिः इति, तददिदं कुतः आजाता इत्यस्य विशदवचनम्–अर्वाक् काले देवाः च आसन् अस्य ब्रह्मणः विसर्जनेन पितुः इव पुत्राः। अथ कः जानाति प्राक्कालीनम् यतः आबभूव इति॥६॥

इ॒यं विसृ॑ष्टि॒र्यत॑ आब॒भूव॒ यदि॑ वा द॒धे यदि॑ वा॒ न।
यो अ॒स्याध्य॑क्षः पर॒मे व्यो॑म॒न्त्सो अ॒ङ्ग वे॑द॒ यदि॑ वा॒ न वेद॑॥७॥

इ॒यम्। विऽसृ॑ष्टिः। यतः॑। आ॒ऽब॒भूव॑। यदि॑। वा॒। द॒धे। यदि॑। वा॒।
न। यः। अ॒स्य॒। अधि॑ऽअक्षः। प॒र॒मे। विऽओ॑मन्। सः। अ॒ङ्ग। वे॒द॒।
यदि॑। वा॒। न। वेद॑॥७॥

वेङ्कट० :– इयम् विसृष्टिः यतः आबभूव, तदसौ जानाति। तथा विसृष्टं सर्वम् यदि वा[4] स स्रष्टा धारयति यदि वा न, तच्च स एव जानाति। यः[5] अस्य सर्वजगतः अधिद्रष्टा परमे व्योम्नि स्थितः सूर्यः, सः इदम् अङ्ग जानाति यदि वा न वा इति॥७॥

इति अष्टमाष्टके सप्तमाध्याये सप्तदशो वर्गः॥

सारांश : - **"असत्"**- शब्द कारणवाचक है। **'सत्'**– शब्द कार्यवाचक है। महाप्रलयमें यह परिदृश्यमान कार्यवर्ग और कारणवर्ग नहीं था।

---

१. °ब्धम् वि[°]; °ब्धव्यम् अ[१]; २. प्रदानानाम् मूको. ३. °कम् इह मूको. ४. न मूको. ५. ये मूको.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असत् शब्द प्राणवाचक है। उस समय कार्यात्मक सत् नहीं था। यह 'भूः' लोक और इससे पर अन्तरिक्षसंज्ञक 'भुवः' लोक और उससे पर 'स्वः' आदि लोक उस समय नहीं थे। अथ वा 'सत्' – शब्दसे अन्तरिक्ष कहा गया है। **'सदिव अन्तरिक्षम्'** यह ब्राह्मणवचन है। ध्यान रहे, असत्-संज्ञक प्राणोंको जहाँ महाप्रलयमें शेष रखना श्रुतिको अभीष्ट है, वहाँ प्राणका अर्थ अव्याकृत अर्थात् अव्यक्त, प्रकृति या माया है। गुणसाम्यसे अव्याकृत एक और गुणभेदसे अनेक मान्य है। **'असद्वा इदमग्र आसीत्। ....किं तदसत् ऋषयो वा.........के त ऋषय इति प्राणा वा'**। (माश० ६.१.१.१)। **'असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मानं स्वयमकुरुत।'** (तैत्तिरोयोपनिषत् २.७), **'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत'** (बृहदारण्यक १.४.७) आदि स्थलोंमें **'असत्' शब्दका प्रयोग अव्यक्त, प्रकृति, अव्याकृत अथवा मायाके अर्थमें हुआ है। जहाँ जैसे कि प्रकृत (प्राप्तसन्दर्भमें) 'नासदासीत्'** की उक्तिसे असत्को अवशिष्ट रखना अभीष्ट नहीं है, वहाँ प्राणका अर्थ प्रज्ञा अर्थात् महत् करना उपयुक्त है। **'यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः'** (कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत् ३.३) के अनुसार प्राण और प्रज्ञामें अभेद है। प्राणोपाधिक चिद्धातुको सूत्रात्मा कहते हैं। प्रज्ञोपाधिक चिद्धातुको हिरण्यगर्भ कहते हैं। 'प्रज्ञा' अव्यक्त अर्थात् अव्याकृतका प्रथम कार्य है। प्रलयमें प्रज्ञा (बुद्धि, महत्) की प्रज्ञारूपसे अविद्यमानता उपयुक्त ही है।

उस समय इस नामरूपात्मक प्रपञ्चको कौन आच्छादित किये हुए था? कहाँ यह स्थित था? किसके गृहमें स्थित था? जल भी उस समय कैसा था? इस समय तो यह गहन और गभीर दृश्यमान है।

विशेष :- शेष अर्थ प्रायः सायणभाष्यवत् है। मृत्यु-अमृत, दिन-रातके विभागसे शून्य महाप्रलयमें अवशिष्ट ब्रह्म विना वायुके जीवित था। जगत् ब्राह्मशक्तिप्रकृतिसे एकीभूत था। शक्तिविशिष्ट ब्रह्मसे मन उत्पन्न हुआ। सर्जनेच्छारूप काम मनमें सन्निहित था। सूर्यादिदेवोंसे अगोचर सृष्टिकी उत्पत्त्यादिको समग्ररूपसे स्रष्टा परमेश्वर ही जानता है। ●

● ● ●

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

● पीठपरिषद् - स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसे प्रकाशित पुस्तकें ●

१. शुकसुधा —श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके प्रथम और द्वितीय-अध्यायोंकी रस-रहस्यमयी व्याख्या। भूमिका सहित १५६ पृष्ठोंमें। सहयोगराशि २५ (पचीस) रुपये। लेखक—श्रीमज्जगद्गुरु-शंकराचार्य स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज।

२. श्वेताश्वतरोपनिषत् —श्वेताश्वतरोपनिषत्के प्रथम, द्वितीय और तृतीय-अध्यायोंकी रस-रहस्यमयी व्याख्या। भूमिका सहित २५० पृष्ठोंमें। सहयोगराशि ४५ (पैंतालीस) रुपये। लेखक—ज० शं०।

३. श्वेताश्वतरोपनिषत् —श्वेताश्वतरोपनिषत्के चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ-अध्यायोंकी रस-रहस्यमयी व्याख्या। भूमिका सहित ३०२ पृष्ठोंमें। सहयोगराशि ७५ (पचहत्तर) रुपये। लेखक—ज० शं०।

४. नासदीयसूक्तम् — ऋग्वेदान्तर्गतदशमण्डलस्थ — **नासदीयसूक्तम्** की रस-रहस्यमयी व्याख्या। भूमिकासहित २४०पृष्ठोंमें। सहयोगराशि ६० (साठ) रुपये। लेखक - ज० शं०।

— ☆ —

विशेष—पीठपरिषद् पुरीसे प्रतिवर्ष दो ग्रन्थरत्नोंके प्रकाशनकी योजना क्रियान्वित की जा रही है। आजीवन सदस्य होनेके लिये ५००० रुपये जमा करना आवश्यक है। आजीवन सदस्योंको पीठपरिषद्से सभी ग्रन्थ भेजनेका प्रबन्ध है। **'आदित्यवाहिनी'** त्रैमासिकपत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ हो चुका है। सहयोगराशि बीस रुपये वार्षिक और पाँच रुपये प्रति है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

डि.टि.पि. व मुद्रण :
लिजेंड, ३ आर्.एफ्. १२/४, युनिट-९, भुवनेश्वर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal